mRrj in'k jktf"k V.Mu
eDr fo'ofo|ky;

MAHY-103
आधुनिक विश्व

एम.ए. पाठ्यक्रम
(इतिहास)

खण्ड-1
राष्ट्रवाद, पूँजीवाद एवं समाजवाद–1

इकाई संख्या	पृष्ठ संख्या
इकाई 1 मैटरनिक व्यवस्था तथा कांग्रेस की कूटनीति	5–18
इकाई 2 यूरोप में 1830-70 ई. के मध्य कृषि विस्तार	19–30
इकाई 3 पूर्वी समस्या एवं क्रीमिया का युद्ध	31–49
इकाई 4 इटली का एकीकरण	50–78
इकाई 5 जर्मनी का एकीकरण	79–100

IOST-015

पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. बी.एस. शर्मा, कुलपति (अध्यक्ष)

प्रो. रविन्द्र कुमार
निदेशक, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं
पुस्तकालय, नई दिल्ली

प्रो. बी.आर. ग्रोवर
पूर्व निदेशक, भारतीय इतिहास
अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रो. एस.पी. गुप्ता
इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम
विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

प्रो. जे.पी. मिश्रा
पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू
विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

प्रो. के.एस. गुप्ता
इतिहास विभाग, मोहन लाल सुखाड़िया
विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

डा. बृजकिशोर शर्मा
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग कोटा
खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

डा. कमलेश शर्मा
इतिहास विभाग, कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

डा. याकूब अली खान
इतिहास विभाग कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम निर्माण दल

डा. गोपीनाथ शर्मा
पूर्व प्रोफेसर
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर(राज.)

डा. एस.के. भनोत
राजकीय डूंगर महाविद्यालय
बीकानेर (राज.)

डा. बी.एल. भादानी
रीडर, इतिहास विभाग अलीगढ़ मुस्लिम
विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

श्री हुकुम चन्द जैन
राजकीय महाविद्यालय
कोटा

पाठ्यक्रम प्रभारी एवं सम्पादक

डा. (श्रीमती) कमलेश वर्मा,
इतिहास विभाग, कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	प्रो.(डॉ.)बी.के. शर्मा	योगेन्द्र गोयल
कुलपति	निदेशक(अकादमिक)	प्रभारी अधिकारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	संकाय विभाग	पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन - मार्च 2011 MAHI-02/ISBN No.-13/978-81-8496-261-1

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित–२०२४

मुद्रकः सिग्नस इन्फार्मेशन सल्यूशन प्रा० लि०, लोढ़ा सुप्रीमस साकी विहार रोड, अन्धेरी ईस्ट, मुम्बई।

IOST-015

इकाई-1
मैटरनिक व्यवस्था तथा कांग्रेस की कूटनीति

इकाई संरचना

1.0 उद्देश्य

1.1 उन्नीसवीं शताब्दी में आस्ट्रिया

1.2 मैटरनिक की शासक नीति

1.3 मैटरनिक की गृहनीति

1.4 मैटरनिक की विदेश नीति

1.5 मैटरनिक और वियना सम्मेलन

1.6 वियना सम्मेलन का मूल्यांकन

1.7 संयुक्त व्यवस्था

1.8 मैटरनिक का पतन

1.9 मैटरनिक के व्यक्तितत्व का मूल्यांकन

1.10 बोध प्रश्न

1.11 संदर्भ ग्रंथ

1.0 उद्देश्य:-

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप निम्नलिखित पक्षों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1. उन्नीसवीं शताब्दी में आस्ट्रिया की स्थिति
2. मैटरनिक की गृहनीति व विदेश नीति
3. वियना सम्मेलन
4. संयुक्त व्यवस्था का पतन

1.1 उन्नीसवीं शताब्दी में आस्ट्रिया:

उन्नीसवीं शताब्दी के आस्ट्रिया हंगरी में अनेक जातियां रहती थीं । इस स्थिति ने वहाँ जातीय समस्याओं का बाहुल्य उत्पन्न कर रखा था । वहाँ की अगणित जातियों पर नियन्त्रण रखना एक कठिन काम था, परन्तु यहाँ के शासकों को गौरव प्राप्त था कि वे बड़े दीर्घकाल से "पवित्र रोमन" सम्राट कहलाते आये थे तथा आस-पास के शासकों से उनका वैवाहिक सम्बन्ध भी था । इन दोनों स्थितियों का लाभ उठाकर आस्ट्रिया का साम्राज्य विस्तारित हो चला था और हैप्सबर्ग वंश की प्रतिष्ठा यूरोप में स्थापित हो चली थी । नेपोलियन का पतन भी आस्ट्रिया के लिए आनुसंगिक रूप से वरदान साबित हो रहा था, क्योंकि वियना कांग्रेस के निर्णयों के फलस्वरूप आस्ट्रिया का साम्राज्य-विस्तार यूरोप भर में महत्वपूर्ण बन गया था । विशेषकर साम्राज्य का पश्चिमी भाग, जो आस्ट्रिया का भाग कहलाता था, जर्मन जाति के लोगों

का निवास स्थान होने से अधिक प्रभावशाली बन गया । इसी कारण जर्मन भाषा सम्पूर्ण राज्य की भाषा बन गई । इस भाषा का, मैग्यार, चेक, स्वोवाक, पोल, रूथेन्स, कोट, सर्व, स्लोवाक्स, इटालियन, रूमानियन व यहूदियों को (जो आस्ट्रिया हमें रहते थे प्रयोग करने को बाध्य होना पड़ता था ।[1]

वैसे फ्रेंच-कान्ति तथा नैपोलियन के पतन के पश्चात् आस्ट्रिया को साम्राज्य विस्तार में लाभ पहुंचा था परन्तु वहाँ के शासन पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा । वहाँ वही सामन्ती व्यवस्था चली आ रही थी । शासक निरंकुश था, सामाजिक ढांचा सामन्तवाद पर आधारित था, कुलीन वर्ग विशेषाधिकार का उपभोग कर रहे थे और अधिकांश जनसमूह दलित एवं पीड़ित था । ऐसी दशा में आस्ट्रिया में लोकतन्त्र अथवा राष्ट्रीयता की कल्पना करना संभव नहीं था । यदि इसके चिन्ह कहीं दिखाई देते थे या इसके पनपने के आसार प्रगट होते थे तो उन्होंने बड़ी निष्ठुरता से कुचल दिया जाता था ।

ऐसा लगता था कि आस्ट्रिया सामन्तवाद, एकतन्त्र और विशेषाधिकार का गढ़ था । धर्माचार्यों का बोलबाला था और चर्च के अधिकार बड़े विस्तृत तथा व्यापक थे । शासक के अधिकारों पर कोई नियन्त्रण न था, उसकी इच्छा के अनुकूल कानून बनते थे या उन्हें तोड़ा मरोड़ा जाता था । सर्वसाधारण के लिए कर देने के अतिरिक्त कोई स्वतन्त्रता न थी । उच्च पदों पर भर्ती पादरी व सामन्तों के लिए सुरक्षित थी । जनता को बोलने, विरोध करने अथवा निपेक्ष न्याय मांगने का कोई अधिकार न था । कृषि प्रधान देश होने से मध्यम वर्ग या तो था ही नहीं और थोड़ा बहुत था तो वह अकर्मण्य था । बौद्धिक विकास पर प्रतिबन्ध थे और राज्य में गुप्तचरों का जाल बिछा हुआ था । पुलिस निर्भय होकर विचरण करती थी और दमनचक्र का उपयोग करती थी । नियन्त्रण और आतंक का दबदबा ऐसा जटिल था कि आस्ट्रिया में कई वर्षो तक स्वतन्त्र विचारों के चिन्ह तक नहीं दिखाई देते थे । यदि कहीं दबी आवाज में स्वतन्त्रता की चर्चा की जाने की आशंका होती थी तो उसे कठोरता से कुचल दिया जाता था । यदि क्रांति की भावना की गंध यदा-कदा आती थी तो स्वच्छंद शासक उसके प्रसार को बड़ी तेजी से रोक लेते थे । वे यह सोचते थे कि दमन नीति ही स्वतंत्रता के विचारों को नष्ट करने का एक मात्र उपाय है ।

1.2 मैटरनिक की शासक नीति

हैप्सवर्ग के शासन की एकतन्त्रीय व निरंकुश व्यवस्था तथा उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यूरोपीय इतिहास के प्रतिक्रियावादी युग का प्रमुख प्रणेता काउंट क्लीमेंज मैटरनिक था । उसका जन्म 15 मई सन् 1773 ई. को एक उच्च कुलीन वंश में प्रशा के प्रसिद्ध नगर कोब्लेन्ट्स में हुआ था । उसके पिता होली रोमन साम्राज्य के विदेशी विभाग में उच्च पदाधिकारी थे और वे पश्चिमी जर्मनी में राइन नदी के तटीय भाग की विशाल जागीर के स्वामी थे । इसके माता-पिता की कुलीन स्थिति ने तथा पिता का पवित्र रोमन सम्राट के दरबारी होने की हैसियत ने इसका घराना अत्यन्त प्राचीन और प्रतिष्ठित माना जाता था । साथ ही

1. A.G. Ghant, A history of Europe, p. 726

मैटरनिक ने स्ट्रासबर्ग विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त कर अपनी योग्यता बढाली थी । 1795 ई. में जब वह 22 वर्ष का हुआ तो उसका विवाह आस्ट्रिया के चान्सलर प्रिंस कानिज (Kannitd) की पोती से हुआ जिससे उसके मान व सम्मान में अभिवृद्धि हुई तथा उसका परिचय यूरोप के बड़े-बड़े राज-घरानों में बढ़ने लगा । शीघ्र ही उसकी उन्नति का पथ प्रशस्त होने लगा जबकि आस्ट्रिया के सम्राट ने उसे अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर बर्लिन, सेण्ट पीटर्सबर्ग और फ्रांस भेजा । फ्रांस की नियुक्ति ने उसे नेपोलियन बोनापार्ट के दरबार में अपनी कुशाग्र बुद्धि और विनोदप्रियता के कारण विशेष सम्मान अर्जित करने का अवसर दिया । इन पदों में रहते हुए उसने यूरोपीयन राजनीति में यथेष्ट अनुभव प्राप्त कर लिया तथा एक कुशल राजनीतिज्ञ होने का परिचय भी दिया । सन् 1809 में उसे आस्ट्रिया का प्रधानमन्त्री और सन् 1821 ई. में वहां का चांसलर बनाया गया और 1848 ई. तक इन पदों पर रहते हुए वह आस्ट्रिया की नीति का कर्णधार बना रहा । सन् 1858 ई. में उसकी मृत्यु हो गई ।[2]

मैटर्निक की शासन नीति को समझने के लिए उसके विचारों पर प्रभाव डालने वाली पृष्ठभूमि में कुछ जानना आवश्यक है । प्रथम तो उसका लालन पालन अभिजात वर्ग के वातावरण में हुआ था जिससे उसमें अहमत्व की भावना स्वाभाविक थी । इस मिथ्या भावना के प्रभाव में वह इतना बहक गया था कि वह अपने आपको सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान समझता था । जो कुछ भी वह करता था वह उसे हर दृष्टि से सही समझता था । "अपने द्वारा उसने कभी जीवन में भूल ही नही की हो अथवा कोई काम नियम के विरूद्ध न किया हो ऐसा वह मानता था ।[3] उसकी मान्यता थी कि संसार का भार उसके कन्धे पर है और उसका जन्म यूरोप के जर्जरित साम्राज्य के पुनरूद्वार के लिए हुआ है ।[4] वह यह कहता था कि उसकी अनुपस्थिति एक रिक्त स्थान बनाएगी ।[5] "वह अपने पद की विशेषता के सम्बन्ध में कहता था कि सब लोग उसकी ओर आशा से निहारते हैं । उसे आश्चर्य था कि जब सभी नहीं सोचते या काम नहीं करते या नहीं लिखते हैं या जानते तो वह अकेला क्यों सोचता है, लिखता है और कर्तव्य परायण है ।[6]

उसके विचारों को क्रान्ति के विरूद्ध बनाने के कुछ विशेष कारण भी थे । उसके पिता का पवित्र रोमन राज्य का उच्च अधिकारी होने से बालक मेटरनिख पर अभिजात वर्ग के संस्कारों को पनपाया । वह उसी वर्ग का एक यन्त्र सा बन गया जिसे अन्य वर्ग

2 C.D. Hazen, Modern Europe, Upto 1945, p.p. 245-246

3 “He had never strayed from the path of eternal law, that his mind had never entertained error”-Hazen.

4 “He spoke of himself as being born’to prop up the decaying structure’ of European society. He felt the world resting on his shoulders”.- Hazen.

5 “He felt end said that he would leave a void when he disappeared”- Hazen.

6 “My position has this peculiarity”, he says, “that all eyes, all expectations are directions are directed precisely that point where I happen to be” He asked the question why among so million men, must I be one to think when others do not think, to act when others do not act, and to write because others know not how” – Metternich.

निम्न वर्ग ही लगने लगे और मैटरनिख अपने को एक उच्च वर्ग समझने लगा । जब वह विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रहा था तो फ्रांस की क्रान्ति व आतंक के राज्य (Reign of Terror) से पीड़ित फ्रेंच कुलीनवर्ग इधर-उधर सुरक्षा से पीड़ित भाग रहे थे तो उनकी दयनीय दशा देखकर उसकी भावनाएं क्रान्तिकारियों के विरूद्ध बनती जा रही थी । इधर जर्मनी की पुनर्व्यवस्था के फलस्वरूप उसकी पैतृक जागीर नेपोलियन द्वारा जब्त कर ली गई तो वह व्यक्तिगत रूप से क्रांति एवं उस विचारधारा का शत्रु बनाया । वह प्रतिक्रिया के रूप में जीवन भर क्रांतिकारियों के उन्मीलन व दमन में लगा रहा । अतएव प्रारंभिक संस्कार, शिक्षा, कुलीन वर्ग का फ्रांस से भागना तथा उनकी करूणा गाथाएं तथा कुलीन वर्ग से संपर्क एवं यूरोप के दरबारों में नियुक्तियों ने मेटरनिक को प्रतिक्रिया की मूर्ति बना दिया । वह फ्रांस की राज्य क्रांति को घृणा की दृष्टि से देखने लगा । उसके अनुसार क्रांति के विचार संक्रामक रोग थे जिनसे शीघ्रातिशीघ्र पिण्ड छुड़वाना ही श्रेयस्कर था । उसे प्रजातन्त्रीय विचार एक ज्वालामुखी को अग्नि की भांति दिखायी देते थे जिनको दमन करने के वह पक्ष में था । देवत्व के अधिकारों तथा यथावत् परिस्थिति का पोषक होने के नाते वह निरंकुश शासन प्रणाली का पक्षपाती था । "प्रजातन्त्रीय राज्य व्यवस्था को वह रोशनी को छोड़ अंधेरे की ओर जाना मानता था ।[7] " वह कहता था, "जैसा चल रहा है चलने दो, परिवर्तन पागलपन है" ।[8] प्रजासतात्मक शासन के हेतु जो युद्ध लड़े जाते थे उसका वह कट्टर विरोधी था ।

इस प्रकार की प्रतिक्रियावादी विचार-धारा के अनुसार मैटरनिक ने अपनी नीति की रूपरेखा तैयार की जिसे मैटरनिक की पद्धति या व्यवस्था कहा जाता है । इस पद्धति का प्रयोग उसने अपनी गृहनीति एवं विदेश नीति में दृढ़ता से किया ।

1.3 मेटरनिक की गृहनीति:

अपनी पद्धति के समर्थन में उसने गृहनीति का ऐसा स्वरूप बनाया कि जिससे क्रांति के विचारों का प्रसार आस्ट्रिया में न हो सके । ऐसा करना उसने इसलिये भी आवश्यक समझा कि राज्य में अनेक भाषी व मान्यता की जातियां बसी हुई थीं । इनकी संस्कृतियां भी भिन्न भिन्न थीं । ऐसी जातियों में जर्मन, पोल, मगयार, सर्व, चेक, कोट, स्लोवाक आदि मुख्य थीं । राज्य के शासन तन्त्र में तथा सैनिक विभाग में ये विभिन्न जाति के लोग सेवारत थे । इन जातियों में एकता या राष्ट्रीयता की भावनाएं यदि उभरने लगे तो उसको क्रांति के बीज आस्ट्रिया में पनपने की संभावना थी । इस प्रकार की आशंका से बचने के लिए उसने इन जातियों में आपसी फूट डालने के प्रयत्न किए जिससे राज्य की साम्राज्यवादी स्थिति को आँच न पहुंचे । साथ ही इस जाति के सैनिकों व अधिकारियों को राज्य के ऐसे विभिन्न भागों में तैनात किया जाता था जिससे स्थानीय व राष्ट्रीय भावना का मान इनमें न हो सके । उदाहरणार्थ हंगेरियनों को इटली, इटेलियन को गलेशिया तथा पोलो को आस्ट्रिया में रखा जाता था जिससे एक जाति के प्रभाव क्षेत्र में उनसे विभिन्न जाति के लोगों को शासकीय अधिकार दिये जाय जिससे उचित मात्रा में संतुलन भार बना रहे और एक जाति दूसरी जाति से शक्ति तथा विद्वेशात्मक व्यवहार करे ।

7 “Democracy only change daylight into darkness night”.

8 “Keep things as they are, all innovation is madness” – Fybbe, History of Modern Europe, p.433 (-Metternich)

मैटरनिक व्यवस्था का दूसरा परिक्रम यह था कि यथावत् स्थिति बनी रहे और राज्य व शासक सर्वोपरि समझे जाय । राज्य के प्रमुख धर्माचार्य एवं उच्चकुलीन सामन्त प्रभावशील बने रहे जिसमें श्रमिक और कृषकों की अवस्था में कोई सुधार न किया जाए । उसने यह भी ध्यान रखा कि सामाजिक संस्थाओं का मध्यकालीन स्वरूप पूर्ववत् बना रहे जिससे शोषक व शोषित यथावत् बने रहें ।

इस उपरोक्त व्यवस्था को बनाये रखने के लिए दंड व्यवस्था कड़ी कर दी गई तथा पुलिस तथा गुप्तचर व्यवस्था को शासन का आधार माना गया । प्रेस, पाठशाला, विश्वविद्यालय, अध्यापकों और पाठकों पर कड़ी निगाह रखी जाती थी । नाटकघर व बाजार आदि स्थानों पर पुलिस कड़ी निगाह रखती थी । सीमा क्षेत्र में यात्रियों, प्रचारकों और समाचार पत्रों की देखरेख रहती थी और उनके आगमन पर प्रतिबन्ध लगे हुए थे । कक्षाओं में कौन पढ़ाता है और क्यों पढ़ाया जाता है आदि बातों को गुप्तचर विभाग देखता था । यहाँ तक कि गुप्तचर पाठशालाओं में छाये रहते थे, यह देखने के लिए कि कहीं क्रांति के विचार पढाये तो नहीं जाते हैं । पुस्तकों में वही बातें पढ़ाई जाती थीं जिनसे राजभक्ति का अनुमोदन हो । यदि कहीं राष्ट्रीयता या उदारवाद तथा नागरिक अधिकारों की चर्चा होती थी तो उसको कठोरता से दबाया जाता था और ऐसे व्यक्तियों को बन्दी बना लिया जाता था । इन कड़े नियमों के कारण आस्ट्रिया का नैतिक, राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक स्तर यूरोप के अन्य राज्यों की अपेक्षा निम्न स्तर पर पहुंच गया था । मैटरनिक को इन दुष्परिणामों की कोई चिन्ता न थी क्योंकि उसका एकमात्र उद्देश्य आस्ट्रिया में राजतंत्र सामन्तवाद व निरंकुशता को बढ़ावा देना था तथा उदारवाद के प्रसार को कठिन करना था । एक अर्थ में मेटर्निक को कुछ वर्षो तक अपने उद्देश्य की सिद्धि में सफलता मिली थी और विद्रोह के चिन्ह चिरकाल तक वहाँ परिलक्षित नहीं हो सके । वियना प्रतिक्रियावादिता का केन्द्र बन गया जहाँ खुलकर सांस लेना भी संभव न था ।[9]

वैसे तो प्रतिक्रिया की शक्ति की जितनी अधिक सफलता आस्ट्रिया में मिली उतनी अन्य राज्यों में न मिल सकी तथा कई वर्षो तक वहां किसी प्रकार का आन्तरिक विद्रोह नहीं हो सका, परन्तु यह स्थिति एक राख से ढकी हुई आग के समान थी । भीतर ही भीतर असंतोष का वातावरण बना हुआ था जो किसी क्षण उफान की भांति उत्तेजित हो सकता था । इस यथावत् नीति के कई दुष्परिणाम भी हुए । यूरोप में चल रहीं नई प्रगति आस्ट्रिया में प्रवेश न पा सकी जिसके फलस्वरूप यहीं के निवासी अन्य देशों की तुलना में पिछड़ गये । प्रशासनिक सुधारों तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों कुंठित हो गई । जब मैटर्निक का पतन हुआ तो आस्ट्रिया के पिछड़ेपन का नग्नरूप सबके सामने स्पष्ट दिखाई देने लगा । उसे अन्य यूरोपीय देशों की होड़ में आगे आने में समय की प्रतीक्षा करनी पड़ी । राष्ट्रीय विचारों पर अंकुश लगाने से सामन्त तथा पादरी वर्ग जनता के शोषण द्वारा देश की आर्थिक व्यवस्था पर कुठाराघात करता रहा जिससे वहाँ गरीबी का दौर बढ़ता चला गया । यदि आस्ट्रिया में प्रतिक्रिया का रूप सबसे अधिक प्रखर था तो वह मैटरनिक की गृहनीति के कारण था । इस गृह नीति का चित्रण हेजन ने ठीक ही किया है आस्ट्रिया शासन में निरंकुश, समाज व्यवस्था में सामन्तवादी, विशेष अधिकार में सम्पन्नपोशी तथा जनता के लिए कष्टदायक बना रहा । उसकी यह व्यवस्था

मानव प्रगति से संघर्ष पर, नवीन विचारों से विरोध पर, घृणित पुलिस एवं गुप्तचर व्यवस्था तक सतर्क संवाद नियन्त्रण पर आधारित थी ।[10]

1.4 मैटरनिक की विदेश नीति:

मैटरनिक अपने युग का महान् तथा आस्ट्रिया का उन्नीसवीं सदी का विख्यात राजनीतिज्ञ था । उसने अपनी कुशग्र बुद्धि से यह निर्धारित किया कि यदि आस्ट्रिया में एकतन्त्रीय स्वच्छन्द शासन कायम रखना है और स्वतन्त्र विचार के प्रवेश को वहां नहीं आने देना है तो यह नितान्त आवश्यक है कि किसी भी कीमत पर नवीन विचारों, जिनका प्रसार आस-पास के राज्यों में हो रहा है, पर अंकुश लगाया जाए अन्यथा आस्ट्रिया की प्रतिक्रियावादी नीति को धक्का पहुँच सकता है । उसने यह भी योजना बनाई कि पड़ौसी राज्यों से ऐसा गठबंधन किया जाए कि वहीं भी निरंकुशता और प्रतिक्रियावादी नीति का प्रचलन किया जाए और उसका समर्थन किया जाये । अतएव इस नीति को क्रियान्वित करने के लिए उसने वियना सम्मेलन में प्रतिक्रियात्मक निर्णयों की भूमिका सर्वोपरि स्थान दिया । इस नीति के अनुसरण के लिए जर्मनी, रूस, इटली, प्रशा आदि पड़ौसी राज्यों से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने और उनके सहयोग प्राप्त करने की योजना बनाई । ये सम्पूर्ण व्यवस्था उसकी विदेश नीति के प्रमुख अंग थी । इसी नीति को अन्य राज्यों में लागू करवाने से आस्ट्रिया की व्यवस्था को संरक्षित रखा जा सकता था । यही उसके ध्येय का मूलमन्त्र था । " अपने ध्येय की पूर्ति के लिए मैटर्निक ने पड़ौसी राज्यों पर आस्ट्रिया की नीति लागू करने का अथक परिश्रम किया-जर्मनी में वहाँ के "डाइट" के माध्यम से, इटली में हस्तक्षेप व संधियों से तथा अन्य राज्यों में निकट सम्पर्क के द्वारा । "[11]

मैटरनिक ने अपनी कूटनीति का जाल फैलाने के लिए कई सामाजिक व राजनीतिक समस्याओं को हल करने के उद्देश्य बनाये । उसके विचार में राजा ईश्वर के प्रति उत्तरदायी था न कि उसकी प्रजा के प्रति । नेपोलियन के पतन के बाद इस धारणा को सर्वोपरि बनाया, जिसका फल यह हुआ कि जितने अपदस्त शासक थे वे स्वच्छन्द शासन के पक्षधर बन गये और मैटरनिक उनका नेता बन गया । नेपोलियन ने अपनी विजयों द्वारा विविध राजवंशों को समाप्त कर अपने भाइयों व सम्बन्धियों को यूरोपीय महाद्वीप में शासक बना दिया था । ऐसे राज्यों में स्पेन, पुर्तगाल, इटली, बेल्जियम, हालैंड, स्वीडन, नेपिल्स आदि थे । प्राचीन राजवंशीय शासक इनको पुन: प्राप्त करना चाहते थे और साथ ही साथ आस्ट्रिया, प्रशा व रूस इन राज्यों को हड़प कर अपने अपने राज्यों का विस्तार भी करना चाहते थे । मैटरनिक इन दोनों प्रकार के दावेदारों को संतुष्ट रखना भी चाहता था और आस्ट्रिया की शक्ति भी बढ़ाना चाहता था । एक और प्रश्न चर्च को लेकर था । नेपोलियन ने पोप को बन्दी बनाकर चर्च की सम्पत्ति को बेच डाला था और चर्च को राज्य के अधीन एक

9 Hazen, Modern Europe pp. 244-245

साधारण संस्था बना डाला था । स्वेच्छाचारी शासन के संचालन के लिए यह अत्यन्त आवश्यक था कि चर्च के अधिकारों की पुनर्स्थापना की जाए । ऐसी व्यवस्था करने के लिए मैटरनिक को प्राचीन राज्यवंशों एवं चर्च का वर्चस्व स्थापित करने, आसपास के राज्यों में एकाधिकार सस्ता संचालन करने तथा आस्ट्रिया की शक्ति बढ़ाने की नितान्त जरूरत थी । इस प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मैटरनिक ने कांग्रेस के सम्मेलन तथा संयुक्त राज्य व्यवस्था द्वारा यूरोपीय राज्यों के सहयोग को प्राप्त करने की योजना बनाई जो उसकी कूटनीति के प्रमुख अंग थे ।

1.5 मैटरनिक और वियना सम्मेलन:

अपनी विदेशी नीति को वैधानिक रूप देने के लिए तथा अपने प्रभुत्व स्थापनार्थ मैटरनिक ने नेपोलियन के पतन के पश्चात् उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर विचार करने के लिए सितम्बर 1814 ई. को राजाओं, महाराजाओं, राजनीतिज्ञों तथा सेनापतियों आदि को आस्ट्रिया की राजधानी वियना में आमंत्रित किया । इस सम्मेलन का वह अध्यक्ष भी बन गया । जो राजा, महाराजा अथवा राजनीतिज्ञ सम्मेलन में आये थे उनके अपने अपने निजी स्वार्थ भी थे । प्रशा सैक्सनी के राज्य को, रूस पौलेण्ड को, आस्ट्रिया इटली को, इंग्लैण्ड फ्रांसिसी उपनिवेशों को, फ्रांस खोये हुए भागों को हड़पना चाहते थे । आगन्तुक विशिष्ट व्यक्तियों में रूस का जार अलेक्जेंडर, प्रशा का फैड्रिक विलियम तृतीय, इंग्लैण्ड का प्रतिनिधि लार्ड कैसलरै, फ्रांस का मन्त्री तेलारा, डेनमार्क, ववेरिया और विरटेम्बुखर्ग के राजा एवं सैकड़ों छोटे बड़े राजा, प्रोफेसर, वैज्ञानिक, कुलीन सामन्त व सेनापति भी आमन्त्रित थे । केवल टर्की ने इस सम्मेलन में भाग नहीं लिया । आस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसीसी इन आगंतुकों को आतिथ्य कर रहा था । इतने प्रसिद्ध व प्रमुख व्यक्ति एक जगह इसके पूर्व यूरोप में कभी एकत्रित नहीं हुए थे ।

इस सम्मेलन की बैठक के पूर्व नाच, रंग, तमाशों में ये लोग इकट्ठे होते थे और आमोद-प्रमोद के वातावरण में भावी यूरोप के मसले तय करते थे । नियमित रूप से प्रस्ताव लाने, उन पर बहस करने या वोट लेने आदि की प्रक्रियाओं का वहां कोई स्थान न था । नाच गान के अवसरों पर सीमा निर्धारण या राज्यों के उत्तराधिकारियों के चुनने का काम कर लिया जाता था । शक्ति संतुलन, अधिकार का सिद्धान्त, राज्य पद्धति, सीमा निर्धारण आदि समस्याओं जैसे मसले पहले से ही इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया, रूस, प्रशा और फ्रांस ने अपने आप हल हुई

10. "Absolitism in Government, feudalism in society, special privileges for the favoured few, oppression and misery for the masses, such was the condition of Austria..."
    "His system, at war with human nature, at war with the modern spirit, rested upon a meddlesome police, upon elaborate espionage, upon vigilant censorship of ideas".
11. "The best protection for the Austrain system was to extend it to other countries." Hazen, Modern Europe, p. 246.

औपचारिक बैठक द्वारा, जो 15 जून 1815 ई. में बुलाई गई, स्वीकृति ले ली गई । यह बैठक प्रथम व अन्तिम थी ।

वियना कांग्रेस में पुनर्निर्माणार्थ जो निर्णय लिए गए उनमें प्रमुख इस प्रकार थे । फ्रांस की सीमा लगभग वही रखी गई जो फ्रांस की क्रांति के पूर्व थी । उसको निर्बल करने के लिए बेल्जियम और हालैण्ड मिलाकर उसके उत्तरी सीमा को भविष्य के भय से सुरक्षित कर दिया गया । फ्रांस में बोर्बन वंश का पुनरूद्वार के विचारानुकूल लुई सोलहवें के छोटे भाई को फिर से लुई अठारहवें के नाम से गद्दी पर बिठाया गया ।

बेल्जियम व हालैण्ड के संयुक्त राज्य में प्राचीन औरेंजवंश की स्थापना की गई । फ्रांस से दक्षिण पूर्वी सीमा से आक्रमण की संभावना की रोकथाम के लिए जिनेवा, पीडमाउंट और सेवाय सार्डीनिया में मिला दिये गये । स्पेन तथा नेपिल्स में बोर्बो वंश की स्थापना की गई । डेन्मार्क ने चूंकि नेपोलियन को सहायता की थी उसको नार्वे से हाथ धोने पड़े और वह स्वीडन को दे दिया गया । स्वीडन को तीन नवीन कैंटन देकर उसका विस्तार किया गया । आस्ट्रिया को लोम्बार्डी, वैनिस, इलीरिया के प्रान्त, टाइरोल, गैलेशिया तथा एड्रियाटिक सागर के पूर्वी किनारे प्राप्त हुए । रूस को फिनलैण्ड, वसर्बिया और वारसा की ग्रांड डची हाथ लगें । पोलैण्ड को समाप्त कर अपने-अपने सीमा के भाग रूस, आस्ट्रिया और प्रशा ने हथिया लिए । प्रशा को पोयेरेनिया, पोसन, थार्न, डाजिंग, वेस्टफेलिया का राज्य (हनोदर छोडकर) तथा सैक्सनी के राजा का 40 प्रतिशत भूभाग राज्य विस्तार के लिए दिये गये । इटली के छोटे छोटे टुकड़े कर दिये गये जिन पर सार्डेनिया, आस्ट्रिया तथा पोप का अधिकार हो गया, तथा इटली पहले की भांति एक केवल भोगोलिक अभिव्यक्ति रह गया ।[12]

जर्मनी में नेपोलियन द्वारा बनाया गया राइन का राज्य समाप्त कर 31 रियासतों का एक संघ बनाया और मैटरनिक राज्य परिषद् का अध्यक्ष बन गया । राज्य परिषद में राजाओं के द्वारा भेजे गये प्रतिनिधि जाते थे जो अध्यक्ष की नीति का अनुमोदन करते थे । अन्त में इंग्लैण्ड को माल्टा, हैलिगोलैण्ड, ट्रीनीडेड, लंका, केप कोलोनी, मौरिशस, टोबैगो जर सेंट लूसिआ द्वीप मिले । ये भू-भाग व द्वीप समूह इंग्लैण्ड को स्पेन, हालैण्ड व फ्रांस से लेकर दिये गये थे ।

इन बंटवारों व राज्यों के विभाजन तथा विघटन की प्रक्रिया के साथ-साथ एक महत्वपूर्ण निर्णय भी लिया गया था जो दास प्रथा के उन्मूलन के प्रस्ताव का था । उन दिनों दासों के बेचने, उन पर अत्याचार करने, उनकी शक्ति के उपरान्त काम लेने, उन्हें कठोर यातना देने आदि की प्रथा प्रचलित थी । कांग्रेस ने इस प्रथा को मानव अधिकार के प्रतिकूल माना और उसके विरोध में प्रस्ताव पास किया । इसी तरह यूरोप की नदियों व समुद्र पर नाविक अधिकार के नियम पर विचार किया गया जिससे पारस्परिक व्यापार की सुविधा हो सके । ये एक प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय विधान के निर्माण का प्रारंभिक प्रयास था परंतु इंग्लैण्ड ने इसका विरोध किया जिससे ये विधान क्रियान्वित न हो सका ।

1.6 वियना सम्मेलन का मूल्यांकन

वियना सम्मेलन में जिन बिन्दुओं पर विचार करना था वे मैटरनिक के मस्तिष्क की सूझ थे । ये उनकी दूरदर्शिता व कुशाग्र बुद्धि का परिणाम था कि उसने नेपोलियन के समय के यूरोप के नक्शे को इस प्रकार बदल दिया कि जिससे आस्ट्रिया की सीमा की वृद्धि हुई एंव अपदस्थ राजाओं को पुनर्स्थापित कर दिया गया । जो फ्रांस का वैभव नेपोलियन के समय बन पाया था वह गौरव मैटरनिक ने 1815 में आस्ट्रिया को दिलाया । यूरोप के सभी कूटनीतिज्ञ आस्ट्रिया को प्रतिष्ठित दृष्टि से देखने लगे और उसकी नीति का अनुसरण करने लगे । सबसे बड़ी उपलब्ध यह थी कि उसने

अपनी कूटनीति से यूरोप के शासकों को अपने अपने स्वार्थ की ओर ऐसा मोड़ा कि सभी उसके प्रशंसक बन गये और जिन निर्णयों को उसने जिस और मोड़ा वे उसी दिशा में मुड़े । इस चाल से उसने अपने प्रभाव को यूरोप में स्थापित कर लिया । उसने फ्रांस के पंख इस तरह काट दिये कि उसके उभरने के अवसर समाप्त हो गये । जिस क्रांति से एकता, समानता व राष्ट्रीयता की दुहाई दी जाती थी उसी क्रांति के विरूद्ध उसने वातावरण बना कर प्रतिक्रियावादी विचारों की मान्यता स्थापित कर दी । वह आस्ट्रिया के सम्राट को "होली रोमन एम्पायर" का सम्राट तो न बना पाया परन्तु जर्मनी का नेतृत्व उसे दिलाकर एक नई प्रतिष्ठा अर्जित की ।

उसकी वियना सम्मेलन की उपलब्धि इस अर्थ में भी थी कि सभी सम्राटों का सहयोग पाकर यूरोप में अराजकता दूर कर शांति की स्थापना हो सके । नेपोलियन द्वारा किये गये विनाश के विरूद्ध आवाज उठाकर यूरोप के सम्राटों व राजनीतिज्ञों को एक मंच पर लाकर मैटरनिक ने अपने उद्देश्यों को निर्णयों का जामा पहिना एक बड़ी सफलता प्राप्त की । जर्मनी में 31 राज्यों की राज्य परिषद् बनाना और उसका नेतृत्व करना उसके एकीकरण का प्रारूप था जिसका श्रेय मैटरनिक को जाता है । मानवता के क्षेत्र में दासता के विरूद्ध प्रस्ताव लाना उसके सद् भावना के वातावरण बनाने में बड़े महत्व का है । यूरोप में सभी राज्यों को मिलाकर उस समय की समस्याओं के समाधान ढूंढने का प्रयास अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का प्रारूप और नवयुग का सूत्रपात था ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कांग्रेस के निर्णय में स्वार्थ तथा महत्वाकांक्षाएं छिपी हुई थी, अतएव निर्णायकों ने अपने राज्यों की सीमा विस्तार में जिन प्रदेशों को एक राज्य से लेकर दूसरे राज्य में सम्मिलित किया था उसमें यह नहीं सोचा गया कि क्या ऐसा करने से जनमत की तो उपेक्षा नहीं की जा रही है? परन्तु कांग्रेस के सदस्य तो क्रांति और राष्ट्रीयता के विचारों के विरूद्ध इतने अधिक थे कि न्याय व अन्याय का उन्हें कोई भान ही न था । वे तो यह समझ रहे थे कि राजाओं में दैवी शक्ति है जिसका विरोध करना घोर अपराध है । उनकी मान्यता थी कि यदि कोई व्यक्ति इन कार्यो में हस्तक्षेप करता है या उनके विरूद्ध आवाज उठाता है तो उसको दण्डित करना उनका धर्म है । मैटरनिक व उसके सहयोगी शक्ति

12. “it was Metternich’s desire that Italy should be a collection of independent states, should be only a Geographical expression.” Hazen, Modern Europe. P-234

सन्तुलन की आड़ में फ्रांस व उसके सहयोगी राज्यों को निर्बल करने या इधर-उधर के पड़ोसी राज्यों के प्रदेशों को छिनने में इतने व्यस्त थे कि उन्होंने इस ओर कोई ध्यान न दिया कि जिन लोगों को दूसरे राज्य के अधीन बनाये जा रहे हैं उनमें धर्म, भाषा या जाति व मान्यताएं आदि क्या हैं । ऐसे कार्यो में परम्परा या राष्ट्रीय भावनाओं की पूर्ण उपेक्षा की गई ।

उदाहरणार्थ बेल्जियम का कैथोलिक जनता को जो केल्ट भाषा बोलनी थी उसे होलैण्डवासी प्रोटेस्टेन्टों तथा ट्यूशन भाषा लोगों से संयुक्त कर दिया । इसी प्रकार नार्वे को स्वीडन के साथ और फिनलैंड को रूस के साथ मिलाकर विभिन्न परम्पराओं पर भारी आघात पहुंचाया । पौलेण्ड की कैथोलिक जनता का विभाजन रूस के यूनानी चर्च तथा प्रशा एवं आस्ट्रिया के प्रोटेस्टेन्टों के साथ जोड़ दिया । इस प्रकार विभिन्न धर्मावलम्बियों की भावनाओं को भारी ठेस पहुंचाई गई । सम्पूर्ण राइन प्रदेश की कैथोलिक जनता को प्रोटेस्टेन्ट प्रशा के मिलाकर उनके साथ बड़ा अन्याय किया ।

एक देश दूसरे देश में मिलाया जाना तथा एक परम्परा के लोगों को दूसरे पर थोपा जाना एवं प्रजातन्त्रवाद को दबाया जाना थोड़े समय तो जनता ने इसलिए सहन कर लिया कि कुछ समय की शांति वांछनीय थी । परन्तु ये सब कृत्रिम व्यवस्था थी जो अधिक समय तक स्वीकार नहीं की जा सकती थी । लगभग 15 वर्ष की अवधि में बेल्जियम हालैण्ड से और नार्वे स्वीडन से अलग हो गये । जर्मनी और इटली को एकीकरण भी वियना के दोषों के परिणाम थे । यूरोप में सर्वत्र राष्ट्रीयता और प्रजातन्त्रवाद एवं प्रतिक्रियावाद का संघर्ष आरंभ हो गया । जनता की आवाज की गज इतनी प्रबल हो गई थी कि प्रतिक्रियावादी शासकों के आलाप उसके सामने निर्बल हो गया । इस स्थिति का मुख्य कारण था कांग्रेस में लिये गये निर्णयों में उच्च सिद्धान्तों का आधार नहीं होना । जो भी आपस में सौदाबाजी हुई थी उसकी जड़ स्वार्थ में निहित थी । इन समझौते के ठेकेदारों ने यूरोप के पुनर्गठन, शासन की पुनर्स्थापना, समाज की समुचित व्यवस्था, चिर शांति की स्थापना आदि आदर्शो की जो दुहाई दी जा रही थी उसके पीछे उनकी महत्ता और उदारता का ढोल पीटना मात्र था, जिससे अधिक समय जनता को गुमराह नहीं किया जा सकता था ।

हैजन के अनुसार वियना कांग्रेस विशेष अधिकारी वर्ग का समूह था जिसे फ्रांसीसी क्रांति का प्रजातन्त्रीय और जातीयता की भावनाओं के प्रति कोई निष्ठा न थी । इसमें सभी शासक राज्यों की व्यवस्था इस प्रकार कर रहे थे जैसे वे उनकी निजी सम्पत्ति थी, जिसमें प्रजा का कोई हिस्सा न था । ऐसी व्यवस्थाई स्थाई न बन पाई क्योंकि इसमें जनमत की पूर्ण उपेक्षा की गई थी । भावी यूरोप इस बात का साक्षी है कि समय-समय पर यूरोप में प्रजातन्त्र के लिए किये गये सफल प्रयत्न वियना सम्मेलन की इस भूल को सुधारने के प्रयास थे ।[13]

13. ‘The Congress of Vienna was a Congress of aristocrats, to whom the ideas of nationality and democracy as proclaimed by the French Revolution were incomprehensible or loathsome. The rulers rearranged Europe according to their own desires, disposing of it as if it were their own personal property, ignoring the sentiment of nationality. There could be no settlement because they ignored the factors that alone would make the settlement permanent. The history of Europe after 1815 was destined to witness repeated and often successful attempts to rectify this cardinal error of the Congress of Vienna.” Hazen, Modern Europe, pp. 239-240

1.7 संयुक्त व्यवस्था:

मैटरनिक की कूटनीति का महत्वपूर्ण अंग मित्र राष्ट्रों की संयुक्त व्यवस्था थी । यह व्यवस्था वियना निर्णयों को स्थायित्व प्रदान करने का माध्यम था जिससे सभी राष्ट्र मिलकर युद्ध से उत्पन्न भीषण समस्याओं को सुलझाने तथा यूरोपीय राष्ट्रों में शांति स्थापित करें । इन राष्ट्रों का यह भी उत्तरदायित्व था कि युद्ध की भावी संभावनाओं को रोकें । इन प्रमुख उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सभी राष्ट्रों को रूस के जार अलेक्जेंडर द्वारा घोषित पवित्र संघ (Holy alliance) का अनुमोदन करना था । इसके साथ-साथ मैटरनिक ने चतुमुर्ख मित्र मण्डल का संगठन किया । इसके उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इसके सदस्य अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन करते रहे जिससे यूरोप में शांति

बनी रहे और क्रांतिकारी तत्वों का दमन होता रहे । सभी यूरोप के राष्ट्रों को इस मण्डल द्वारा एक सूत्र में बाँध कर मैटरनिक ने यूरोप की सभी राजनीतिक संस्थाओं पर अपना प्रभाव स्थापित किया तथा उसी कुचक्र का प्रयोग उसने मित्र-राष्ट्रों के राज्यों में करवाया । यदि कहीं भी क्रांतिकारी भावनाएं उठती थीं तो वह उनको संयुक्त-व्यवस्था के सदस्यों की बैठक के निर्णयों से दबाता था । 1815 से 1825 तक होने वाले सभी सम्मेलनों में उसने मुख्य नायक का काम किया । अगर आगे चलकर विविध राज्यों के स्वार्थ के दृष्टिकोण बीच में नहीं आते तो मैटर्निक इस व्यवस्था को अत्यधिक शक्तिशाली बना देता । यह उसकी कूटनीति की देन थी कि वियना सम्मेलन के निर्णय कुछ समय तक यूरोप में टिक पाये । इस व्यवस्था के कई पहलू हैं जिनका विश्लेषण यथा स्थान किया जाएगा ।[14]

1.8 मेटरनिक का पतन

जिस कूटनीति के जाल को मैटरनिक ने यूरोप में फैलाया था वह एक सीमित समय तक ही प्रभावशाली रहा । भीतर ही भीतर जन-आन्दोलन की आग सम्पूर्ण मध्य यूरोपीय भागों में बढ़ती रही । मेटरनिक की प्रतिक्रियात्मक नीति का विरोध आस्ट्रिया में भी होने लगा । सन् 1948 का वर्ष आस्ट्रिया के भाग्यविधान के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ । वहाँ उसका खुलमखुल्ला विरोध होने लगा, विशेष रूप से आस्ट्रियन पार्लियामेन्ट में उसके खिलाफ एक शक्ति सम्पन्न दल बन गया जो इसकी नीति की निन्दा करने में नहीं हिचकता था वियना अब क्रांति की दावाग्नि का केन्द्र बन गया । जगह-जगह लुई काँसूथ तथा फ्रांसिस डीक के नेतृत्व में भाषण होने लगे तथा प्रबुद्ध वर्ग ने भी इस प्रकार के आन्दोलन का समर्थन किया । नितात्त 13 मार्च 1848 को मजदूरों व विद्यार्थियों के जुलूस ने राजप्रासाद और मैटरनिक के भवन को घेर लिया । सेना द्वारा उन पर गोलियां चलाई गई पर भीड़ उग्र होती गई । जब नागरिक रक्षक दल को भीड़ को तितर-बीतर करने के आदेश दिये गये तो उसकी अवहेलना की गई । अन्त में मैटरनिक समझ गया कि उसकी सत्ता के दिनों का अन्त आ गया है । वह भेष बदल कर महलों से निकल इंग्लैण्ड प्रयाण कर गया । उसके वृद्ध मित्र टेलिंगटन के ड्यूक ने उसका

14. डा० गोपीनाथ शर्मा, यूरोप का इतिहास पृ. 32-33

स्वागत किया । ये दोनों अपनी पुरानी याद दोहरा कर अपनी आयु के शेष दिन बिताते रहे ।जिस प्रकार 1789 में बेस्टिल के पतन ने फ्रांस की काया को पलट दिया उसी प्रकार 1848 की जन क्रांति ने आस्ट्रिया तथा समस्त यूरोप की तानाशाही शासन को धराशाई कर एक नवीन युग को आमन्त्रित कर दिया ।

यह घटना एक व्यक्ति का पतन नहीं था, वरन् उस सारी व्यवस्था के पतन के सूत्रपात की घटना थी जिसने बड़े समय तक प्रजासत्तात्मक प्रवृतियों को अवरूद्ध कर रखा था । इसका यह भी अर्थ था कि, अन्ततोगत्वा फ्रांसीसी क्रांति के सिद्धान्तों की विजय हुई। यहीं से यूरोप के समस्त राज्यों में समान स्थिति के समाज के प्रभुत्व का उदय होता है और उच्च अधिकारी वर्ग के ह्रास का आरंभ होता है ।

मैटरनिक के प्रतिक्रियात्मक शासन के सिद्धान्तों का वैध शासन की बढ़ती हुई मांग से कोई मेल न था जिससे उसकी तीव्रगति से वह मुकाबला न कर सका । अब जनतान्त्रिक सिद्धान्त इतने लोक-प्रिय और व्यापक हो गये थे कि उनके सामने मैटरनिक की व्यवस्था टिक न सकी ।

उदारवाद का प्राबल्य वियना तथा हंगरी के कई भागों के मध्यमश्रेणी के लोगों में जिनमें श्रमिक, दस्तकार, अध्यापक, व्यापारी आदि थे, इतना अधिक हो चला था कि मैटरनिक की दमन-नीति से उसमें अधिक तीव्रता आ गई और फलत: उसके दबाव के सामने मैटरनिक को घुटने टेकने पड़े । स्वयं मैटरनिक ने स्वीकार किया था कि उसके शासनतन्त्र और जनता के उदार विचारों में संघर्ष तो प्रारंभ से ही चल रहा था जिसको वह अपनी शक्ति से दबाता रहा, परन्तु इस संघर्ष के फलस्वरूप उदार विचार के पक्ष की विजय हुई। वह व्यक्ति को तो समझ पाता था परन्तु समय की गति पहिचानने की उसमें क्षमता नहीं थी ।

न केवल आस्ट्रिया में ही मैटरनिक को संघर्ष करना पड़ा, अपितु आस्ट्रिया के अधीनस्थ सभी भागों में समाजवाद, उदारवाद एवं राष्ट्रवाद के पक्ष में आवाज उठ चुकी थी । मैटरनिक को इन आन्दोलनों को अकेले सामना करना पड़ा । वह सड़ी गली संस्थाओं का पोषक था जो असम्मानित हो चली थीं और उसकी जनता समय की आवश्यकता पर जोर दे रही थी । इस बलवती मांग के कारण चान्सलर को स्वत: अपने पद से हाथ धोना पड़ा ।

इन व्यक्तिगत निर्बलताओं के साथ इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रांति ने यूरोप की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था को एक बहुत बड़ा पलटा दिया जिसके फलस्वरूप प्राचीन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक ढांचे की दीवारें ढहने लगीं । ऐसी दीवारों की रक्षा के लिए वह सतत् प्रयत्न करने लगा जो उसकी अदूरदर्शिता थी ।

मैटरनिक का रूख जो यूरोप के अन्य राज्यों के सम्बन्ध में था उसने भी उसकी प्रतिष्ठा को हानि पहुंचाई । इन राज्यों के आंतरिक मामलों में पड़कर उसने अपने को एक दमन-नीति का महान् पोषक सिद्ध किया जिससे सभी राष्ट्रों की जनता उसको अश्रद्धा की दृष्टि से देखने लगी । अब उसके घर में आग लगी और कौशाथ तथा लुई सगज आदि आन्दोलनकारियों ने उसके विरूद्ध आवाज उठाई, तो किसी भी देश ने उसके साथ सहानुभूति न रखी । ऐसी परिस्थिति में उसकी प्रणाली का अवसान होना ही स्वाभाविक था ।

इंग्लैण्ड के राजनीतिक विचारक, जिनमें कैसलरे, कैनिंग आदि प्रमुख थे, उसकी नीति के पक्ष में न थे । संयुक्त व्यवस्था में उसके रवैयों का इन कूटनीतिज्ञों ने पद-पद पर विरोध किया जिससे मैटरनिक की विचारधारा का प्रभाव क्रमश: यूरोप की राजनीति से हटता गया और अंत में उसके पतन के साथ उसकी प्रणाली का भी अन्त हो गया ।

1.9 मैटरनिक के व्यक्तित्व का मूल्यांकन:

हैजन ने मैटरनिक को आस्ट्रिया का महान् कूटनीतिज्ञ कहा है ।[15] परन्तु नेपोलियन ने एक बार उसके सम्बन्ध में यह भी कहा था कि मैटरनिक षड्यन्त्र को भूल से राजनीति समझे हुआ था ।[16] अलेक्जेंडर तो उसे झूंटा कूटनीतिज्ञ कहता था । उसके विरोधी उसे निरा षड्यन्त्रकारी, अवसरवादी तथा दिखावटी व्यक्ति कहते थे ।[17] उदारवादियों की दृष्टि में वह निरा प्रतिक्रियावादी तथा जनता की भावना का कट्टर शत्रु था । हॉर्नशा ने उसे प्रतिकियावादी नीति के अति का प्रतीक तथा राष्ट्रीयता और जनतन्त्र का शत्रु बताया है।[18] उपरोक्त दृष्टिकोण जो मैटरनिक के सम्बन्ध में है उनमें सच्चाई की मात्रा अधिक है, क्योंकि जिस नीति का अवलंबन उसने आस्ट्रिया तथा अन्य राज्यों के साथ किया, वह इन कथनों के समर्थन के पूरे प्रमाण हैं । उसने स्वयं भी यह स्वीकार किया है कि वह दुनिया में या तो बहुत जल्दी आया या बहुत विलम्ब से । उसने अपने आपको जमाने के यौवन के सामने वृद्ध बताते हुए अपनी असंगत स्थिति को माना है ।[19] उसकी त्रुटि के आधार व उसकी प्रकृति को समझ कर सेन्ट हैलना में नेपोलियन ने भी उसकी आलोचना में ठीक ही कहा था कि वाटरलू का युद्ध यूरोप की स्वतन्त्रता के लिए इतना भयावह होगा जितनी फिलापी की लड़ाई रोम की आजादी के लिए खतरनाक सिद्ध हुई ।[20] उसमें प्रतिक्रिया की भावनाएं इतनी प्रबल थी कि उसे प्रजातन्त्रवाद तथा राष्ट्रीयता के प्रति अत्यन्त कटुता थी । वह मानता था कि ' 'मेरा जन्म यूरोपीय समाज की पतनोन्मुख प्रवृत्ति को सुदृढ़ करने और उसकी रक्षा करने के लिए ही हुआ है ।[21] वह इतना हटी था कि अंतिम दिनों तक भी वह कहता रहा कि "मैं अपने प्रेरित पथ से कभी विचलित नहीं हुआ । जो कुछ मैंने किया वह मेरे अन्त करण की आवाज थी । मैंने कभी कोई गलत काम नहीं किया । वह यह भी मानता रहा कि मेरे निधन के बाद एक रिक्त स्थान बन जायेगा ।[22] ये कथन उसके अहम् भाव के प्रतीक हैं जिसके कारण उसे अपने दुर्दिन देखने पड़े । उसको अपने बारे में कितना बड़ा भुलावा था जब वह माने बैठा था कि सम्पूर्ण जगत् का भार उसके कंधे पर है।

15 “He was the most famous Statesman Austria produced in the nineteenth century. ‘Hazen.

16 He mistock intriguer for statesmanship”.

17 “An intriguer, as an opportunist, as polished dust.” Hazen

18 “Metternich represented reaction in its extreme form. Regarding continental politics form the Austrian standpoint he was the avov=wed and implacable enemy of both democracy and nationalist." He arnshaur- Mailn currents of European History, p. 121

19 I have come into the world either too early or too late-while he was growing old and feeble, the world was renewing its youth.

20 “The battle of waterloo”, remarked Napoleon at S. Helena, “Will be as dangerous to the liberties of Europe as the battle of philipi was dangerous to the liberties of Rome.”

21 “His egotism was olympian. He spoked of himself as being born tok prop up the decaying the structure society.”- Hazenm

22 “He himself admitted at the end of a long career that he had never strayed from the path of eternal law: that his mind had never entertained error. He felt and said that he would leave a void when he disappeared.” Hazenm

परन्तु आलोचना की दृष्टि और वस्तुत: स्थिति के विभिन्न पक्ष हैं । ऐसी स्थिति में परिस्थिति तथा आंशिक सफलता के सन्दर्भ में भी मैटरनिक का मूल्यांकन करना समीचीन होगा । उसने जिस नीति का अनुसरण किया था वह आस्ट्रिया के साम्राज्य की सुरक्षा के हित में थी । एलिसन फिलिप्स ने इसी सम्बन्ध में ठीक ही कहा है कि वह मैटरनिक था, जिसने आस्ट्रियन नीति को बल और निश्चयता दी जिसके कारण वह पीछे जाकर अपने को नेपोलियन का विजेता मानने लग गया । यह उसी नीति का फल था कि यूरोप लगभग चालीस वर्ष पर्यन्त शांति का उपभोग करता रहा और यह उसके विफल जीवन में एक महान् सफलता का चिन्ह है ।[23]

इसके अतिरिक्त हम इस बात को भी नजरअन्दाज नहीं कर सकते कि लहूलुहान यूरोप को शांति की आवश्यकता थी जिसको उसने येनकेन प्रकार से प्रदान की । विस्थापित राजाओं को स्थानापन्न कर उसने अपने समर्थकों का दल बना दिया था जिसने आस्ट्रिया के आस-पास सुख शांति स्थापित करने में कोई कसर न रखी । यदि वह एकाएक राष्ट्रीयता को प्रश्रय देता तो अराजकता का वातावरण ज्यों का त्यों बना रहता । वह अपने ढंग का एक ही व्यक्ति था जिसके नाम पर "मैटरनिक युग" की व्यवस्था प्रसिद्ध हुई । इस व्यवस्था के बल पर फ्रांस के इर्द गिर्द ऐसी दीवार खड़ी कर दी की क्रांति की ज्वाला फिर से न भड़क सके । ये उसकी कूटनीति का सफल प्रयास था । यदि मैटरनिक युग का पतन हुआ तो उसकी व्यवस्था का दोष नहीं था, दोष उसके अथक प्रयास की थकान और उसके यूरोप के साथियों का था जिन्होंने उसका अंत तक साथ नहीं दिया ।[24]

1.10 बोध प्रश्न

1. उन्नीसवीं शताब्दी में आस्ट्रिया की स्थिति की विवेचना कीजिए
2. मेटरनिक की गृह नीति व विदेश नीति की समीक्षा कीजिए ।
3. वियना सम्मेलन का मूल्यांकन कीजिए ।
4. संयुक्त व्यवस्था के बारे में आप क्या जानते हैं ।
5. मैटरनिक के पतन के क्या कारण थे?

1.11 संदर्भ ग्रंथ

1. थोम्पसन, यूरोप सिंस नेपोलियन
2. ए.जे.पी. टेलर. दि स्ट्रगल फोर दि मास्टरी आफ यूरोप
3. ली बेन्स, सिंस 1870
4. जी. पी. गूच,आधुनिक का इतिहास यूरोप
5. सी. डी. एम. केटलवी, आधुनिक काल का इतिहास

23. It was he who had given to Austrain Policy the vigorous and certain direction which enabled him afterwards to boast the Conqueror of Napoleon." Alison Philips.
24. "The 'Metternich System', showed unmistakable signs of falling to ieces. Its eponymous founder was growing old and weary; the sense f failure weighed upon him and snapped his vigour. The autocarts, also, for whom he toiled, gave him but little assistance whether material or moral."- Hearnshaw-Main Currents of European History, pp-193-194

इकाई-2

यूरोप में 1830-70 ई. के मध्य कृषि विस्तार

इकाई की रूपरेखा:

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.3 भूमि का उपजाऊपन

2.3.1 जानवरों की खाद का उपयोग

2.3.2 भूमि को ऊसर छोडने की विधि

2.3.3. फिल्ड-व्यवस्था

2.4. अठारहवीं सदी में कृषि में प्रगति

2.4.1 हरी घासों एवं सर्द ऋतु की जड़ों की खोज

2.4.2 भूमि की घेराबंदी

2.5 कृषि सुधारों के प्रभाव

2.6 1830 एवं 1870 के मध्य विस्तार एवं कृषि सुधारों में प्रगति

2.7 बोध प्रश्न

2.8 संदर्भ ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा यह उद्देश्य है कि विस्तार से आपको यह बताया जाये कि 1830 से लेकर 1870 ई0 के मध्य कृषि में किन कारणों से विस्तार हुआ । लेकिन इस समय के विस्तार को अच्छे तरीके से तभी समझा जा सकता है जबकि हमें उसके परिप्रेक्ष्य की पूरी जानकारी हो । इसके लिए हमने अठारहवीं सदी के कृषि सुधारों का संक्षेप में वर्णन किया है । इन सुधारों ने उन्नीसवीं सदी के कृषि विस्तार के लिए एक अर्थ में भूमिका तैयार की । इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको यूरोप की दो सदियों के कृषि इतिहास की जानकारी मिल जायेगी । आपको निम्न बातों का ज्ञान हो जायेगा-

1. अठारहवीं सदी में कृषि सुधार एवं उनकी प्रकृति ।

प्राकृतिक खाद प्राप्ति की समस्या एवं उसका समाधान ।

भूमि को परती छोड़ने की विधि से लाभ एवं हानि ।

भूमि की घेराबंदी उसके लाभ ।

2. कृषि सुधारों के प्रभाव ।

3. 1830 से 1870 ई0 के मध्य कृषि विस्तार- में सुधार, कृत्रिम खादों की खोज, कृषि मशीनों की खोज, वित्तीय संगठन एवं पूंजी निवेश एवं यातायात के साधनों का विकास ।

2.1 प्रस्तावना

1830 से 1870 ई0 के मध्य के काल को कृषि विस्तार की दृष्टि से यूरोपीय कृषि का स्वर्णकाल कह कर पुकारा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी । इन चालीस सालों के दौरान कृषि क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई एवं कृषि ने नए मानदण्ड स्थापित किये । यूरोप के लगभग सम्पूर्ण देश इस प्रगति से पूर्ण अथवा आशिक रूप से प्रभावित हुऐ । इस अभूतपूर्व कृषि विस्तार के लिए विभिन्न तत्व उत्तरदायी हैं जिसमें कृषि का व्यापारीकरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है । औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप शहरी आबादी की वृद्धि ने उपभोक्ताओं की संख्या में कई गुना वृद्धि की । स्वभावत: बाजारों का आकर्षण लगातार मजबूत होता चला गया । जनसंख्या की वृद्धि ने कृषि-उत्पादों की मांग को तीव्रता से बढ़ाया । इस बड़ी हुई माँग को पूरा करने के प्रयास ने कृषि विस्तार के नये द्वार खोले । कृषि में नई खोजों की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी । इन खोजों की पृष्ठभूमि में मूलत: व्यापारिक प्रवृत्ति सक्रिय थी । इन चालीस सालों के दौरान कृषि-क्षेत्र में मशीनों की खोज, कृत्रिम खादों के निर्माण, यातायात के साधनों के विकास एवं पूंजी निवेश की बढ़ती प्रवृत्ति ने कृषि की काया पलट दी ।

2.3 भूमि का उपजाऊपन

उन्नीसवीं शताब्दी के इन क्रान्तिकारी परिवर्तनों को पूरे तौर पर समझने के लिए कृषि की सम्पूर्ण विकास प्रक्रिया को समझना अति आवश्यक है । हर युग के किसान के सम्मुख एक प्रश्न था जो उसे विचलित किए रहता था- वह था कि भूमि के उपजाऊपन को किस प्रकार बरकरार रखा जाये? इसी प्रश्न ने किसान को हमेशा नवीन तरीकों की खोज की ओर अग्रसर रखा । यह बात बिल्कुल सही है कि बिना आराम दिए निरन्तर खेती भूमि के उपजाऊपन को समाप्त करके उसे बंजर बना देती है । इसलिए भूमि के उपजाऊपन के स्तर को बनाए रखने के लिए किसान मुख्यत: तीन तरीके प्रयोग में लेता रहा था: -

2.3.1 जानवरों की खाद का उपयोग

पशुओं के गोबर का प्रयोग भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने अथवा बढ़ाने के लिए किया जाता रहा है और यही सर्वाधिक उपयोगी साधन था । यूरोपीय देशों के किसानों के सम्मुख पर्याप्त मात्रा में प्राकृतिक खाद की उपलब्धि एक अत्यन्त ही कठिन बात थी क्योंकि सर्दियों के मौसम में पशुओं के लिए चारे की व्यवस्था अत्यन्त मुश्किल कार्य था । तत्कालीन किसान "सर्दी की जड़ों (Winter roots) से नितान्त अनभिज्ञ थे । सर्दियों में जानवरों के निर्वाह के लिए यह एक अत्यन्त आवश्यक फसल है । परिणामत: जानवरों की खाद की आपूर्ति कम मात्रा में हो पाती थी अत: कसान ने भू म क उव रा शि त को बनाए रखने के लए दूसरे साधन योग म लए ।

2.3.2 भूमि को ऊसर (Fallow) छोड़ने की विधि

भूमि की उर्वरा शक्ति की पुन-प्राप्ति के लिए उसके एक हिस्से को प्रति दो या तीन वर्ष के लिए अजुता या ऊसर छोड़ दिया जाता है । इस आराम के दौरान भूमि अपनी उर्वरा शक्ति को पुन: प्राप्त कर लेती है । अजुति भूमि पर दो या तीन बार हल चलाया जाता है एवं सूर्य एवं हवा से पुर्नशक्ति प्राप्त करने के लिए उसे यूं ही खुला छोड़ दिया जाता है । इस पद्धति के साथ-साथ एक के पश्चात् दूसरी फसल उगाहने का कम भी चलता रहता है । इसका तात्पर्य है कि जमीन के एक हिस्से पर एक वर्ष गेहूँ तो दूसरे वर्ष उसी हिस्से पर गेहूँ के स्थान पर जब उगाई जाएगी । इस क्रम में भूमि का एक हिस्सा ऊसर छोड़ दिया जाता है । अगली बार उस पर कुछ बोया जाता है तब दूसरा हिस्सा ऊसर छोड़ दिया जाता है । यही कम चलता रहता है । इस पद्धति में भूमि अपनी उपजाऊ शक्ति को लम्बे समय तक बनाए रख सकती है वनस्पति उसके कि जिसमें भूमि पर एक ही फसल लगातार उगाही जाती रहती है ।

अठारहवीं सदी के यूरोप में "थ्री फिल्ड व्यवस्था" प्रचलित थी जो तत्कालीन युग में सर्वाधिक विकसित व्यवस्था गिनी जाती थी जिसमें भूमि को ऊसर छोड़ने एवं फसलों की अदला बदली की दोनों विधि को संयुक्त रूप से काम में लिया जाता था । इस व्यवस्था में गाँव की सम्पूर्ण भूमि को तीन हिस्सों में विभाजित कर दिया जाता था जिसे तकनीकी रूप से "फिल्ड" कह कर पुकारा जाता था । प्रत्येक खेत में अदला-बदली करके तीन फसलें उगाही जाती थीं जो कि निम्न हैं:-

2.3.3. फिल्ड-व्यवस्था

वर्ष	**फिल्ड** (अ)	**फिल्ड** (ब)	**फिल्ड** (स)
प्रथम वर्ष	गेहूँ	जव अथवा जई	ऊसर
द्वितीय वर्ष	जव अथवा जई	ऊसर	गेहूँ
तृतीय वर्ष	ऊसर	गेहूँ	जव अथवा जई

यह व्यवस्था गहन कृषि का एक स्वरूप थी । कृषक निरन्तर जोती जाने वाली भूमि के स्थान पर नई ऊसर भूमि खेती के उपयोग में नहीं ले सकते थे "थ्री फिल्ड व्यवस्था" हानिकारक थी क्योंकि इसमें भूमि का एक तिहाई भाग हर समय व्यर्थ पड़ा रहता था । इस पर कोई फसल नहीं उगाही जाती थी । अत: यह कहा जा सकता है कि एक प्रकार से किसान को यह स्थायी हानि थी ।

2.4. अठारहवीं शती में कृषि में प्रगति

अठारहवीं शती में कृषि ने प्रगति की ओर अग्रसर करना प्रारम्भ किया । इसके परिणामस्वरूप खेती की पैदावार में बढ़ोतरी हुई । इंग्लैण्ड में प्रति एकड़ गेहूँ के उत्पादन में सोलहवीं एवं अठारहवीं शती के मध्य वृद्धि हुई । सोलहवीं शती में प्रति एकड़ उपज 16 बुशेल (एक प्रकार का माप) से बढ़कर अठारहवीं शती में 2.-22 बुशेल के लगभग हो गई ।

ई0 जे0 हाबूसबाम की मान्यता है कि 1750 एवं 1830 के मध्य कृषि की प्रति एकड़ उपज एवं उत्पादकता में वृद्धि तकनीकी आविष्कारों के कारण नहीं हुई थी बल्कि खेती योग्य भूमि में वृद्धि, बड़े-बड़े खेतों की क्षमता में विकास, फसलों में परिवर्तन एवं फसलों की अदला बदली के तेजी से विस्तार के कारण सम्भव हुई ।

2.4.1 हरी घासों एवं सर्द ऋतु की जड़ों की खोज:

इंग्लैण्ड एवं नीदरलैण्ड प्रथम देश थे जहां खेती के नवीन तरीके विकसित किए गए । इन नवीन तरीकों को विकसित करने का मुख्य उद्देश्य ऊसर भूमि की सीमा में कमी करना था । हरी-घासों (Green Grass) एवं सर्द ऋतु की जड़ों (roots) के आविष्कार ने इस कार्य को सम्भव बना दिया । हरी-घासों की यह विशेषता थी कि ये अपना भोजन अथवा पोष्टिकता सूर्य के प्रकाश एवं हवा से प्राप्त करती थीं न कि जमीन से । इसकी द्वितीय विशेषता यह थी कि इस घास के साथ-साथ भूमि पर फसल उगाई जा सकती थी । इससे भूमि के उपजाऊपन में सुधार होता रहता था । इसमें तिनपतिया घास (Clover), ल्यूसरने (एक प्रकार की घास) एवं राई-घास आती है ।

सर्द ऋतु की जड़ों की खोज ने भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिनमें शलजम (Turnip), शलजम (Swedes) एवं चुकन्दर की जड़ (beet roots/mangolds) सम्मिलित है । इसे जानवरों के चारे एवं अनचाही घास की सफाई के उपयोग में भी लिया जाता था इसके विस्तार ने पशु पालन के क्षेत्र में एक क्रांति ला दीं । अब पशुओं के लिए सर्दियों में चारा उपलब्ध होने लगा । परिणामत: मांस एवं खाद की आपूर्ति में तीव्र गति से वृद्धि हुई । खाद की आपूर्ति ने खेती योग्य भूमि की प्रति एकड़ पैदावार में बढ़ोतरी की ।

नई फसलों की खोज ने भूमि को ऊसर छोड़ने की विधि को व्यर्थ प्रमाणित कर दिया । अब पुरानी "थ्री फिल्ड व्यवस्था" का स्थान नयी "चार फसल की अदला-बदली" (yours course rotation) ने ले लिया- उदाहरणार्थ- गेहूं, तिनपतिया घास, जब अथवा जई एवं शलजम । बाद में आठ या नौ फसलों की अदला-बदली की पद्धति भी इसी सिद्धान्त पर विकसित की गई ।

2.4.2 भूमि की घेराबंदी:

कृषि सुधारों की शुरूआत सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में हुई । वहाँ पर इन सुधारों की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी । इस आवश्यकता को वहाँ की सामाजिक शक्तियों ने और अधिक बढ़ा दिया । वहाँ के भू-स्वामी व्यक्तिगत खेती में विश्वास करते थे । वे नहीं चाहते थे कि पारम्परिक तरीके से खेती की जाए । वहाँ के भूस्वामियों को परिवर्तित हो रही परिस्थितियाँ पुराने खेती के तरीकों को बदलने के लिए विवश कर रही थीं । व्यापार के विस्तार ने उनको प्रभावित करना प्रारम्भ किया । परिणामत: भूमि धीरे-धीरे किसानों के हाथों से निकल कर भूस्वामियों के हाथों में केन्द्रित होने लगी ।

सोलहवीं सदी में भूमि की घेराबंदी मूलत: व्यापारिक भावना से प्रभावित थी । अनाज की बनिस्पत ऊन अत्यन्त लाभकारी वस्तु बन गई । परिणामत: भूस्वामियों ने अपनी भूमि पर भेड़ पालन प्रारम्भ कर दिया ।

भूमि घेराबंदी से किसान सबसे अधिक प्रभावित हुए। उन्हे भूमि से निष्कासित कर दिया गया । सोलहवीं से अठारहवीं शती के दौरान किसान भूमिहीन खेत मजदूरों में परिवर्तित हो गए । अठारहवीं सदी के ग्रामीण इंग्लैण्ड का नक्शा ही बदल गया । सार्वजनिक खेती का स्थान बड़े-बड़े व्यक्तिगत फार्मों ने ले लिया एवं इनमें पूंजीवादी टिनेन्ट फार्मरस के द्वारा खेती की जाने लगी ।

द्वितीय यह कि कृषि सुधारों की सफलता की प्रगति भूमि की घेराबंदी (enclosures) पर कमोबेश निर्भर करती थी । न केवल अठारहवीं बल्कि उन्नीसवीं शती के सुधारों के लिए भी भूमि की घेरा-बंदी अत्यावश्यक थी । बल्कि अगर यह कहा जाए कि पश्चातवर्ती समय के सुधारों के लिए घेराबंदी की अधिक आवश्यकता थी तो अतिशयोक्ति नहीं होगी । खेती में मशीनों के प्रयोग, ड्रेनेज की नई विधि एवं कृत्रिम खाद के उपयोग के लिए बड़े-बड़े खेतों की आवश्यकता थी । घेराबंदी का अर्थ होता है सार्वजनिक या खुले खेतों का व्यक्तिगत भूमि-इकाईयों में पुन: संयोजन । वैसे तो सोलहवीं शती से ही घेराबंदी की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई थी लेकिन 1760 के पश्चात् पार्लियामेंट एक्टों के द्वारा तीव्रता से भूमि की व्यवस्थित घेराबंदी करनी शुरू कर दी । 1760 एवं 1830 के मध्य इंग्लैण्ड की भूमि का एक चौथाई से लेकर आधे भाग तक का घेराबंदीकरण हो गया । घेराबंदी ने व्यापारिक प्रवृत्ति के उन किसानों (farmers) को अपने पुरातन पंथी पड़ौसियों से स्वतन्त्र बना दिया । लेकिन एक बात नितान्त सत्य है कि घेराबंदी एवं कृषि सुधारों ने साथ-साथ यात्रा की ।

2.5 कृषि सुधारों के प्रभाव:

अठारहवीं सदी के कृषि सुधारों का अगर लेखा-जोखा किया जाये तो यह पता चलता है कि इसके बहुत व्यापक प्रभाव पड़े । एक तरफ तो पारस्परिक ग्रामीण समाज को विनष्ट करके गरीबों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई लेकिन दूसरी तरफ भूस्वामियों एवं किसानों (farmers) को अत्यधिक लाभ हुऐ । इन कृषि सुधारों से उनकी कई समस्याओं का हल इन्हें मिल गया । पशुओं के भोजन अर्थात् चारे की आपूर्ति में वृद्धि के साथ-साथ सर्दियों के मौसम में जानवरों को मारने की भी अब आवश्यकता नहीं रही । भेड़ों एवं जानवरों के लिए हरे भरे विशाल चरागाह के कारण उनकी संख्या में भी वृद्धि हुई । खेती में काम आने वाले जानवर भी बड़ी संख्या में उपलब्ध होने लगे । जानवरों की संख्या में वृद्धि के कारण खाद बड़ी मात्रा में आसानी से मिलने लगा । परिणामत: प्रति एकड़ खाद्य अनाजों की उपज में वृद्धि हुई । यद्यपि खाद्यान्नों को उगाहने के लिए भूमि की मात्रा में कमी आई लेकिन खाद की बड़ी मात्रा में उपलब्धता के कारण प्रति एकड़ उत्पादन में वृद्धि हुई । इसके साथ-साथ ही मनुष्यों को मांस आसानी से बड़ी मात्रा में मिलने लगा ।

उपर्युक्त वर्णन से यह बात उजागर होती है कि यह व्यवस्था पूर्व व्यवस्था से विकसित थी एवं इससे कृषि पर निर्भर लोगों को अत्यधिक लाभ पहुँचा । लेकिन यह व्यवस्था सिर्फ इंग्लैण्ड एवं स्कॉटलैण्ड तक ही सीमित रही । इस समय की कृषि प्रगति के लिए कई लोग उत्तरदायी हैं जिनमें जैथरों टुल, विसकाउण्ट आउनशैन्ड, राबर्ट बेकवैल एवं आर्थर यंग आदि प्रमुख हैं । टुल ने नाली से बीज की बुवाई (drill sowing) हल की जुतवाई एवं मशीन से खुदाई

का आविष्कार किया । टाउन्शैन्ड ने सर्द ऋतु की जड़ों की खोज की एवं चार फसलों की अदला-बदली की विधि में भूमि को परती छोड़ने के स्थान पर शलजम एवं तिनपतिया घास को उगाहना प्रारम्भ किया । जबकि बेकवैल ने पशुपालन की वैज्ञानिक विधि को खोज निकाला । इन खोजों ने यूरोपीय देशों की कृषि पद्धति को कम प्रभावित किया । फ्रांस एवं जर्मनी में अभी भी पुरानी पद्धतियाँ प्रचलन में थीं । सिर्फ पूर्वी जर्मनी के जुंकर अभिजात वर्ग ने कृषि सुधारों में रुचि ली ।

2.6 1830 एवं 1870 के मध्य कृषि-विस्तार एवं कृषि-सुधारों में प्रगति

कृषि के क्षेत्र में प्रगति का यह कम उन्नीसवीं सदी में अबाध गति से चलता रहा । हाबूसबाम की मान्यता है कि 1830 से पूर्व औद्योगिक क्रांति एवं विज्ञान ने कृषि क्षेत्र को कम प्रभावित किया था । कृषि में विज्ञान की शुरूआत 1838 ई0 में "रायल एग्रीकल्चरल सोसायटी" एवं 1843 में "रोथाम्स्टेय एक्सपेरिमेन्टल स्टेशन की स्थापना से होती है । इसके पश्चात् प्रगति अभूतपूर्व रूप से तीव्र थी । यही कारण है कि 1830 का वर्ष एक विभाजन रेखा के रूप में माना जाता है । इसका सम्पूर्ण श्रेय रेलों के आगमन को नहीं जाना जाता है । तीसरे दशक से कई महत्वपूर्ण तत्वों ने कृषि को गहराई से प्रभावित किया । परिणामत: अगले चार दशकों में कृषि में अभूतपूर्व क्रांति के कारण कृषि का असीमित विस्तार हुआ । इस समय के कृषि-विस्तार एवं प्रगति को समझने के लिए कृषि के निरन्तर बढ़ते हुए व्यापारिक चरित्र, ड्रेनेज व्यवस्था में सुधार, नली द्वारा बुवाई में सुधार, कृषि मशीनों का आविष्कार, कृत्रिम खाद की खोज एवं पूंजी निवेश की इच्छा शक्ति में बढ़ोत्तरी आदि तत्वों का समझना अत्यावश्यक है ।

बाजार की गतिशीलता एक ऐसा महत्वपूर्ण कारण था जिसने कृषि की काया को पलटने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । इन चार दशकों के दौरान जनसंख्या में अभूतपूर्व वृद्धि ने कृषि उत्पादों की मांग को गहराई से प्रभावित किया । उपभोक्ताओं की वृद्धि के साथ-साथ मांग में तेजी से वृद्धि आई । विशेषत: शहरीकरण एवं औद्योगीकरण के कारण शहरी जनसंख्या में बढ़ोत्तरी हुई । ग्रेट ब्रिटेन एवं पश्चिमी यूरोप (फ्रांस को छोड़कर) की कुल जनसंख्या में क्रमश: एक तिहाई एवं एक चौथाई की बढ़त आई । इसी प्रकार इंग्लैण्ड एवं वैल्स की शहरी जनसंख्या 45 से 55 प्रतिशत एवं फ्रांस, जर्मनी, आस्ट्रिया, स्वीडन एवं स्विटरजरलैण्ड की 30 प्रतिशत के लगभग आबादी बढ़ गई ।

इस बढ़ी हुई मांग का सामना यूरोपीय भू-स्वामियों एवं किसानों ने कई तरह से किया । कृषि उत्पादनों की आपूर्ति में बढोतरी खेती के विस्तार एवं बंजर भूमि पर खेती के द्वारा की गई । दक्षिणी रूस, रूमानिया एवं हंगरी के मैदानों में खेती की जाने लगी । इन प्रयासों के अतिरिक्त जिसने सर्वाधिक भूमिका निभाई वह थी जोती जा रही भूमि की प्रति एकड़ उत्पादकता में वृद्धि । प्रति एकड़ उत्पादकता को बढ़ाने में कई तत्वों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में शहरीकरण एवं औद्योगीकरण की प्रक्रिया के कारण खाद्यान मूल्यों में तेजी आई एवं परिणामत: भूस्वामियों की आय कई गुना बढ़ गई । इस बढ़ी हुई आय ने न केवल कृषि-सुधारों के लिए उनकी इच्छा शक्ति को प्रोत्साहित किया बल्कि

अपनी योजनाओं को कार्य रूप देने के लिए आवश्यक पूंजी का निर्माण भी किया । इंग्लैण्ड के समान यूरोप के देशों, उदाहरणार्थ-एलबे के पूर्व जर्मनी, डेनमार्क, हंगरी एवं इटली में भी भूस्वामियों ने कृषि सुधार का झण्डा अपने हाथ में लिया । इन्होंने अनाज एवं ऊन का उत्पादन किया जिसे बाजार में बेचा ।

किसानों से खेती में सुधारों की अपेक्षा नहीं की जा सकती थी, क्योंकि उनके पास अत्यधिक कम भूमि हुआ करती थी । दूसरा उनके पास धन की इतनी अधिक बचत नहीं होती थी कि वे इस अतिरिक्त धन को कृषि सुधारों में लगा दें । दूसरी तरफ ऋण लेने की आदत एवं अधिकतम ब्याज देने के कारण उनकी क्षमता भी नहीं रह गई थी । इसलिए यह स्पष्ट है कि कृषि की पद्धतियों में सुधार बड़े खेतों पर अधिक सफलतापूर्वक एवं प्रभावी ढंग से हुआ । जैसाकि मैंने पूर्व मैं बताया था कि घेराबंदी एवं कृषि में सुधार एक दूसरे से जुड़े सवाल थे । इंग्लैण्ड की अधिकांश खुली हुई भूमि की घेराबंदी 1830 तक हो गई थी एवं 1870 ई0 तक ग्रामीण मानचित्र के पुनर्रेखांकन का कार्य वास्तव में लगभग सम्पूर्ण हो चुका था ।

अगला कदम ड्रेनेज (Drainage) में सुधारों से सम्बन्धित है । भूमि से अतिरिक्त पानी का बाहर निकालना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा इससे फसल का विनाश हो जाएगा । यह बात किसान के लिए शोचनीय थी इसलिए वह हमेशा इसके लिए सजग रहता था । मध्यकालीन समय में ढलावदार पहाड़ी मैदानों पर खेती की जाती थी जिससे काफी सीमा तक यह समस्या हल हो जाती थी । ढलान पर हल से बनी लकीर खुली नाली का कार्य करती थी जिसके द्वारा अतिरिक्त पानी को बाहर निकालने में सहायता मिलती थी । अठारहवीं सदी में कैप्टन व्लिग ने बन्द खाईयों के द्वारा पानी बाहर निकालने की विधि की खोज की लेकिन बाद में स्मिथ डीनस्टोन की खोज ने इस पर अपना वर्चस्व कायम कर लिया । इस पद्धति में जली मिट्टी से बनी बेलनाकार (cylindrical) टाईल्स की सहायता से पानी बाहर निकालने का काम सम्पन्न किया जाता है । इसकी खोज 1843 ई0 में हुई । इसने अब तक के सभी तरीकों को भुला दिया । इस नयी पद्धति को सभी देशों में अपनाया गया एवं परिणामत: मिट्टी के उपजाऊपन में सुधार हुआ ।

कृत्रिम खाद का खेती में प्रयोग एक ऐसा कदम था जिसने न केवल भूमि की उर्वरता को बढ़ाया बल्कि कृषि में रसायन शास्त्र के प्रयोग के लिए दरवाजे खोल दिए । रसायन शास्त्र के प्रयोग ने भूमि की वार्षिक उत्पादन क्षमता को बढ़ा दिया । एक जर्मन रसायनविद की शोध ने कृत्रिम खाद के बनाने के कार्य को सम्भव बना दिया । लीबिग ने सन् 1840 ई0 में "आरगेनिक केमिस्ट्री इन इट्स रिलेशन टू एग्रीकल्चर एण्ड प्लान्ट फिजियोंलाजी" नामक पुस्तक प्रकाशित की । इस पुस्तक के प्रकाशन के पूर्व किसान हड्डियों का बुरादा, पेरुवियन मछली की खाद एवं नवीन सुधरी हुई कृत्रिम खाद प्रयोग में लाते थे । लीबिग ने पौधे के जीवन के तीन मुख्य हिस्से तीन द्रव्य पौटाश, फासफोरस एवं नाइट्रोजन की खोज की । इस शोध की सबसे बड़ी उपलब्धि यह हुई कि इसने रासायनिक खाद का निर्माण सम्भव बना दिया । इसके साथ ही साथ इन प्रयासों एवं खोजों को भी प्रभावित किया कि किस प्रकार इसकी समुचित आपूर्ति की जाये । नाइट्रेट्स के आयात में बढ़ोत्तरी हुई एवं 1852 ई0 में हर्ज पर्वत श्रृंखलाओं में नमक भण्डारों (salt deposits) का पता चला ।

कृत्रिम खाद के प्रयोग ने कृषि को व्यापक रूप से प्रभावित किया । इसके प्रयोग ने किसान को प्राकृतिक खाद से मुक्त कर दिया । पशुपालन कृषि कर्म का अब एक आवश्यक अंग नहीं रह गया । पशुपालन मुख्यत: खाद की प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता था । कृत्रिम खाद की खोज ने इसकी उपयोगिता को कम कर दिया । इस खोज का सर्वाधिक लाभ भूमि की उर्वरा शक्ति की वृद्धि के रूप में हमारे सामने आया। रासायनिक खाद के प्रयोग से भूमि की प्रति एकड़ उपज में बढोतरी हुई ।

खोजों का सिलसिला इसी तरह चलता रहा । 1870 ई0 में पेरुवियन मछली की खाद (guano) के समाप्त होने के आसार नजर आने लगे इससे वैकल्पिक खादों के खोज की आवश्यकता तीव्रता से अनुभव की जाने लगी । श्रमिकों की कमी एवं ऊँची मजदूरी की दरों ने मशीनों की आवश्यकता को और अधिक तेजी से बढ़ा दिया । वैसे तो खेती में मशीनों का प्रयोग बहुत लम्बे समय से होता आ रहा था लेकिन उन्नीसवीं सदी के तीसरे दशक में अभूतपूर्व खोजों ने कृषि की काया पलट दी । औद्योगिक क्रांति ने मशीनीकरण की प्रक्रिया में तेजी ला दी थी । इसने कृषि को गहराई से प्रभावित किया । स्काटवासी जैम्स वाट के स्टीम इंजन से बहुत प्रभावित थे । उन्होंने हल चलाने के लिए स्टीम इंजन का प्रयोग किया । खेती में फसल कटाई में सर्वाधिक श्रमिकों की आवश्यकता होती है । इंग्लैण्ड में सर्वप्रथम बुवाई-मशीन की खोज हुई थी लेकिन अगले पचास सालों तक इसका कोई असर नहीं रहा । 1830 ई0 में ओबे हस्सी नामक एक अमरीकी व्यक्ति ने अश्व चालित बुवाई मशीन का आविष्कार किया । 1838 ई0 में मेककोरमिक ने इसमें सुधार किया एवं अपने नाम से इसकी रजिस्ट्री करवा ली । 1848 ई0 में उसने शिकागों में एक फैक्ट्री स्थापित कर ली एवं बड़ी संख्या में मशीनों का उत्पादन शुरू कर दिया । 1856 में एक चाकू लगी मशीन अत्यधिक प्रचलन में थी जिससे घास काटा जाता था । इसी तरह कृषि कार्यो के दूसरे क्षेत्रों में नये-नये औजार विकसित होने लगे । 1784 ई0 में अनाज को भूसे से अलग करने की मशीन बनाई गई जो कि अश्व शक्ति से चलती थी । लेकिन 1842 ई0 में रेन्शन ने स्टीम इंजिन का प्रयोग करके रायल एग्रीकल्चरल सोसायटी, इंग्लैंड से पारितोषिक प्राप्त किया । इसी प्रकार मशीनों की खोज एवं खेती में उनके प्रयोग ने कृषि विस्तार में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

फ्रांस में कृषि का मशीनीकरण उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में होता है । उस समय में फ्रांस की जनसंख्या में वृद्धि होती है । कृषि फार्मों के आकार बड़े हो जाते हैं एवं फार्मरस आधुनिक मशीनों एवं कृत्रिम खाद के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेते हैं । उन्होंने प्रति एकड़ एवं प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि की एवं काफी धन अर्जित करके अपने राजनैतिक एवं सामाजिक प्रभाव को बढ़ाया ।

उन्नीसवीं सदी के छठे दशक में, यहां तक कि उत्तरी फ्रांस में जहां कि कृषि काफी विकसित थी मशीन के नाम पर केवल अश्व चालित अनाज को भूसे से पृथक् करने की मशीन प्रचलन में थी । यह मशीन भी इसलिए प्रचलन में थी क्योंकि इस क्षेत्र में औद्योगिक प्रगति ने अपने कदम रखने प्रारम्भ कर दिये थे इसलिए श्रमिकों की अत्यन्त कमी थी । सदी के अन्त में मशीनीकरण की प्रकिया दक्षिण में पहुँची एवं शीघ्रता से इसका फैलाव होने लगा ।

इस श्रम बचन करने वाली मशीनों के आगमन से भूमि की उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई । प्रति एकड़ उपज एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई । मशीनों के प्रयोग ने खेती से सम्बन्धित कार्यो को कम खर्चीला बना दिया ।

यूरोप में कृषि का विकास इंग्लैंड से नितान्त भिन्न था । फ्रांस में किसानों ने भूस्वामियों को भूमि से वंचित किया । 1789 ई0 की फ्रांस की क्रांति के परिणामस्वरूप दो-तिहाई किसान भूमि के मालिक हो गए । बेल्जियम का विकास फ्रांस के समतुल्य था । जर्मनी दो हिस्सों में विभाजित था । पूर्वी जर्मनी का ग्रामीण समाज इंग्लैण्ड के समान था जबकि पश्चिमी जर्मनी फ्रांस के समान था । जर्मनी में किसानों की विमुक्ति का सिलसिला 1807, 1811 एवं 1816 की राजाओं द्वारा प्रारंभ होता है एवं छठे दशक में इसमें तेजी आती है । रूस के किसानों की विमुक्ति अलैक्जेंण्डर द्वितीय की 1861 की राजाज्ञा द्वारा होती है । इन सब परिस्थितियों ने कृषि-विकास में योगदान दिया ।

कृषि औजारों में सुधार, मशीनों की खोज एवं खेती में उनके प्रयोग एवं रासायनिक खाद के उपयोग के लिए अत्यधिक धन की आवश्यकता थी । हरबर्ट हीटन लिखते हैं कि ब्रिटिश ड्रेनेज योजनाएं महंगी थीं । इस पर प्रति एकड़ लगभग चार पाउन्ड खर्च होता था । इसी तरह बेकार पड़ी हुई भूमि को उपजाऊ बनाने में भी अत्यधिक खर्चा होता था । प्रश्न यह उठता है कि इतनी बड़ी मात्रा में पूंजी कहां से आती ? किसान इस स्थिति में नहीं होता था कि धन बचत करके कृषि सुधार में लगा सके । सामान्यत: ड्रेनेज एवं अन्य कार्यो के लिए पूंजी-निवेश का उत्तरदायित्व भूस्वामी का ही था । बड़े भूस्वामी अपनी भूमि पर बड़ी मात्रा में पूंजी निवेश करता था जबकि छोटा थोड़ी मात्रा में । इंग्लैण्ड के कृषि क्षेत्र में इन तत्वों के मिलन ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । बड़े भू-स्वामी ने बड़ी योजनाओं में अपनी पूंजी लगाई जबकि छोटे टिनेन्ट फार्मर (किरायेदार किसान) ने औजारों में धन लगाया । लेकिन दोनों की समान भागीदारी ने इंग्लैण्ड की कृषि क्रांति को एक नया मोड़ दिया एवं सम्पूर्ण महाद्वीप में उसे अग्रणी स्थान दिलाया । कहने का तात्पर्य यह है कि इंग्लैण्ड ने कृषि के क्षेत्र में महाद्वीप के अन्य देशों का मार्ग निर्देश किया ।

भू-स्वामियों का हित पूंजी निवेश में इसलिए अधिक था क्योंकि इसके द्वारा वे बढ़े हुऐ किराये से अपनी आय को बढ़ा सकते थे । लेकिन दूसरी तरफ किरायेदार किसान भी नए आविष्कारों के खेती में प्रयोग द्वारा अपने राजस्व को बढ़ा सकते थे । लेकिन इसके बावजूद भी पूंजी निवेश का भार उसके कन्धों पर जाता था जिसके पास आवश्यक पूंजी थी । यही कारण है कि इस सदी में इंग्लैण्ड में सर्वाधिक नवीन खोजें हुई ।

इससे ठीक विपरीत फ्रांस एवं बेल्जियम की नितान्त भिन्न स्थिति थी । यहाँ के भू-स्वामियों का चरित्र इंग्लैण्ड के भूस्वामियों से अलग था उनकी खेती में किसी भी प्रकार की रुचि नहीं थी । वे अपना भाग्य खेती से नहीं जोड़ना चाहते थे बल्कि राज दरबार से जुड़े रहकर ऊंचे ऊंचे ओहदे हासिल करके अपने सामाजिक स्तर को बनाए रखना चाहते थे । परिणामस्वरूप वे लगातार अपनी जमीन बेचते जा रहे थे । आर्थर बिरनी ने इस स्थिति को अत्यन्त दिलचस्प तरीके से व्याख्यायित किया है । उन्होंने लिखा है कि - "भूस्वामी द्वारा किसान को निष्कासित

करने के स्थान पर, वह किसान था जिसने भू-स्वामी को भूमि से वंचित कर दिया था । " कहने का तात्पर्य है कि भू-स्वामियों की अरुचि पूंजी-निवेश में एक बाधा थी ।

हरबर्ट हीटन का मानना है कि इंग्लैण्ड में कोई ऐसी वित्तीय संस्था विकसित नहीं हुई थी जो कि विशेषत: ग्रामीण कर्जे दे सके । महाद्वीप में प्रशिया एक ऐसा राज्य था जहां "लैन्डस्वाफटन" नामक संस्था अपने भू-स्वामी सदस्यों को ऋण दिया करती थी । वे बाण्ड की बिक्री के द्वारा धन इकट्ठा करते थे एवं बहुत ही कम ब्याज पर ऋण प्राप्त करते थे । जर्मनी में सहकारी समितियों की कृषि सुधारों के लिए वित्तीय सहायता अत्यन्त महत्वपूर्ण थी । फ्रेडरिक रफैसेन ने जर्मनी के राईन क्षेत्र में 1846-47 ई0 में बेकरी सरकारी समिति खोली । उसने इसकी सफलता से प्रोत्साहित होकर 1858 ई0 में एक ग्रामीण पारस्परिक सहायता समिति स्थापित की । इस सोसायटी का उद्देश्य था फार्मरस को कम या बिना ब्याज के त्रण देना । किसानों के लिए सबसे अच्छा अवसर था । हालांकि रेफीसेन की ग्रामीण बैंक विशेषत: जर्मनी के एकीकरण के पश्चात् पश्चिमी जर्मनी में फैली ।

इन बैंकों के पास अपनी नियमित पूंजी नहीं थी, लेकिन सदस्यों की बचत से ऋण दिया जाता था । यह कर्जा सदस्य की व्यक्तिगत जमानत एवं उनकी भूमि पर दिया जाता था । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कर्ज लेने वाले की हैसियत अथवा सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार पर दिया जाता है ।

रैफीसेन ने 1876 ई0 में एक सेन्ट्रल बैंक का गठन किया जो कि एक शेयर होल्डिंग कम्पनी की तरह थी । यह एक प्रकार से स्थानीय बैंकों के लिए बैंकरों के समान थी । इसने थोड़े वर्षो के पश्चात् "डेलीटजेस्व" बैंक से समझौता भी किया जो कि शहरों में इसी प्रकार का कार्य करती थी । दोनों बैंक बैन्कर्स का तो कार्य करती ही थी लेकिन खाद, बीज, बैल एवं कच्चे माल आदि की थोक खरीद का कार्य करती थी । ये अपने सदस्यों के लिए इस प्रकार के सारे कार्य करती थीं जिससे कि उनको अधिक से अधिक लाभ पहुँच सके ।

1830 ई0 के पश्चात् दूसरे मध्य यूरोपीय राज्यों में भी इसका अनुसरण किया गया । ऐक जोइन्ट-स्टाक स्थापित किया गया । फ्रांस में 1852 ई0 में "क्रेडिट फोन्सीयर" राज्य द्वारा सहायता के आधार पर कायम किया गया । कहने का तात्पर्य यह है कि कृषि सुधारों में पूंजी निवेश के लिए कई संस्थाएं स्थापित की गई जो इस क्षेत्र में अत्यन्त सक्रिय थीं । लेकिन छोटे जमीदारों एवं किसानों के लिए वास्तव में कोई भी संगठित संस्था नहीं थी जो कि उनको वित्तीय सहायता दे सके ।

यातायात के साधनों के विकास के कारण बाजारों का तेजी से विस्तार हुआ । इससे फार्मरस को बहुत अधिक लाभ पहुंचा । पहले उनकी आखों के सामने सिर्फ स्थानीय बाजार होता था लेकिन अब दूर-दराज के बाजार भी उसकी पहुँच की सीमा में आ गए । 1833 ई0 में मालगाडिया जानवरों, भेड़ों एवं सुअरों से लदी रहती थीं ।

1840 में स्टीम जहाज आयरलैण्ड से बड़ी मात्रा में मांस, अण्डे एवं जानवरों से लदे इंग्लैण्ड पहुंचते थे । 1330 ई0 में इंग्लैण्ड में रेलवे युग था । 1838 ई0 में रेलों का तेजी से विस्तार होता है । रेलवे के फैलाव के कारण कच्चे माल के स्रोतों एवं संभावित बाजारों तक पहुंच आसान हो गई । इससे कृषि क्षेत्र अत्यन्त लाभान्वित हुआ ।

जब रेलवे के आर्थिक लाभ उजागर होने लगे तक यूरोप के राज्यों ने इसकी तरफ विशेष ध्यान देना प्रारम्भ किया । राज्य ने अधिकांश मामलों में यातायात के साधन की योजनाएं बनाई एवं रेलवे के निर्माण के लिए अग्रिम धन दिया । इंग्लैण्ड के पद चिन्हों पर बेल्जियम चला । यहां के राज्य ने 1834 ई0 में रेलों के निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दिया । थोड़े ही समय में बेल्जियम में रेलों का जाल बिछा दिया गया । न केवल आन्तरिक क्षेत्रों को एक दूसरे से जोड़ा गया बल्कि पड़ौसी देशों के साथ भी सम्पर्क स्थापित कर लिया गया ।

फ्रांस ने भी बेल्जियम का अनुसरण किया एवं उन्नीसवीं सदी के चौथे दशक में रेलों के विकास में वहां तेजी आई । जर्मनी ने भी रेलों के विकास के लाभ का अनुभव किया । लेकिन जर्मनी अपनी राजनैतिक परिस्थितियों के कारण शीघ्र इसका लाभ उठा नहीं पाया । 1838 से 1847 ई0 के मध्य रेलों में तेजी से वृद्धि हुई । फिर धीरे-धीरे रेलों का जाल बिछता चला गया । कहने का तात्पर्य यह है कि उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में रेलों का तीव्रता से विकास हुआ । परिणामस्वरूप खाद्यान्नों की आपूर्ति तेजी से होने लगी एवं उसकी मात्रा में तेजी से वृद्धि हुई । एक अनुमान के अनुसार इंग्लैण्ड में खाद्यान्नों का आयात 1870 ई0 में 1840 की तुलना में चार गुना बढ़ गया । इंग्लैण्ड को खाद्यान्नों की अधिकांश आपूर्ति यूरोप से होती थी । बाद में 1842 ई0 में अमेरिका के आ जाने से खाद्यान्नों के व्यापार में तेजी से विस्तार हुआ ।

अत: यह कहा जा सकता है कि 1830-70 के मध्य यूरोप में कृषि क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई । इस प्रगति की शुरूआत इंग्लैण्ड से हुई एवं धीरे-धीरे यूरोपीय देशों ने भी उसका अनुसरण करना प्रारंभ कर दिया । बाजारोन्मुखी उत्पादन ने कृषि को गतिशीलता प्रदान की । यूरोप में जंगलों के काटे जाने, ड्रेनेज, सिंचाई एवं नयी भूमि पर खेती करने आदि के प्रयासों के द्वारा खेती योग्य भूमि में विस्तार हुआ । रसायनशास्त्र एवं दूसरे विज्ञानों के उपयोग के द्वारा भूमि की उपज को बढ़ाया गया । हर दृष्टि से कृषि में - चहुंमुखी विकास हुआ एवं कृषि यूरोपीय समाज का मुख्य व्यवसाय बन गई ।

2.7 बोध-प्रश्न :-

1- क्या कारण है कि अठारहवीं सदी में इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति हो जाने के उपरान्त भी कृषि क्षेत्र पिछड़ा रहा?

2- 1830-70 ई0 के मध्य यूरोप में कृषि विस्तार के कारणों पर प्रकाश डालिए ।

3- 1830 ई0 के पूर्व की कृषि परिस्थितियों का वर्णन कीजिए ।

4- 1830 के पूर्व के समय में कृषि में सुधारों में औद्योगिक क्रांति एवं विज्ञान का कम हाथ था जबकि इसके पश्चातवर्ती सुधारों में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी । इस कथन की व्याख्या कीजिए ।

5- '1830-70 ई0 के मध्य कृषि यूरोपीय समाज का मुख्य व्यवसाय बन गई ।' व्याख्या कीजिए ।

6- बाजार की गतिशीलता 1830-70 के मध्य के कृषि विस्तार के लिए मूलतः उत्तरदायी है । व्याख्या कीजिए ।

7- निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिए-

(अ) भूमि की घेराबंदी आन्दोलन ।

(ब) ड्रेनेज विधि में सुधार ।

(स) कृषि मशीनों की खोज ।

(द) प्राकृतिक एवं कृत्रिम खाद ।

(क) पूंजी निवेश ।

2.8 सन्दर्भ ग्रंथ

1- आर्थर बिरनी: एन इकोनोमिक हिस्ट्री आव यूरोप 1760-1939

2- आर्थर बिरनी: एन इकोनोमिक हिस्ट्री आव द ब्रिटिशआईसल्स

3- हरबर्ट हीटन : इकनामिक हिस्ट्री आव यूरोप

4- इ0 जे0 हौव्सबाम : इन्डस्ट्री एण्ड एम्पायर ।

5- द न्यू केम्बीज माडर्न हिस्ट्री, वोल्यूम 10, 1830-70

6- वाई0 एस0 ब्रेनर : ए शोर्ट हिस्ट्री आव इकनामिक प्रोग्रेस- ए कोर्स इन इकनामिक हिस्ट्री ।

7- हेरी हीरडर: यूरोप इन द नाईन्टिथ सैन्चुरी (अध्याय 5)

8- जी0 ई0 मिन्गे का लेख : द "एग्रीकल्चरल रिवोल्युशन" इन इंगलिश हिस्ट्री- ए रिकंशीड्रेशन (एग्रेरियन कन्डीशन्स इन माडर्न यूरोपियन हिस्ट्री, सं0 चार्ल्स के0 वार्नेर)

इकाई 3

पूर्वी समस्या एवं क्रीमिया का युद्ध

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 पूर्वी समस्या

3.2.1 पूर्वी समस्या क्या थी?

3.2.2 समस्या का आधार

3.2.3 टर्की साम्राज्य के पतन के कारण

3.2.4 पूर्वी समस्या के प्रति प्रमुख यूरोपीय शक्तियों का दृष्टिकोण एवं निहित स्वार्थ

3.2.5 रूस की बल्कान प्रदेश में महत्वाकांक्षाएं

3.2.6 तुर्की साम्राज्य में इंग्लैण्ड की रूचि एवं स्वार्थ

3.2.7 तुर्की साम्राज्य में आस्ट्रिया के हित

3.2.8 तुर्की साम्राज्य में फ्रांस की रूचि

3.2.9 तुर्की साम्राज्य में जर्मनी की रूचि

3.3 रूस की विस्तारवादी नीति एवं पूर्वी समस्या

3.4 क्रीमिया युद्ध से पूर्ववर्ती कतिपय महत्वपूर्ण घटनाएं

3.4.1 कुजुक कैनार्डजी की संधि

3.4.2 जैसी की संधि

3.4.3 बुखारेस्ट की संधि

3.4.4 यूरोपीय शिक्तयों के दृष्टिकोण में परिवर्तन

3.4.5 ईसाई राष्ट्रों का विद्रोह

3.4.6 एड्रियानोपिल की संधि

3.4.7 मेहमत अली की महत्वाकांक्षा

3.4.8 अन्कीयर एकेल्सी की संधि

3.4.9 लन्दन कन्वेन्शन

3.5 क्रीमिया का युद्ध

3.5.1 क्रीमिया युद्ध के कारण

3.5.2 टर्की में बढ़ता रूसी प्रभाव

3.5.3 टर्की के बंटवारे के रूसी पेशकश

3.5.4 पवित्र स्थानों के संरक्षण का झगड़ा

3.5.5 ईसाई प्रजा पर संरक्षण की रूसी मांग

3.5.6 रूस द्वारा वैलेशिया व मोल्डेविया पर अधिकार

3.5.7 विएना नोट

3.5.8 टर्की द्वारा युद्ध घोषणा

3.5.9 साइनोप का कत्लेआम

3.5.10 इंग्लैण्ड तथा फ्रांस द्वारा संयुक्त चेतावनी

3.6 क्रीमिया युद्ध की घटनाएं

3.7 क्रीमिया युद्ध का अंत व पैरिस की संधि

3.8 क्रीमिया युद्ध तथा पैरिस संधि की समीक्षा

3.9 क्रीमिया युद्ध के प्रमुख राष्ट्रों पर प्रभाव

3.10 बोध प्रश्न

3.11 संदर्भ ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा उद्देश्य आपको 19 वीं शताब्दी की यूरोपीय इतिहास की-एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या, पूर्वी समस्या के संबंध में संक्षिप्त जानकारी देना है तत्संबंधी विविध पहलुओं का विश्लेषण करने के उपरान्त हम इस समस्या के एक महत्वपूर्ण सोपान क्रीमिया के युद्ध का विश्लेषणात्मक विवेचन करेंगे । इस इकाई के अध्ययन से आपको निम्नलिखित बातों की जानकारी होगी-

– पूर्वी समस्या क्या थी एवं विविध यूरोपीय शक्तियों के इसमें क्या हित व स्वार्थ अन्तनिर्हित थे?

– रूस की विस्तारवादी नीति ने पूर्वी समस्या को कैसे उलझा दिया?

– क्रीमिया के युद्ध की पूर्ववर्ती पूर्वी समस्या से संबंधित कतिपय महत्वपूर्ण घटना एंव उनका महत्व?

– क्रीमिया के युद्ध के कारण, घटनाएं, पैरिस की संधि एवं परिणामों का विश्लेषणात्मक मूल्यांकन?

3.1 प्रस्तावना

18 वीं शताब्दी के उतरार्द्ध से तुर्की साम्राज्य के पतन ने एक अत्यन्त गंभीर एवं जटिल अन्तर्राष्ट्रीय समस्या को जन्म दिया जो आगे चलकर 19 वीं शताब्दी की यूरोपीय समस्याओं में शायद सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या के रूप में मुखरित हुई । यह समस्या क्या थी और किन-किन संदर्भों में यह यूरोप की कूटनीति के साथ जुड़ी थी, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका सही-सही उतर दे पाना एक कठिन एवं दुसाध्य कार्य है । यदि इसे अति संक्षेप में परिभाषित करने का प्रयास किया जाये तो यह कहा जा सकता है कि यह समस्या तुर्की साम्राज्य के क्रीमिया पतन, रूस की विस्तारवादी महत्वाकांक्षाओं, आस्ट्रिया द्वारा अपने आपको बचाने के अंतिम प्रयासों तथा इंग्लैण्ड द्वारा अपने उपनिवेशों की तरफ जाने वाले मार्गो को बंद करने की चेष्टाओं, सर्वस्लाववाद एवं सर्व-जर्मनवाद के मध्य निरन्तर बढ़ते हुए टकरावों का सम्मिलित परिणाम थी ।

3.2 पूर्वी समस्या

3.2.1 पूर्वी समस्या क्या थी ?

वस्तुत: यह समस्या प्रश्न तुर्की साम्राज्य से संबंधित था । यूरोप में तुर्की साम्राज्य के अत्यन्त ही दुर्बल हो जाने एवं विघटन तथा पतन की ओर अग्रसर हो जाने के कारण जो समस्याएं उत्पन्न हुई उन्हीं को पूर्वी प्रश्न या पूर्वी समस्या कहा गया । क्योंकि तुर्की साम्राज्य का यूरोपीय भाग यूरोपीय-महाद्वीप के पूर्व में स्थित था, इसलिए इस समस्या को पूर्वी समस्या के नाम से जाना जाने लगा । लगभग दो शताब्दियों तक यूरोप के राजनीतिज्ञों का मस्तिष्क इस समस्या को सुलझाने में लगा रहा । तुर्की साम्राज्य के पतन से पड़ौसी राज्य अपने स्वार्थों के दंगल में उलझ गये । यूरोप के इस भू-भाग को बाल्कन प्रायद्वीप (Balkan Peninsula) भी कहते हैं । इसी कारण इस समस्या को बाल्कान समस्या भी कहा गया है । 19 वीं शताब्दी के आरंभ में यह प्रश्न इतना उलझा हुआ नहीं था किन्तु इसके अंत होते-होते यह प्रश्न काफी जटिल हो गया । लार्ड मार्ले के मतानुसार पूर्वी समस्या ने कई प्रकार के परस्पर विरोधी हितों, प्रतिद्वंदी जातियों और विरोधी धर्मो से संबंधित प्रश्नों को उभार दिया । एक कूटनीतिज्ञ की दृष्टि में पूर्वी समस्या गठिये की बीमारी के समान है जो कि टांग पकड़ती है तो कभी हाथ । सौभाग्य होगा यह तुम्हारे पेट में न घुस जाये । "इस समस्या की प्रकृति का विश्लेषण किया जाये तो इसके कुछ मूल पहलू दृष्टिगोचर होते हैं जो तुर्की साम्राज्य के विघटन, टर्की तथा उसकी ईसाई प्रजा में संबंध, बाल्कन प्रदेश की विभिन्न जातियों में राष्ट्रीय भावना तथा टर्की में विदेशी हस्तक्षेप आदि तथ्यों से संबंधित हैं ।

3.2.2 समस्या का आधार

मध्यकालीन युग में जब इस्लाम अपने विस्तार की चरम स्थिति में था तक तुर्की के शासकों ने पूर्वी यूरोप के बड़े भू-भाग पर कब्जा कर लिया, विशेषत: उस क्षेत्र पर जिसे बाल्कान कहते हैं । जिस समय तुर्की ने इस क्षेत्र पर कब्जा किया तब यह क्षेत्र बहुत पिछड़ा हुआ था और इसमें बसने वाले अधिसंख्य लोग आर्थोडक्स चर्च को मानने वाले गरीब किसान थे । आरंभ में तुर्की सुलतानों का शासन बहुत उदार था । यही कारण था कि लगभग 200 वर्षो तक इस क्षेत्र में कोई विशेष समस्या उत्पन्न नहीं हुई और स्थानीय जनता एवं शासक वर्ग के सम्मिलित प्रयासों से इस क्षेत्र का चहुंमुखी विकास सम्पन्न हो सका । पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक इस साम्राज्य का निरन्तर विकास होता रहा । जिस समय वह अपनी उन्नति की चरम सीमा पर था उस समय इस विशाल साम्राज्य के अन्तर्गत बल्कान , एशिया माइनर, सीरिया, मेसोपोटामिया, मिश्र, अरब तथा अफ्रीका के कुछ देश सम्मिलित थे । परन्तु, अठारहवीं शताब्दी के उतरार्द्ध काल में इसका विकास रूक गया और यह महान् साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर होने लगे ।

3.2.3 टर्की साम्राज्य के पतन के कारण

समय के साथ-साथ जब विश्व भर में इस्लाम का पतन प्रारंभ हुआ तो कतिपय राजनीतिक कारणों से; जिनमें 1789 की फ्रांस की महान् राज्य क्रांति का मुख्य योगदान था तथा कुछ तुर्की के जागीरदार शासकों (जिन्हें पाशा कहा जाता था) के दमनकारी प्रयासों के विरोध में स्थानीय आर्थोडोक्स चर्च की अनुयायी ईसाई जातियों का विद्रोह करने लगीं । इतने विस्तृत साम्राज्य पर नियंत्रण रखने की क्षमता तुर्क सुल्तानों में नहीं थी । जब कभी दूर के प्रांत में विद्रोह हो जाता तो उसे दबाना कठिन हो जाता था । तुर्क सुल्तानों का शासन प्रबंध भी निकम्मा, अयोग्य व निर्दयतापूर्ण था । सुल्तान स्वयं ऐश्वर्य विलास-वैभव मय जीवन व्यतीत करते थे व शासन व्यवस्था पर कोई ध्यान न देते थे । परिणामत: शासन व्यवस्था जर्जरित व खोखली होती चली गई । इसका अपरोक्ष परिणाम यह निकला कि खोखली शासन व्यवस्था के कारण प्रजा की साम्राज्य के साथ कोई सहानुभूति न रही । यही नहीं टर्की के दूरस्थ प्रांतों के गवर्नरों ने स्वतंत्र होने के लिए विद्रोह कर दिये । अल्जियर्स तथा ट्यूनिस नाममात्र को ही टर्की के अधीन थे । मिश्र का मेहमतअली भी स्वतंत्र राज्य स्थापित करने की चेष्टा में था । अल्बानिया में अली आफ जनीना भी अपनी शक्ति बढ़ा रहा था अर्थात् चहूँ ओर बगावतें व विद्रोह पनप रहे थे किन्तु इनका दमन करने के लिए तुर्की में अब वह सैन्य शक्ति विद्यमान नहीं थी जिस सैन्य शक्ति के कारण कभी यूरोप तुर्की का लौहा मानता था । अब तक वहाँ की सैन्य शक्ति इतनी अशक्त, जर्जरित व बोझिल हो चुकी थी कि इन विद्रोहों का कठोरता से दमन तो दूर रहा अब तो विदेशी हस्तक्षेप से अपने आपको सुरक्षित रख पाना भी टर्की के लिए कठिन हो गया था । टर्की के मुसलमान शासकों द्वारा बल्कान प्रदेश की ईसाई प्रजा पर किये जाने वाले अत्याचारों ने आग में घी का कार्य किया व वे सब भी टर्की के विरूद्ध हो गये । सन् 1789 में जब फ्रांस की क्रांति हुई तो इस क्षेत्र की ईसाई जातियाँ दो साम्राज्यों के अधीन थीं । पहली वे जो आस्ट्रिया के हैप्सवर्ग शासकों के अधीन थी, जैसे मग्यार, उत्तरी स्लाव, जिनमें चैक भी सम्मिलित थे, स्लौवेक, पोल तथा दक्षिणी स्लाव जिनमें सर्व, कीट तथा स्लाविन्स भी सम्मिलित थे । दूसरी ओर सन् 1789 में मुस्लिम तर्कों के अधीन जातियाँ थी यथा-यूनानी, बुल्गारियावासी, सर्बियावासी, रूमानियावासी व अल्बानियावासी । यहां यह कहना प्रासंगिक होगा कि तुर्की शासन के अधीन रहने वाली ये जातियां आपस में काफी घुलमिल गई थी व हर स्तर पर तुर्की के विरूद्ध हो चुकी थीं ।

विभाजन एवं विघटन की प्रकिया में स्पेन व पौलेण्ड के विभाजन के पश्चात् अब तीसरा विभाजन टर्की का होने का था । परन्तु सैनिक व भौगोलिक कारणों से टर्की के विभाजन में विलम्ब हो रहा था । यूरोप के बड़े राष्ट्रों की रूचि अभी टर्की की ओर नहीं थी । टर्की का पड़ौसी राष्ट्र आस्ट्रिया-हंगरी पश्चिमी यूरोप की समस्याओं की ओर अधिक झुका हुआ था व बवेरिया पर अपना अधिकार जमाने व जर्मनी में अपना प्रभाव बढ़ाने में लगा हुआ था किन्तु उसने बाल्कन प्रदेशों की ओर ध्यान नहीं दिया तथा तुर्की संबंधी प्रश्नों पर रूस की हिमायत करता रहा । यद्यपि वह जानता था कि रूस उसका प्रतिद्वंदी है किन्तु अठारहवीं शताब्दी, में रूस एक बड़ी शक्ति के रूप में उदित हुआ । इस कारण तुर्की की अवनति का मार्ग प्रशस्त हुआ

। कारण यह था कि रूस भी अपनी शक्ति बढ़ाना चाहता था और उसकी प्रतिद्वंदिता भी पश्चिमी राष्ट्रों से थी; इसलिए अपने इतिहास में पहली बार तुर्की, पोलैण्ड व स्वीडन के समान एक शक्तिशाली यूरोपीय राज्य की महत्वाकांक्षा के मार्ग में रोड़ा स्वरूप दिखाई देने लगा । इतिहासज्ञ कैटल्बी के मतानुसार- ' 'रूस के शासकों के हृदय में पश्चिमी यूरोप में प्रभाव क्षेत्र बढ़ाने की भारी महत्वाकांक्षाएं थी; किन्तु स्वभावत: स्वीडन, पौलेण्ड व तुर्की तीनों ही देश रूस की पश्चिमी महत्वाकांक्षाओं के स्वाभाविक शत्रु थे; 18 वीं शताब्दी, तक रूस की बराबर इन तीनों देशों से अनबन रही । स्वीडन की इच्छा के विरूद्ध रूस का वाल्टिक सागर में प्रवेश हो गया और सन् 1815 में रूस ने फिनलैण्ड पर अधिकार कर लिया ताकि वह वाल्टिक सागर की रक्षा कर सके । सन् 1772, 1773 एवं 1775 में अशक्त पोलैण्ड का विभाजन हो गया । इन विभाजनों के फलस्वरूप पोलैण्ड का कुछ भाग प्रशा को मिला, कुछ भाग आस्ट्रिया को मिला और कुछ भाग रूस को मिला । किन्तु तुर्की पर विशेष रूप से रूस की आँखें लगी हुई थीं । रूस चाहता था कि काला सागर और जलडमरूमध्य पर अधिकार हो जावे ताकि भूमध्यसागर का मार्ग इसके अधिकार में रहे ।

3.2.4 पूर्वी प्रश्न के प्रति प्रमुख यूरोपीय शक्तियों का दृष्टिकोण एवं निहित स्वार्थ

3.2.5 रूस की बल्कान प्रदेश में महत्वाकांक्षाएं

पूर्वी समस्या के प्रति रूस की विशेष रूचि थी । पीटर महान् (1682 से 1725 ई0) की यह निश्चित नीति थी कि रूस के साम्राज्य का विस्तार किया जाये । रूस की नीति के मुख्य दो उद्देश्य थे । प्रथम, टर्की के साम्राज्य को खण्डित कर दिया जाये और कुस्तुन्तुनिया पर अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया जाये । द्वितीय, यदि यह संभव न हो तो टर्की के सुल्तान पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया जाये ताकि टर्की रूस के प्रभाव में रहे और रूस के अनुसार कार्य करे । बाल्कन प्रदेश में रूस की अत्यधिक रूचि बनी रहने के कतिपय ठोस कारण थे जिनका उल्लेख करना अपरिहार्य है ।

रूस अपने व्यापार-वाणिज्य तथा जलशक्ति के प्रसार हेतु समुद्र तक पहुंचने का खुला मार्ग चाहता था । रूस के पास कोई ऐसा समुद्रतट नहीं था जो 12 माह उपयोग के लिए खुला रहता हो । रूस के अपने एकमात्र बन्दरगाह आर्चेंगिल (Archangle) का प्रयोग वर्ष में 5 महीने हो सकता था बाकी महीनों में वहाँ का समुद्र बर्फ के रूप में जम जाता था । रूस काले सागर तथा उसके जलडमरूमध्य पर अपना नियंत्रण स्थापित करना चाहता था ताकि भूमध्य सागर का मार्ग उसके लिए अधिकार में आ जाये । टर्की के साम्राज्य में ग्रीक आर्थोडक्स चर्च को मानने वालों की बहुतायत थी और उसके पवित्र स्थान भी टर्की के अधिकार में थे । रूस में भी इसी धर्म की प्रधानता थी और धार्मिक कारण से भी रूस की रूचि टर्की में थी । इसका यह भी दावा था कि वह उस तुर्की साम्राज्य का ऐतिहासिक उत्तराधिकारी है जो कभी रोम के साथ-साथ समूचे सभ्य संसार पर अधिपत्य रखता था । बाल्कन प्रदेश में रूस की रूचि का जातीय कारण भी था । रूस न केवल बाल्कन का पड़ौसी था वरन् रूस व बाल्कन प्रदेश दोनों के लोग स्लाब जाति के थे । जाति, भाषा, धर्म, संस्कृति आदि के कारण भी वे परस्पर बंधे हुए थे ।

रूस के जार विश्व में ग्रीक आर्थोडोक्स चर्च का संरक्षक था और तुर्की के लगभग सारे ईसाई प्रजातंत्र ग्रीक चर्च के भक्त थे । जार चाहता था कि सेंट सोफिया भी ग्रीक चर्च के अधिकार में आ जाये और गौरवहत राजधानी को पुन: गौरवान्वित किया जा सके । जार यह भी चाहता था कि कुस्तुन्तुनिया की प्रतिष्ठा बड़े किन्तु उसका रूसीकरण हो जाने और तुर्की शहंशाह, चर्च के संरक्षक तथा पूर्वी यूरोपीय देशों के नरेशगण जार की अधीनता स्वीकार करे क्योंकि जार ही उनका वास्तविक हितेषी है । इन्हीं कारणों से पीटर महान् से लेकर सन् 1914 के प्रथम विश्वयुद्ध तक रूस की नीति तुर्की के प्रदेशों को हड़पने की ही रही जो कि पूर्वी समस्या का एक अहम् कारण थी ।

3.2.6 तुर्की साम्राज्य में इंग्लैण्ड की रूचि एवं स्वार्थ

रूस की नीति इंग्लैण्ड के हितों के विरूद्ध थी । इंग्लैण्ड टर्की में रूस के बढ़ते प्रभाव को रोकना चाहता था । उसे भय था कि टर्की पर रूस का साम्राज्य स्थापित हो जाने से इंग्लैण्ड का भारतीय साम्राज्य खतरे में पड़ जायेगा और भूमध्य सागर पर भी रूसी प्रभाव बढ़ जायेगा । इंग्लैण्ड व्यापारिक उद्देश्यों से भी टर्की में रूचि रखता था । टर्की पर किसी भी अन्य शक्ति का अधिकार हो जाने से उसके व्यापार को हानि की आशंका थी । भूमध्यसागर पर रूसी प्रभाव स्थापित हो जाने से इंग्लैण्ड को न केवल व्यापारिक बल्कि सैनिक दृष्टिकोण से भी हानि होती । यही कारण था कि इंग्लैण्ड टर्की साम्राज्य को हर स्थिति में बनाये रखना चाहता था ।

3.2.7 तुर्की साम्राज्य में आस्ट्रिया के हित

आस्ट्रिया चारों ओर से भूमि से घिरा हुआ था । अत: समुद्र-तट तक पहुँचने के लिए उसे मार्ग चाहिये था जो उसके टर्की के साम्राज्य में से ही प्राप्त हो सकता था । इसी पर उसका व्यापार निर्भर था । यदि आस्ट्रिया को इस ओर थोड़ा सा भी स्थान प्राप्त हो जाता तो उसे अपने साम्राज्य के विस्तार में आसानी रहती । आस्ट्रिया का अधिकांश व्यापार डैन्यूब नदी से होकर होता था । आस्ट्रिया नहीं चाहता था कि डैन्यूब नदी के मुहाने पर रूसी प्रभुत्व हो जाये । रूस की तरह आस्ट्रिया में भी स्लाब अधिक थे । अखिल स्लाव आन्दोलन रूसी सहायता व समर्थन से बाल्कन में जोर पकड़ रहा था । आस्ट्रिया को रूस का पड़ोसी होने से भय था कि आस्ट्रियन स्लाव जनता न भड़क उठे ।

3.2.8 तुर्की साम्राज्य फ्रांस की रूचि

तुर्की का पुराना मित्र होने के कारण फ्रांस को टर्की साम्राज्य में विशेष व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त थीं । फ्रांस और अधिक सुविधाएं पाना चाहता था । भूमध्यसागर पर अधिकार हो जाने से उसकी समस्या और भी सुलझ जाती । पूर्वी समस्या में फ्रांस की धार्मिक रूचि यह थी कि वह बहुत समय से वहां के रोमन कैथोलिक्स का संरक्षक था ।

3.2.9 तुर्की साम्राज्य में जर्मनी की रूचि

विलियम द्वितीय बर्लिन बगदाद रेलवे लाईन बनाकर अपने व्यापारिक एवं राजनैतिक हितों की पूर्ति करना चाहता था । कैसर विलियम की नीति टर्की के साम्राज्य को बनाये रखने की थी ।

3.3 रूस की विस्तारवादी नीति एवं पूर्वी समस्या

रूसी महत्वाकांक्षाएं एवं उसकी विस्तारवादी नीति कितनी सोची समझी हुई थी इसका अनुमान इस आधार पर लगाया जा सकता है कि उसकी हर गतिविधि भावी संकट का संकेत देती थी । पीटर महान् ने बाल्टिक सागर के साथ लगने वाले क्षेत्रों पर नियंत्रण कर लिया जिनमें रीगा भी था जहां एक नये महानगर सैंटपीटर्सबर्ग की स्थापना की गई । कैथेराइन द्वितीय ने 1772 से 1795 के मध्य पोलैण्ड पर कब्जा कर लिया । उसने सन् 1783 में क्रीमिया और फिर सन् 1794 में आडेसा पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया । उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रूसी विस्तारवादी नीति का मुख्य ध्येय भूमध्यसागर की ओर बढ़ना था । जब क्रीमिया के युद्ध में रूस का यह मार्ग इंग्लैण्ड व फ्रांस ने बंद कर दिया तो रूस ने गरम सागरों तक पहुंचने न के नये रास्ते पकड़ लिये । रूस काकेसस पर्वतों के रास्ते फारस की ओर एवं सिन्ध नदी की प्रयोग करने के लिए अफगानिस्तान की ओर अग्रसर हुआ व इस प्रकार बहुचर्चित पूर्वी समस्या से भारत भी जुड़ गया । क्रीमिया ओडेसा पर रूसी नियंत्रण व क्रीमिया की हार के बाद रूस का फारस, अफगानिस्तान व फंचूकिया की ओर से गरम सागरों तक पहुंचने के प्रयासों ने इंग्लैण्ड व रूस में टकराव पैदा कर दिया जो सन् 1854 के क्रीमिया के युद्ध से लेकर सन् 1907 ई0 तक यूरोप में गतिरोध पैदा करता रहा ।

रूस द्वारा तुर्की की राजधानी कुस्तुन्तुनिया पर एवं बल्कान प्रदेश में अपना प्रभाव बढ़ाने के प्रयासों के परिणाम स्वरूप 1854 ई0 का क्रीमिया युद्ध व सन् 1877 के रूस-तुर्की युद्ध हुए । अफगानिस्तान की ओर अग्रसर होने से दो भारत-अफगानिस्तान युद्ध हुए । सुदूर पूर्व में प्रसार के फलस्वरूप पहले सन् 1894 में कोरियाई युद्ध तथा बाद में सन् 1904 में रूस जापान युद्ध हुए जिनके परिणाम स्वरूप इंग्लैण्ड जापान मैत्री हुई । उपर्युक्त स्थिति में उत्पन्न समस्या ही वास्तव में पूर्वी समस्या है । सन् 1840 की घटनाओं एवं विशेषकर क्रीमिया युद्ध विषयक घटनाचक्र से ठीक प्रकार से समझने के लिए यह अपरिहार्य है कि हम पहले इसके पूर्व की कतिपय महत्वपूर्ण घटनाओं पर दृष्टिपात करें ।

3.4 क्रीमिया युद्ध से पूर्ववर्ती कतिपय महत्वपूर्ण घटनाएं

3.4.1 कुजुक-कैनार्डजी की संधि (1774 ई0)

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, विशेषकर कैथेराईन- के राज्यकाल में रूस की महत्वाकांक्षाएं पूर्ण होने लगीं । 1774 की कुजुक कैनार्डजी की संधि द्वारा रूस को कालेसागर के उत्तरी तट पर अधिक मिल गया तथा डान व नीपर नदी के मुहानों पर भी उसका नियंत्रण स्थापित हो गया । रूस को तुर्की की नदियों, काले सागर में और डेन्यूव नदी में व्यापारिक अधिकार प्राप्त हो गये । कुस्तुन्तुनिया में रूसी दूतावास की स्थापना की गई । रूस को तुर्की साम्राज्य में निवास करने वाले ग्रीक ईसाईयों के संरक्षण का अधिकार दे दिया गया । वैलेशिया, मोल्डेबीया नामक डेन्यूब के उत्तर में स्थित रियासतों में रूस को कुछ ऐसे अस्पष्ट अधिकार प्राप्त हो गये जिनके आधार पर वह तुर्की साम्राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकता था ।

3.4.2 जेसी की संधि (1792 ई0)

रूस व आस्ट्रिया ने सम्मिलित रूप से टर्की पर आक्रमण कर दिया परन्तु 1791 में आस्ट्रिया को तुर्की युद्ध से हटना पड़ा क्योंकि उसकी सैनिक पराजय हुई, उसके अपने राज्य क्षेत्र में व्यापक असंतोष व्याप्त हो गया । प्रशा, ब्रिटेन व हालैण्ड में तिहरी संधि हो गई । अगले वर्ष ही रूस को मजबूरन जेसी (Jassy) की संधि करनी पड़ी क्योंकि उसकी स्वीडन के साथ लड़ाई छिड़ गई व पौलेण्ड में षड्यन्त्र रचे जाने लगे फिर भी कैथेराईन-II ने रूस के लिए किमिया विजय किया तथा रूस की सीमाएं नीस्टर तक विस्तृत हो गई ।

3.4.3 बुखारेस्ट की संधि (1812 ई0)

1912 में मास्को युद्ध से ठीक पहले अलैकजेण्डर ने तुर्की के साथ बुखारेस्ट की संधि कर ली । इस संधि द्वारा रूस को बेसेरेबिया प्राप्त हुआ और इस प्रकार रूस का राज्य तुर्की की अधीन रियासतों तक पहुंच गया था । 19 वीं शताब्दी में कुछ नई घटनाएं हुई जिनके कारण रूस व तुर्की के संबंध जटिल हो गये ।

3.4.4 यूरोपीय शक्तियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन

नेपोलियन के साथ चलने वाले लम्बे युद्धों के पश्चात् यू0 के0 व आस्ट्रिया ने यह अनुभव किया कि रूस वास्तविक खतरा है और 1815 में तो रूस यूरोपीय शक्ति संतुलन के लिए एक चुनौती था । वियना कांग्रेस के बाद ऐसा प्रतीत होने लगा मानो सम्पूर्ण यूरोप रूस के अधीन होने जा रहा है । 1815 में यू0 के0 ने आयोनियन द्वीपों की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया । इससे यह निष्कर्ष निकलता था कि अब ब्रिटेन की अभिरूचि निकट पूर्व के मामलों में बढ़ रही है यद्यपि छोटे पिट के जमाने में इंग्लैण्ड को यह भान हो चला था कि रूस के बढ़ते हुए प्रभाव क्षेत्र के कारण उसके पूर्वी हित संकट में हैं । कैसलरी, कैनिंग, पामर्स्टन और बाल्कन में डिजराइली की नीति को सर्वप्रथम ट्रिपल-एलाईनस द्वारा मूर्तस्वरूप प्रदान किया गया । इस संधि का मूल ध्येय यही था कि रूसी मालू के बढ़ाव को रोका जावे और दूसरा उद्देश्य यह था कि तुर्की साम्राज्य की रक्षा की जाये, यद्यपि दूसरा उद्देश्य मुख्य उद्देश्य के अधीन था ।

3.4.5 ईसाई राष्ट्रों का विद्रोह?

अब ऐसा अवसर था जब तुर्की पश्चिमी राष्ट्रों की छत्र छाया में और अपने श्रेष्ठ सुल्तानों सलीम तृतीय और मेहमूद द्वितीय के शासनकाल में पुनर्जीवन प्राप्त करता, किन्तु दुर्भायवश स्वयं तुर्की साम्राज्य में ईसाई बल्कान राष्ट्रों और सशक्त क्रांतिकारी प्रजा की ओर से विरोध प्रारंभ हो गया । अब यूरोपीय राष्ट्रों के समक्ष तुर्की की समस्या नये रूप में आई । क्या पुराने शत्रु के दमन से नये शत्रु को बल तो नहीं मिलेगा? यदि पश्चिमी राष्ट्र रूस के विरूद्ध कोई कार्यवाही करते, तो क्या उस कार्यवाही से तुर्की साम्राज्य का हित होता अथवा ईसाई रियासतों का हित होता अथवा महत्वाकांक्षी पाशाओं का हित होता? अब सभी पश्चिमी राष्ट्र यह सोच रहे थे कि उन्हें किस नीति का अनुसरण करना लाभकारी होगा । सारी 19 वीं शताब्दी पूर्वी प्रश्न इसी त्रिभुजाकार स्थिति के आसरे लटका रहा ।

किमिया युद्ध की समाप्ति के बाद तक शताब्दी के सम्पूर्ण पूर्व भाग में ईसाई राज्यों ने पूर्वी प्रश्न में पर्याप्त भाग लिया । इस दिशा में मुख्य प्रयत्न सर्बिया, एवं ग्रीस में हुए व कुछ अप्रत्यक्ष प्रयत्न माण्टीनिग्रो में भी किये गये । ब्रिटेन व आस्ट्रिया ने 6 वर्षो तक ग्रीस के विप्लबी ईसाईयों को तुर्की के विरूद्ध कोई सक्रिय सहायता नहीं दी । ब्रिटेन व फ्रांस में जनमत तुर्की द्वारा ईसाईयों के क्रूर दमन से विक्षुब्ध था । रूस अकेला तुर्की में हस्तक्षेप नहीं कर बैठे इसलिए भी दोनों देशों ने 1827 में रूस के जार के साथ मिलकर तुर्की में हस्तक्षेप किया । यह भी महत्वपूर्ण है कि नैवेरिनो (Navarino) की लड़ाई के बाद वैलिंगटन ने कैनिंग की नीति को त्याग दिया और रूस को खुली छूट दे दी ।

3.4.6 एड्रियानोपिल की संधि (1829 ई0)

इसके उपरांत एड्रियानोपिल की संधि हुई जिसके अनुसार ग्रीस रूस की छत्रछाया में स्वतंत्र राष्ट्र होकर उदित हुआ तथा सर्बिया एवं अन्य रियासतें भी रूस के नियंत्रण में तुर्की के आधिपत्य से मुक्त हुई । इस संधि द्वारा जार को कुछ भू-भाग मिले साथ ही कुछ पहले से अधिक व्यापारिक सुविधाएं एवं राजनैतिक अधिकार भी प्राप्त हुए । कुछ ऐसे प्रयत्न किये गये जिसके द्वारा ग्रीस राज्य को ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और रूस के सम्मिलित नियंत्रण में रखने का प्रयास किया गया और यह भी प्रयत्न किया गया कि ग्रीस को तीनों देश मिलकर पुनर्निर्माण के लिए का दें । टर्की ने काले सागर तथा डेन्यूब नदी में सभी तटस्थ राष्ट्रों के जहाजों के आवागमन की स्वतंत्रता स्वीकार की । डान्लीज व बास्फोरस में रूस के अधिकार स्थाई बना दिये गये ।

एड्रियानोपिल की संधि रूसी नीति की महत्वपूर्ण सफलता थी । इससे रूस को व्यापक अधिकार प्राप्त हुए और टर्की का विखण्डन शुरू हो गया । रूस की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई क्योंकि उसने स्वतंत्र यूनान (ग्रीस) का अपने नेतृत्व में निर्माण करवाया ।

इंग्लैण्ड की नीति डांवाडोल हो गई तथा मैटेरनिख की प्रतिक्रियावादी की नीति को गहरा आघात लगा । इसके अतिरिक्त टर्की की निर्बलता का पता यूरोपीय शक्तियों को लग गया । यह भी प्रकट हो गया कि टर्की की समस्या यूरोप की एक महान् व जटिल अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है जिसका संबंध महाशक्तियों के परस्पर विरोधी हितों से है । टर्की साम्राज्य के विरोध में अन्य बाल्कन प्रजातियों को उससे भारी प्रोत्साहन मिला ।

3.4.7 मेहमतअली की महत्वाकांक्षा

यूनान के स्वतंत्रता संग्राम में टर्की के सुल्तान ने मिश्र के पाशा मेहमतअली से सहायता ली थी । इसकी एवज में उसे क्रीट द्वीप की गवर्नरी मिली परन्तु वह इससे संतुष्ट नहीं हुआ । वह बड़ा ही महत्वाकांक्षी था तथा सुल्तान की निर्बलता का फायदा उठाकर अपनी शक्ति का विस्तार चाहता था । 1831 में एक साधारण से बहाने पर मेहमत अली का पुत्र इब्राहिम फिलिस्तीन पर आक्रमण कर सका और दमिश्क पर अधिकार कर बैठा । तुर्की फौजों को हरा कर एशिया माईनर में पैठने लगा । इससे कुस्तुन्तुनिया को वास्तविक खतरा पैदा हो गया । 1832 में तुर्की के सुल्तान ने यूरोप की शक्तियों से सहायता की याचना की किन्तु रूस के

अतिरिक्त किसी ने उत्तर तक नहीं दिया । विवश होकर टर्की के सुल्तान ने रूस की सहायता स्वीकार की परन्तु जब पश्चिमी शक्तियों ने देखा कि रूसी जहाजी बेड़ा बास्पोरस (Bosporus) में लंगर डाले पड़ा है और रूसी सेना तुर्की के प्रदेशों में घुसती चली जा रही है तो वे चिन्तित हो उठे । इंग्लैण्ड, फ्रांस और आस्ट्रिया में तुर्की के सुल्तान को इस बात के लिए विवश कर दिया कि मेहमत अली को सिरिया देकर उसकी छुट्टी कर दी जाय ताकि रूसी सहायता की आवश्यकता ही नहीं रहे । विवशतः सुल्तान ने अप्रैल 1833 में मेहमत अली की मांग स्वीकार कर ली परन्तु रूस इस तरह धोखे में आने वाला नहीं था । उसने सुल्तान से अपनी सहायता का मूल्य वसूल किया ।

3.4.8 अन्कीयर स्कैलेसी की संधि (1833 ई0)

रूस व टर्की के मध्य जुलाई 1833 में अन्कीयर स्कैलसी की एक में प्रतिरक्षात्मक संधि पर हस्ताक्षर हु ए । जिसकी मुख्य मदें निम्न थीं-

1- टर्की रूसी जहाजी बेड़े को काला सागर के जलडमरूमध्यों में से होकर रास्ता देगा ।

2- टर्की युद्ध के समय डांडेनेल्स (Dardenelles) को रूस के अतिरिक्त अन्य सब देशों के जहाजों के लिए बंद रखेगा । (दर्रे दानियाल)

इस संधि के परिणामस्वरूप काला सागर व कुस्तुन्तुनिया पर रूस का प्रभाव बढ़ गया । इस संधि ने कालासागर को एक प्रकार से रूसी झील बना दिया तथा तुर्की की विदेश नीति को रूसी नियंत्रण में कर दिया । 8 वर्ष के लिए की गई यह संधि रूस के जार की कूटनीतिक विजय थी । इससे इंग्लैण्ड व फ्रांस भयभीत हो गये ।

3.4.9 लन्दन कन्वेन्शन (1840-41 ई0)

1- तुर्की को सिरिया, क्रीट और अरब मिले और मेहमत अली को तुर्की के सुल्तान के आधिपत्य में मिश्र का आनुवांशिक पाशा मान लिया गया ।

2- डाडेने स या दर्रे दानियाल को युद्ध काल में सभी देशों के जंगी जहाजों के लिए बन्द कर दिया गया ।

इस संधि ने पूर्वी समस्या को कुछ समय के लिए शांत कर दिया । यह संधि पामर्स्टरन की महान् विजय थी । इसने मिश्र में फ्रांस की आशाओं पर पानी फेर दिया । अन्कियर स्केलेसी की संधि समाप्त हो गई ।

3.5 क्रीमिया का युद्ध (1854-56 ई0)

सन् 1854 ऐसे 1856 ई0 के मध्य काला सागर के उत्तर में स्थित क्रीमिया नामक प्रायद्वीप में एक भयानक युद्ध लड़ा गया जो इतिहास में क्रीमियन युद्ध के नाम से जाना जाता है । इस युद्ध में एक ओर रूस तथा दूसरी और टर्की, ब्रिटेन, फ्रांस एवं स्वार्डिनिया ने भाग लिया । यह युद्ध पूर्व की समस्या के उथल-पुथल भरे इतिहास का एक महत्वपूर्ण सोपान है । इस युद्ध ने 19 वीं शताब्दी की अनेक महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं को भूमिका प्रदान की । इसी क्रीमियन के युद्ध ने 1815 की वियना कांग्रेस द्वारा स्थापित यूरोप की संयुक्त व्यवस्था (Concert of Europe) की धज्जियां उड़ा दी । इतिहासकार कैटल्बी इस संबंध में अपना मत

व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि, लन्दन कन्वेन्शन के दस वर्ष बाद तक तुर्की के साम्राज्य में शांति रही । यहां तक कि यरूशलम (Jerusalem) के प्रतिद्वन्दी चर्चों में भी वैमनस्य शांत रहा किन्तु इसी समय फ्रैंच राष्ट्रपति नेपोलियन तृतीय ने बिना आवश्यकता के लैटिन सन्यासियों का पक्ष लेते हुए उनके अधिकार को वापस करने की मांग की । लैटिन चर्च के सन्यासियों का पक्ष लेकर वास्तव में नेपोलियन तृतीय विश्व व्यापी युद्ध की होली खेलना चाहता था ।

यद्यपि यह युद्ध पवित्र स्थानों (Holy Places) के नियंत्रण के मामूली से झगड़े से शुरू हुआ था तथापि बाद में इस युद्ध ने अति भयानक खूनी रूप धारण का लिया । सर राबर्ट मोरियर इस युद्ध को पूर्ण रूप से अनुपयोगी युद्ध कह कर जहाँ इसे एक महत्वहीन घटना के रूप में देखते हैं वहीं लार्ड क्रोमर ने इसे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना बताते हुए लिखा है कि यदि यह युद्ध नहीं होता और डिजरैली पूर्व की समस्या की ओर दूरदर्शितापूर्ण नीति न अपनाता तो बाल्कन राज्यों को स्वतंत्रता कभी भी न मिलती और रूस का कुस्तुन्तुनिया पर अधिकार होता ।

3.5.1 क्रीमिया युद्ध के कारण

यह युद्ध क्यों हुआ तथा इसके क्या कारण थे? इस पर इतिहासकारों में मतभेद हैं । इंग्लैण्ड की तत्कालीन रानी विक्टोरिया के मतानुसार युद्ध का कारण रूसी जार निकोलस प्रथम की महत्वाकांक्षा एवं स्वार्थपरता थी जबकि किंग्सलेक के अनुसार युद्ध का कारण फ्रांस का शासक नेपोलियन तृतीय था । इतिहासज्ञ एल0 सी0 वी0 सीमेनव के अनुसार इस युद्ध का मुख्य कारण इंग्लैण्ड के उदारवाद तथा रूसी निरंकुशवाद के बीच बढ़ता हुआ संघर्ष था । कुछ अन्य विचारक ऐसा मानते हैं कि इंग्लैण्ड टर्की में बढ़ते हुए रूसी प्रभाव को ईर्ष्या की दृष्टि से देखता था । ए0 जे0 पी0 टेलर ने इस संबंध में अपना मत व्यक्त किया है कि निकोलस को एक आश्रित तुर्की की जरूरत थी क्योंकि केवल आश्रित तुर्की के द्वारा ही रूस की काला सागर के क्षेत्र में सुरक्षा हो सकती थी, नेपोलियन तृतीय को अपने पद को सुरक्षित रखने के लिए युद्ध में सफलता प्राप्ति की आवश्यकता थी, इंग्लैण्ड को अपनी सामरिक सुरक्षा के लिए पूर्वी भूमध्यसागर में एक स्वतंत्र तुर्की की आवश्यकता थी वस्तुत: एक देश के दूसरे देश पर आक्रमण ने नहीं वरन् आपसी अविश्वास ने क्रीमिया के युद्ध को जन्म दिया । (ए0 जे0 पी0 टेलर, स्ट्रगल फार मास्ट्री इन यूरोप, पृ0 60) घटनाओं व तिथियों का आद्योपांत अध्ययन करने पर वास्तविकता के रूप में यह बात उभर कर सामने आती है कि यह युद्ध कई कारणों का संयुक्त परिणाम था ।

3.5.2 टर्की में बढता रूसी प्रभाव

युद्ध का मूल कारण इंग्लैण्ड एवं फ्रांस द्वारा टर्की में रूस के बढ़ते हुए प्रभाव को बर्दाश्त नहीं करना था । इससे यूरोप में शक्ति संतुलन के बिगड़ने का खतरा उत्पन्न हो गया था । इंग्लैण्ड एवं फ्रांस जैसी महाशक्तियां इस नवीन स्थिति को स्वीकार करने को तैयार नहीं थी ।

3.5.3 टर्की के बंटवारे की रूसी पेशकश

अपनी ब्रिटेन यात्रा के दौरान सन् 1844 ई0 में जार निकोलस प्रथम ने टर्की के विभाजन का प्रस्ताव ब्रिटिश प्रधानमंत्री एबरडीन के समक्ष रखा । सन् 1853 में जार ने सैन्ट पीटर्सवर्ग स्थित ब्रिटिश राजपूत सर हैमिल्टन सीपर से कहा कि तुर्की यूरोप का बीमार है; वह एक मरणासन्न रोगी है जो शीघ्र ही समाप्त होने जा रहा है । यह हम सभी के लिए दुर्भाग्यजनक बात होगी कि इस बीमार की सन्निकट मृत्यु से पूर्व ही उसके साम्राज्य का बंटवारा नहीं हुआ। इसलिए इंग्लैण्ड व रूस को चाहिए कि वे इसके साम्राज्य का परस्पर बंटवारा कर लें । यह सुझाव दिया गया कि टर्की के साम्राज्य का बंटवारा इस प्रकार हो कि रूस को कुस्तुन्तुनिया व दर्रे दानियाल (Dardenelles) का नियंत्रण मिल सके और बदले में इंग्लैण्ड को मिश्र, कीट मिल जाय परन्तु इंग्लैण्ड ने इस रूसी पेशकश को दृढ़तापूर्वक विनम्र भाषा में अस्वीकार कर दिया । जे0 ए0 आर0 मैरियट लिखते हैं कि इंग्लैण्ड ने न तो तुर्की के रोग का निदान स्वीकार किया और न रोग के उपचार की तजबीज को ही उचित ठहराया । सारांश में इंग्लैण्ड ने आटोमन साम्राज्य के विभाजन की योजना को बिल्कुल अस्वीकार कर दिया चूंकि ये सभी उसकी आधारभूत नीति तुर्की की अखण्डता को बनाये रखने के विपरीत थे । इससे रूस के जार व इंग्लैण्ड के बीच विरोध की खाई और अधिक चौड़ी हो गई ।

3.5.4 पवित्र स्थानों के संरक्षण का झगड़ा

जैरूशलम और उसके आस-पास के पवित्र स्थानों के संरक्षण के लिए फ्रांस व रूस में आपसी टकराव शुरू हो गया । फ्रांस स्वयं को लैटिन सन्यासियों (Lation Monks) का संरक्षक समझता था जबकि रूस अपने आपको ग्रीक सन्यासियों (Greek Monks) का संरक्षक मानता था । वास्तव में यह झगड़ा तो यूं ही उत्पन्न हो गया । जार निकोलस व नेपोलियन तृतीय एक दूसरे से लड़ने का बहाना तलाश कर रहे थे । नेपोलियन तृतीय जार का इसलिए शत्रु था कि उसने नेपोलियन को शीघ्र ही फ्रांस का राजा स्वीकार नहीं किया था । नेपोलियन गौरवपूर्ण विदेश नीति अपनाकर फ्रांसवासियों में लोकप्रिय भी होना चाहता था । वह धार्मिक स्थानों का संरक्षण प्राप्त करके फ्रांस की बहुसंख्यक रोमन कैथोलिक जनता का समर्थन भी प्राप्त करना चाहता था । सीरिया के प्रश्न पर लुई फिलिप के काल में फ्रांस का जो अपमान हुआ था; वह उसे भी सम्मान में बदलने का इच्छुक था । यह सभी कुछ तभी संभव था यदि वह किसी युद्ध में कोई विजय हासिल करता ।

दूसरी ओर रूसी सम्राट जार निकोलस प्रथम पवित्र स्थानों पर संरक्षण के झगड़े को एक छोटे युद्ध का रूप देकर टर्की में अपना प्रभाव बढ़ाना चाहता था । यदि उसे यह पता होता कि यह युद्ध इतना भयंकर रूप धारण कर लेगा तो ऐसा खतरनाक कदम वह कभी नहीं उठाता ।

3.5.5 ईसाई प्रजा पर संरक्षण की रूसी माँग

जार मात्र धार्मिक स्थानों पर संरक्षण प्राप्ति से ही संतुष्ट नहीं था । उसने टर्की में अपने विशेष राजपूत मैशिकोव को भेजकर यह मांग की कि टर्की साम्राज्य की सम्पूर्ण ईसाई प्रजा पर रूसी संरक्षण स्वीकार किया जाये । इससे समस्या और अधिक उलझ गई । टर्की

स्थित ब्रिटिश राजपूत रेडविलफ ने होशियारी से काम लेते हुए पवित्र स्थानों के संरक्षण व ईसाईयों के संरक्षण को अलग-अलग बना दिया व प्रथम मामले में रूस के अधिकार को तुर्की ने मान लिया । इससे रूस भी संतुष्ट नहीं हुआ और फ्रांस छटपटाने लगा ।

3.5.6 रूस द्वारा वेलेशिया व मोल्डेविया पर अधिकार

सन् 1853 ई0 में रूस ने पथ नदी को लांघकर माल्डेविया व वेलेशिया पर अधिकार कर लिया । निकोलस का विचार इन इलाकों पर कब्जा जमाने का नहीं था अपितु टर्की पर दबाव डालकर अपनी मांग मनवाने का था परन्तु इस आक्रामक कार्यवाही का इंग्लैण्ड व फ्रांस पर प्रतिकूल असर पड़ा ।

3.5.7 वियना नोट

युद्ध को टालने के लिए ब्रिटेन, फ्रांस, प्रशा एवं आस्ट्रिया के प्रतिनिधियों के विएना नामक स्थान पर सन् 1853 ई0 में एक नोट तैयार किया । ब्रिटिश राजपूत रेडविलफ की सरकारी राय पर टर्की के सुल्तान ने इस नोट को मान लिया किन्तु उसकी प्राइवेट सलाह पर उसने इस नोट पर एक संशोधन प्रस्तुत कर दिया जिसे रूस के चार ने अस्वीकार कर दिया । परिणामत: दोनों ओर के विरोध ने कट्टर शत्रुता का रूप धारण कर लिया । युद्ध का होना अब स्वाभाविक ही था ।

3.5.8 टर्की द्वारा युद्ध की घोषणा

टर्की के सेनापति लोस्मान द्वारा रूस को यह चेतावनी दे दी गई कि वह पन्द्रह दिनों के भीतर माल्डेविया व वैलेशिया खाली कर दे । जब रूस ने चेतावनी की ओर ध्यान नहीं दिया तो टर्की ने 23 अक्टूबर, 1853 ई0 को रूस के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी ।

3.5.9 साइनोप का कत्लेआम

रूसी सेनाओं ने साइनोप नामक स्थान पर टर्की के समुद्री बेड़े को नष्ट कर दिया और तुर्की का कत्लेआम किया । इससे फ्रांस व इंग्लैण्ड की जनता भड़क उठी । उन्होंने अपनी सरकारों पर रूस के विरूद्ध युद्ध घोषित करने के लिए दबाव डालना शुरू कर दिया । ब्रिटिश प्रधानमंत्री एबरडीन को अपनी इच्छा के विपरीत रूस के विरूद्ध युद्ध की घोषणा करनी पड़ी ।

3.5.10 इंग्लैण्ड तथा फ्रांस द्वारा संयुक्त चेतावनी

4 जनवरी, 1854 ई0 का इग्लैण्ड व फ्रांस के समुद्री बेड़े काला सागर में प्रविष्ट हुए । उन्होंने रूस को चेतावनी दी कि वह सेबेस्टोपोल की ओर वापस लौट जाए, माल्डेविया और वेलेशिया खाली कर दे । रूस द्वारा झंकार करने पर फ्रांस तथा इंग्लैण्ड ने संयुक्त रूप से 26 मार्च, 1854 ई0 को युद्ध की घोषणा कर दी ।

इस प्रकार क्रीमिया का इतिहास प्रसिद्ध युद्ध प्रारम्भ हो गया । इस युद्ध में रूस के विरूद्ध इंग्लैण्ड, फ्रांस, टर्की तथा सार्डिनिया (इटली का राज्य) थे । सार्डिनिया ने इस युद्ध में इसलिए भाग लिया था कि वहां का चांसलर काबूर इटली के एकीकरण की समस्या को

अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर लाकर बड़े राष्ट्रों की सहानुभूति अर्जित करना चाहता था । सार्डिनिया जनवरी, 1855 ई0 में युद्ध में कूदा था । प्रशा तथा आस्ट्रिया युद्ध में तटस्थ रहे ।

3.6 क्रीमिया युद्ध की घटनाएं

युद्ध का प्रथम भाग: (जुलाई 1854)

जिन रूसी सेनाओं का तुर्की प्रदेशों पर अधिकार था, वे मार्च, 23 को डैन्यमब नदी पार करके सिलिस्ट्रीया (Silistria) पर जा धमकी और उन्होंने वहां घेरा डाल दिया । 29 मई को फ्रांस और इंग्लैण्ड के जंगी जहाजों ने तुर्की के किनारे से प्रस्थान कर वार्ना में सेनाएं उतार दीं । पांच दिन बाद आस्ट्रिया ने रूस को प्रथम अल्टीमेटम दिया और मांग की कि उसके प्रदेशों को रूस खाली कर दे । सिलिस्ट्रीया में रूसी सेनाओं ने बड़ी वीरता से आस्ट्रिया का मुकाबला किया था । अब फ्रेंच व ब्रिटिश सेनाएं तुर्की की सहायता के लिए शीघ्र पहुंच रही थीं; इसलिए रूस घबरा गया और उसने सिलिस्ट्रीया पर से घेरा उठा लिया तथा वह डैन्यूब नदी पार करके वापिस आ गया । अब रूस ने धीरे-धीरे अपनी सेनाओं को आस्ट्रिया व तुर्की के प्रदेश से हटाना शुरू कर दिया । ज्यों-ज्यों रूस पीछे हटता जा रहा था । आस्ट्रिया की फौजों का बढ़ाव आगे को हो रहा था और वे रिक्त प्रदेशों पर अधिकार करती जाती थी । सारे युद्ध काल में आस्ट्रिया की सेनाएं इन प्रदेशों में ही पड़ी रहीं । इस प्रकार जुलाई के अंत तक यह स्पष्ट हो गया था कि रूस का प्रथम आक्रमण विफल हो चुका है । रूस की कमजोरी से प्रोत्साहित होकर मित्राराष्ट्रों ने रूस के समक्ष चार मांगे रखीं जिन्हें चार शर्तें कहा जाता है । इन चार शर्तों पर रूस का स्पष्टीकरण मांगा गया । ये चार मांगें निम्नलिखित चार तथ्यों से संबंध रखती थीं-

1- ग्रीस के धार्मिक स्थानों पर रूस का संरक्षण
2- कालेसागर में रूस के अधिकार
3- डैन्यूब नदी में रूस के व्यापारिक विशेषाधिकार
4- प्रदेशों या राज्यों (Principalities) में रूस की मध्यस्थता के अधिकार ।

प्रारम्भ में तो रूस हिचका किन्तु फिर नवम्बर में उसने मित्र राष्ट्रों की माँगे मान ली । रूस ने इन मांगों का उत्तर देने में बहुत अधिक देर कर दी थी और सितम्बर में ही युद्ध का दूसरा दौर प्रारंभ किया जा चुका था और मित्र राष्ट्रों ने क्रीमिया पर आक्रमण कर दिया था ।

युद्ध का दूसरा भाग (सितम्बर 1854 सितम्बर 1855 तक)

क्रीमिया पर अत्यन्त कौशल से युद्ध किया गया । इस बार रूस के मध्य भाग पर आक्रमण नहीं किया गया क्योंकि इसी कारण नेपोलियन की हार हुई थी । रूस जैसे विशाल प्रदेश में जहाँ न रेलें थी और न ही अच्छी सड़कें । रूस के मदद, रसद व यातायात की अपार कठिनाईयों का सामना करना पड़ा । इसमें संदेह नहीं कि मित्रराष्ट्रों को समुद्री मार्गो द्वारा भोजन और अन्य सामग्री प्राप्त करने में भारी असुविधा थी किन्तु रूस के सामने भी भोजन और अन्य रसद युद्ध क्षेत्र में पहुंचाने की भारी समस्या थी, विशेष रूप से जब रूस कीचड़ से भरा था । मित्र राष्ट्रों में मिस फ्लोरेंस नाइटिंगेल (Miss Florence Nightingale) ने घायलों की परिचर्या से भारी नाम कमाया । नाइटिंगेल के प्रचार से ब्रिटिश लोगों को पता चला कि ब्रिटिश सिपाहियों को अपरिचित जलवायु, अपर्याप्त भोजन एवं चिकित्सा साधन, अयोग्य प्रबंध, दीर्घ

सूत्रता और अधिकारियों के संकुचित दृष्टिकोण के कारण अपार कष्ट सहने पड़े थे किन्तु रूस की कष्ट गाथाएं और भी अधिक थीं; अन्तर केवल यह था कि रूसी सिपाहियों की कष्ट गाथाएं कम सुनने को मिली थीं ।

सिबेस्टोपोल का घेरा

सितम्बर, 1854 में मित्र राष्ट्रों ने एलमा पदी पर रूसियों को हराकर क्रीमिया में प्रवेश किया । इसके बाद मित्र राष्ट्रों ने सिबेस्टोपोल के चारों ओर से घेर लिया । बाद में युद्ध का केन्द्र यही रहा । यहां रूस ने बहुत बड़ा शस्त्रागार बना रखा था । इतिहासकार कैटल्बी के अनुसार- केवल कभी-कभी बाल्टिक सागर और आर्मीनिया में छोटी-छोटी लड़ाइयाँ हुई किन्तु सारा क्रीमिया युद्ध वास्तव में मित्रराष्ट्रों द्वारा सिबेस्टोपोल का घेरा और रूसियों द्वारा उस घेरे को तोड़ने का प्रयत्न रहा ।

(i) बैलाक्लावा का युद्ध (अक्टूबर 25)

रूस की ओर से टाडली-बेन ने स्थल युद्ध में और एडमिरल कार्निलोब ने जल युद्ध में भारी दक्षता प्रदर्शित की किन्तु मंशिकोउ इतना दक्ष सेनापति नहीं था । मित्रराष्ट्रों द्वारा गोलाबारी किये जाने के प्रथम तीन सप्ताहों में रूस की ओर से मित्रराष्ट्रीय घेरे को तोड़ने के तीन प्रयत्न किये गये । रूसियों ने वेलाक्लवा और इन्करमैन पर आक्रमण करके मित्र राष्ट्रीय घेरे को तोड़ने का प्रयत्न किया परन्तु रूस की पराजय हुई ।

(ii) इन्करमैन का युद्ध (नवम्बर 5).

वेलाक्लावा और इन्करमैन के युद्ध ब्रिटिश इतिहास में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं । इन युद्धों के बाद मित्र राष्ट्रों ने सारे जाड़े के मौसम क्रीमिया पर घेरा डाले रखा । क्रीमिया युद्ध में घायलों की देखभाल का कार्य मिस फ्लोरेन्स नाइटिंगेल के सुपुर्द था । अथक परिश्रम के बाद उस साहसी महिला ने स्कूटरी में घायलों की आदर्श सेवा-सुश्रुषा का प्रबंध और संगठन किया । दूसरी ओर लियो टाल्सटाय एक रूसी स्वयं सेवक था । उसने युद्ध की यातनाओं की कहानियां अपने रूसी साथियों को सैनिक गोष्ठी भवनों या शिविरों में सुनाना प्रारंभ किया। बसन्त और ग्रीष्मकाल में मित्र राष्ट्रों की ओर से भी प्रयत्न प्रारंभ हुए । जून में मित्र राष्ट्रों ने मालाकाफ और रीडन को लेने का प्रयत्न किया किन्तु टाड़लीवेन ने मित्रराष्ट्रीय प्रयत्नों को विफल कर दिया । रूस की ओर से घेरे को तोड़ने का अंतिम प्रयत्न टेचरनाया (Tchernaya) नदी पर किया गया किन्तु प्रधान रूप से सार्डिनिया की सेवा की वीरता के कारण यह प्रयत्न भी विफल रहा । सितम्बर के प्रारंभ में मित्र राष्ट्रों ने पुन: कालाकोफ पर आक्रमण किया जिसमें रूस की पराजय हुई और अगले दिन 9 सितम्बर को रूसियों ने सेबिस्टोपोल के अपने गोला बारूद के भण्डार में आग लगा दी । इस प्रकार सेबिस्टोपोल का पतन हो गया ।

1855 की रूसी पराजय के कारण

सी. डी. एम. कैटल्बी के अनुसार-

1- एबर्डिन के स्थान पर पामर्स्टन का ब्रिटिश प्रधानमंत्री बनना ।

2- पेलेसीयर फ्रेंच सेनापति बनकर आया और सार्डिनिया ने बहुसंख्यक सेना मित्रराष्ट्रों की सहायतार्थ भेज दी ।

3- आस्ट्रिया दुहरी चाल रहा था और नेपोलियन-III ब्रिटेन की मैत्री से पीछा छुड़ाना चाहता था ।

4- रूस की पराजय का सबसे महत्वपूर्ण कारण यह था कि फरवरी, 1855 में जार निकोलस की मृत्यु हो गई । वास्तव में रूस की युद्ध व्यवस्था का आधार ही यह था कि जनवरी और फरवरी की कठोर सर्दी में मित्र राष्ट्रों को हरा दिया जावे किन्तु फरवरी में जार की मृत्यु से सारी आशाएं समाप्त हो गई । जनवरी-फरवरी में स्वयं जार को ही समाप्त कर दिया व रूस की हार हो गई ।

3.7 क्रीमिया युद्ध का अंत व पैरिस की संधि

जार निकोलस की मृत्यु के पश्चात् अलैकजेण्डर-II रूस की गद्दी पर बैठा । उस पर जो राजनैतिक व सैनिक दबाव पड़ रहे थे उन्हें वह बहुत दिनों तक टाल नहीं सकता था । नवम्बर में रूसियों ने आर्मीनिया के कार्स (Kars) नामक किले पर अधिकार कर लिया था अत: रूस का आत्मसमर्पण उतना अपमानजनक नहीं रहा जितना अन्य होता; आस्ट्रिया ने दूसरा अल्टीमेटम दिया जिसमें रूस के संधि की शर्तें भी दी गई । रूस ने स्वीकार कर लिया और मार्च, 1356 में पैरिस की संधि के अनुसार क्रीमिया का युद्ध बंद हो गया ।

पैरिस की संधि की शर्तें

1- कालासागर को तटस्थ घोषित कर दिया गया परन्तु रूस या अन्य कोई भी शक्ति न तो अपने जगी जहाज कालासागर में ला सकती थी और न ही शस्त्रागार बना सकती थी ।

2- डेन्यूब नदी को एक अन्तर्राष्ट्रीय तटस्थ नदी घोषित कर दिया गया । बेसरेबीया का प्रदेश मोल्डेबिया को देकर रूस को डेन्यूब के किनारे से हटना स्वीकार करना पड़ा ।

3- टर्की को यूरोप के राष्ट्र समूह में सम्मिलित कर लिया गया तथा सभी यूरोपीय राष्ट्रों ने उसकी स्वतंत्रता एवं सुरक्षा के बनाये रखने की गारण्टी दी ।

4- मोल्डेविया तथा वैलेशिया पर रूसी संरक्षण समाप्त कर दिया गया व इनकी स्वतंत्रता टर्की की संरक्षकता में स्वीकार कर ली गई ।

5- टर्की के सुल्तान ने अपनी ईसाई प्रजा के विशेषाधिकारों की पुष्टि की तथा रूस सहित सभी सत्ताओं ने सुल्तान तथा उसकी प्रजा के बीच हस्तक्षेप करने का अधिकार त्याग दिया ।

6- सर्बिया की स्वतंत्रता टर्की के प्रभुत्व में स्वीकार कर ली गई ।

7- कार्स का प्रदेश टर्की को तथा क्रीमिया रूस को वापिस मिल गया ।

3.8 क्रीमिया युद्ध तथा पैरिस संधि की समीक्षा

इस युद्ध में अपार जन-घन की हानि हुई तथा यह युद्ध बिल्कुल निरूद्देश्य एवं निष्फल हुआ । इतिहासकार मैरियट अपनी 'पुस्तक' दि रीमेंकिंग ऑफ माडर्न यूरोप में लिखता है- क्रीमिया युद्ध के परिणामस्वरूप रूस की दक्षिण की ओर प्रगति कम से कम अस्थाई रूप से रूक गई और तुर्क साम्राज्य को नया जीवन प्राप्त हो गया साथ ही यूरोपीय सत्ताओं ने पूर्वी समस्या के स्वयं अकेले ही सुलझाने के रूस के अधिकार को दृढ़तापूर्वक अस्वीकार कर दिया । म्यूर (Muir) अपनी पुस्तक ' 'ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ कॉमनवैल्थ,' ' वोल्युम II में लिखता है- ' 'पैरिस

का शांति सम्मेलन पूर्वी समस्या को सुलझाने के लिए हुआ था किन्तु उसने उसे और अधिक जटिल बना दिया । तुर्की की स्वतंत्रता व उसके साम्राज्य को अन्तर्राष्ट्रीय गारण्टी मिल गई जिसका अर्थ था कि इस विषय पर यूरोप की महान् सत्ताओं की सम्मति के बिना को परिवर्तन नहीं हो सकता था ।' '

इतिहासकार हेजन अपनी पुस्तक माडर्न यूरोपियन हिस्ट्री में लिखता है- मित्र राष्ट्रों का अनुमान था कि टर्की का सुल्तान सुधार की नीति का अवलम्बन कर अपनी ईसाई प्रजा को संतुष्ट करेगा और टर्की अन्य सभी राज्यों की कोटि में आ जायेगा परन्तु सुल्तान ने अपने वचन का पालन नहीं किया और उसकी ईसाई प्रजा की स्थिति और भी खराब हो गई ।

कालासागर को तटस्थ बनाना रूस को अपमानित करना ही नहीं उसे अत्यन्त निर्बल बना देना था और यह निश्चित था कि रूस इस स्थिति में चुप बैठा नहीं रह सकता था । आगे चलकर मौका पाकर उसने इस अपमान को धोने का प्रयास किया । 14 वर्ष बाद उसने बिस्मार्क से समझौता कर उसकी तटस्थता को भंग कर दिया । 1678 ई. में उसने बसेरेनिया को भी फिर अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया । रूस की प्रगति दक्षिण की ओर तो रूक गयी परन्तु उसने मध्य एशिया में बढ़ना शुरू कर दिया तथा वर्षो तक इंग्लैण्ड के लिए उधर परेशानी का कारण बना रहा ।

निकोल्स की टर्की साम्राज्य के बंटवारे की मांग को इंग्लैण्ड ने स्वीकार नहीं किया क्योंकि इससे इंग्लैण्ड को बाल्कन प्रायद्वीप में रूस के प्रभाव के बढ़ जाने का भय था । इतिहासकार फिलिप्स (Philips) अपनी पुस्तक माडर्न यूरोप में लिखता है- यदि निकोलस की योजना सफल हो जाती तो एक निर्बल तुर्क साम्राज्य के स्थान पर कई सशक्त एवं परस्पर लड़ते हुए इसाई राज्य स्थापित हो जाते । इंग्लैण्ड व फ्रांस टर्की के साम्राज्य को बनाये रखना चाहते थे परन्तु बाद में उन्होंने इस संबंध में अपनी भूल महसूस की और प्रथम महायुद्ध के पहले तक वह साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया । इस प्रकार जिन उद्देश्यों को सामने रखकर यह युद्ध लड़ा गया था उनकी दृष्टि से यह युद्ध बिल्कुल बेकार सिद्ध हुआ ।

सेविल (Schevill) अपनी पुस्तक 'ए हिस्ट्री ऑफ यूरोप में' लिखता है- ' 'क्रीमिया के युद्ध से इंग्लैण्ड को कोई लाभ नहीं हुआ, उल्टे उसका राष्ट्रीय ऋण बढ़ गया । फ्रांस को भी इस युद्ध से कोइ लाभ नही हुआ । नेपोलियन की नीति व्यक्तिगत थी राष्ट्रीय नहीं; जो कुछ लाभ हुआ वह नेपोलियन को व्यक्तिगत लाभ था । 1856 में यूरोप की महान् शक्ति रूस को पराजित कर मास्को पराजय का बदला लिया व फ्रांस का गौरव बढ़ाया ।' '

पैरिस संधि की उपलब्धियां

मैरियट के अनुसार- ' 'इस संधि से टर्की को एक नया जीवन मिल गया और रूस की दक्षिण की तरफ प्रगति रूक गई ।' '

हेजन लिखता है कि- ' 'यह युद्ध पूर्वी समस्या का समाधान ढूंढने में असफल रहा क्योंकि सुल्तान ने ईसाई प्रजा के लिए सुधार करने का वादा पूरा नहीं किया । "

टेलर की मान्यता है कि इस संधि ने रूस और तुर्की के संबंधों की समस्या का हल तीन प्रकार से निकाला था- प्रथम तुर्की ने सुधार करने का वादा किया । द्वितीय काले सागर को तटस्थ घोषित कर दिया व तृतीय डेन्यूब के प्रदेशों को रूस के अधीन नहीं रखा गया ।

3.9 क्रीमिया युद्ध का प्रमुख राष्ट्रों पर प्रभाव

1- रूस का प्रभाव

रूस की पराजय से उसकी मानहानि तथा सैनिक प्रतिष्ठा गिर गई । रूसी जनता में नव चेतना जागृत हुई व सुधारों की मांग की जाने लगी । अलैकजेण्डर II के युग में सुधार कार्य प्रारंभ हुए व नये युग का शुभारंभ हुआ ।

2- इंग्लैण्ड पर प्रभाव

जिन उद्देश्यों को लेकर इंग्लैण्ड लड़ा था वे उद्देश्य उसे प्राप्त नहीं हो सके उल्टे उसके राष्ट्रीय सा में वृद्धि हो गई ।

3- फ्रांस पर प्रभाव

नेपोलियन ने इस युद्ध में विजयी होकर अपनी मास्को पराजय के अपमान का बदला ले लिया तथा देश में अपनी स्थिति सुदृढ़ की । इससे उसका सम्मान यूरोपीय राष्ट्रों में बढ़ गया तथा टर्की के साम्राज्य में उसके व्यापारिक हित सुरक्षित हो गये ।

4- इटली पर प्रभाव

इटली के एकीकरण में आने वाली अनेक बाधाओं का निवारण हो गया । आस्ट्रिया व रूस में शत्रुता हो जाने से आस्ट्रिया की शक्ति घट गई । मैरियट का कथन है कि- सैनिक शक्ति के रूप में इस युद्ध से सार्डीनिया की प्रतिष्ठा पुन: स्थापित हो गई । उसे इंग्लैण्ड की सहानुभूति व नेपोलियन का सक्रिय समर्थन प्राप्त हो गया तथा परोक्ष रूप से जर्मनी के एकीकरण में भी सहायता मिली क्योंकि आस्ट्रिया का साम्राज्य इटली की भांति जर्मनी के एकीकरण के लिए भी एक बाधा थी ।

इतिहासकार कैटल्बी (Ketelbey) के अनुसार- क्रीमिया युद्ध के अप्रत्यक्ष परिणाम और अधिक दूरगामी थे । क्रीमिया के कीचड़ से एक नये इटली का जन्म हुआ और कुछ कम स्पष्ट रूप से एक नये जर्मनी का जन्म भी इसी से हुआ । इस युद्ध से आस्ट्रिया का शत्रु रूस बन गया था और दूसरी ओर प्रशा के प्रति रूस का झुकाव हो गया था । प्रशा की वास्तविक तटस्थता को रूस ने अधिक सराहा और बिस्मार्क से आस्ट्रो प्रशियन युद्ध के समय रूस की तटस्थता प्राप्त हो गई ।

5- आस्ट्रिया पर प्रभाव

आस्ट्रिया ने इस युद्ध में अपना जो व्यवहार रखा उससे रूस जैसे महान् देश की शत्रुता मोल ले ली थी क्योंकि मध्य यूरोप में आस्ट्रिया का प्राधान्य बहुत कुछ रूस के सहयोग पर निर्भर करता था । 1849 का हंगरी का विद्रोह रूस के सहयोग से ही दबाया गया था तथा 1950 में आस्ट्रिया ने प्रशा को रूस की मदद से ही नीचा दिखाया था ।

कैटल्बी लिखते हैं कि - क्रीमिया का युद्ध यूरोपीय इतिहास में एक युगान्तकारी घटना। थीं ।

3.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1- पूर्वी समस्या क्या थीं;? पूर्वी समस्या के प्रति प्रमुख यूरोपीय राष्ट्रों के दृष्टिकोण की समीक्षा करें ।

2- क्रीमिया के युद्ध से पूर्व घटित पूर्वी समस्या के संबंधित महत्वपूर्ण घटनाओं की विवेचना करें ।

3- क्रीमिया युद्ध के कारण एवं परिणामों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करें ।

4- क्रीमिया का युद्ध 19 वीं शताब्दी के यूरोप के इतिहास की एक युगान्तरकारी घटना थी विवेचना करें।

5- क्रीमिया के युद्ध के उपरांत पैरिस की संधि एवं प्रमुख यूरोपीय राष्ट्रों पर पड़े इसके प्रभाव का मूल्यांकन करें ।

6- 1856 से 1870 के मध्य पूर्वी समस्या की घटनाओं का अध्ययन करें ।

3.11 प्रासंगिक पठनीय पुस्तकें

सी0 डी0 एम0 कैटल्बी : ए हिस्ट्री आफ माडर्न टाईम्स

ए0 जे0 पी0 टैलर : स्ट्रगल फार मास्ट्री इन यूरोप

मैरियट : दि रिमेकिंग आफ माडर्न यूरोप

म्यूर : ए शार्ट हिस्ट्री आफ कामनवैल्थ, वोल्युम II

हैजन : माडर्न यूरोपियन हिस्ट्री

फिलिप्स : माडर्न यूरोप

शैविल : ए हिस्ट्री आफ यूरोप

इकाई-4

इटली का एकीकरण

4.0 उद्देश्य

4.1 पृष्ठभूमि: नवीन युग की शुरूआत

4.2 नेपोलियन और इटली

4.3 1815 ई0 में इटली

4.4 इटली के एकीकरण में बाधाऐं

4.5 एकीकरण में सहायक तत्वों का उदय

4.5.1 कार्बोनरी

4.5.2 आर्थिक विकास

4.5.3 प्रारम्भिक विद्रोहों का इटली पर प्रभाव

4.5.4 लेखकों के प्रयास

4.5.5 मेजिनी और युवा इटली

4.5.6 उदार राजतन्त्रवादी

4.5.7 पोप की उदारवादी नीति

4.5.8 1848 की क्रान्ति और इटली

4.6 अनुभागीय सारांश और अभ्यासार्थ प्रश्न

4.7 एकीकरण यथार्थता की और

4.7.1 विक्टर एमेनुअल द्वितीय (1849-1870)

4.7.2 कावूर (1810-1861)

4.7.3 क्रीमिया का युद्ध और कावूर

4.7.4 नेपोलियन का सहयोग एवं लोम्बार्डी की प्राप्ति

4.7.4.1 आर्सिनी काण्ड

4.7.4.2 प्लोम्बियर्स समझोता

4.7.4.3 आस्ट्रिया-सार्डीनिया युद्ध

4.7.4.4 विला फ्रांका की विराम सन्धि

4.7.5 मध्य इटली का विलय

4.7.6 नेपल्स और सिसली का विलय

4.7.6.1 गैरीबाल्डी (1807-1882)

4.7.6.2 सिसली में विद्रोह

4.7.6.3 नेपल्स पर अधिकार

4.7.6.4 कावूर द्वारा बोब की रियासतों पर आक्रमण

4.7.6.5 गैरीबाल्डी की महानता

4.7.7 कावूर का मूल्यांकन

4.7.8 इटली के एकीकरण का अन्तिम चरण

4.7.8.1 वेनीशिया की प्राप्ति

4.7.8.2 रोम की प्राप्ति

4.8 इकाई सारांश एवं अभ्यासार्थ प्रश्न

4.9 सन्दर्भ अध्ययन सामग्री

4.0 उद्देश्य:

इस इकाई का उद्देश्य इटली की उन प्रमुख ऐतिहासिक, आर्थिक एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं से आपको अवगत कराना है, जिन्होंने इटली के एकीकरण को पूर्णता प्रदान की । इस इकाई के मध्ययन के पश्चात् आप इटली के एकीकरण की जटिलता को समझ सकेगें तथा यह भी जान सकेंगे कि कौन से विभिन्न कारकों के द्वारा इटली का एकीकरण सम्भव हो पाया । प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप निम्न बातें समझ सकेंगे-

अठारहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षो में जिस 'नवीन युग' की शुरूआत हुई उसने इटली को कैसे प्रभावित किया ।

आर्थिक कारकों सहित वे कारक जिन्होंने इटली के एकीकरण को उत्प्रेरणा प्रदान कर "प्रतिक्रिया के युग" के प्रभाव को कमजोर बनाया । मेजिनी सहित अन्य लेखकों ने किस तरह से 'मानसिक धरातल' पर इटली को "एक' किया ।

वे घटनाएं, जिन्होंने इटली के एकीकरण में बाधक वास्तविक शक्तियों से अवगत कराया ।

इटली के एकीकरण के सूत्रधार काबूर ने किस प्रकार एकीकरण के अधिकांश भाग को सफलता के साथ सम्पादित किया । साथ ही गैरीबाल्डी की वे सेवाएँ जो एकीकरण के मार्ग में मील का पत्थर साबित हुई।

विक्टर एमेनुअल के विभिन्न कूटनीतिक पूर्ण कार्य, जिसके बिना काष्ठ का सपना अधूरा रहता ।

वे परिस्थितियाँ जिन्होंने एकीकरण के यज्ञ को सहज की सफलता के मार्ग पर प्रशस्त किया ।

4.1 पृष्ठभूमि: नवीन युग की शुरूआत

अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षो में फ्रांस की राज्य-क्रान्ति एवं नेपोलियन के आक्रमणों ने यूरोप राष्ट्रीयता की भावना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया । यूरोप के कई राज्यों में नेपोलियन के द्वारा ही ' 'नवयुग' ' का संदेश पहुंचा। महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि इसी राष्ट्रीयता की भावना ने नेपोलियन के विरूद्ध उस शक्ति को एकत्र किया था जिसके सम्मुख यह विश्व-विजयी योद्धा भी खड़ा नहीं रह सका था । नेपोलियन के पतन के पश्चात यूरोपीय राजनीतिज्ञों ने इस राष्ट्रीयता की भावना को उपेक्षा की दृष्टि से देखा। किन्तु इतिहास में जो शक्ति एक बार उत्पन्न हो जाती है, उसे हमेशा के लिए नष्ट नहीं किया जा सकता ।

1815 से 1871 ई0 तक राष्ट्रीयता के आधार पर राष्ट्र-राज्यों का निर्माण हुआ। नेपोलियन वह पहला व्यक्ति था, जिसने इटली और जर्मनी के राज्यों को भौगोलिक नाम के स्थान पर वास्तविक रूपरेखा प्रदान की, जिससे इटली एवं जर्मनी के एकीकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ। इन देशों के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि 'नेपोलियन ने उनके प्रति उस राजकुमार की तरह कार्य किया, जिसने जंगल में खोयी हुई राजकुमारी को जादू की लकड़ी घुमाकर लगा दिया था। ' इन देशों के नागरिक राष्ट्रीयता की भावना से शून्य मीठी नींद सो रहे थे। नेपोलियन के कार्यो से इन देशों में अनजाने ही राष्ट्रीयता कीं भावना जागृत हुई।

यूरोप में 1815 ई0 से 1338 ई0 के युग की एक मुख्य विशेषता यह रही है कि इस युग में उदारवादी व राष्ट्रवादी तत्वों का रूढ़िवादी शक्तियों में संघर्ष चलता रहा। ऐसी स्थिति इसलिए हुई क्योंकि राष्ट्रवाद एवं उदारतावाद के जन्म ने रूढ़िवाद के समक्ष चुनौती प्रस्तुत कर दी। रूढ़िवादी शक्तियां जनान्दोनलों को समाप्त करने के पक्ष में थीं क्योंकि उन्हें एक दूसरी फ्रांसीसी क्रान्ति का भय सता रहा था। शक्तिशाली होने के बावजूद पुराना समाज, जिसके मुख्य तत्व राजा, अभिजात्य-वर्ग तथा चर्च थे, अधिक समय तक प्रगतिशील शक्तियों का सामना नहीं कर सकता था।

राजनीतिक क्षेत्र में 1815 ई0 से लेकर 1850 ई0 तक का काल महती अभिलाषाओं का काल था, सफलताओं का नहीं। परन्तु इस काल को राजनीतिक तैयारियों का काल भी कह सकते हैं। वे राष्ट्रीय एकता और राजनैतिक स्वतंत्रता की भाषा में सोचने लगे थे। किन्तु उनके सपनों के साकार होने में अपार बाधाएं थीं- निरंकुश राजाओं का दमन और सर्व साधारण में अचेतनता।

फ्रांसीसी क्रान्ति ने राजनीति को राजदरबारों और प्राइवेट राज-कक्षों से बाहर कर उसे अखबारों, सड़कों और सर्व साधारण की वस्तु बना दिया। इसके विपरीत सम्राट एवं मन्त्रिगण यह विचार स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे कि राज्यों की राजनीति या शासन के विषय में सर्व-साधारण को विचार करने का भी अधिकार है।

- संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि फ्रांस की राज्य क्रान्ति ने राष्ट्रवाद को सफल एवं गरिमामय बनाया। राष्ट्रवाद का प्रसार फ्रांस की सीमाओं से बाहर यूरोप के जिन देशों में हुआ उन देशों में इटली और जर्मनी प्रमुख थे।

4.2 नेपोलियन और इटली:

नेपोलियन ने इटली की विजय के पश्चात् इटली के गणतंत्र की स्थापना की और सम्राट बनने के बाद अनेक छोटे-बड़े राज्यों को समाप्त कर उन्हें केवल तीन भागों में बाँट दिया था। सामन्तवादी व्यवस्था की समाप्ति तथा आन्तरिक व्यापार पर प्रतिबंधों का अन्त-इटली वासियों को फ्रांस की सबसे बड़ी देन थी। इटली में एक समान नियम-कानून लागू किये गये। यह नेपोलियन ही था, जिसने इटलीवासियों को अपने गौरवपूर्ण अतीत का पुन: स्मरण करवाया। किन्तु जब स्वयं नेपोलियन ने ही इटली को उपनिवेश के रूप में प्रयोग करना शुरू किया तो इटलीवासियों की राष्ट्रवादी भावनाएं भड़क उठी। इन्हीं कारणों की वजह से यह कहा जाता है

कि नेपोलियन ही इटली में राष्ट्रवाद का जन्मदाता था । नेपोलियन के पश्चात् वियेना-कांग्रेस ने इटली को फिर छोटे-छोटे सामन्ती राज्यों में विभक्त कर दिया ।

4.3 1815 ई0 में इटली:

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में इटली नाम का कोई देश नहीं था, किन्तु इटली भौगोलिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से एक पूर्ण इकाई था । उत्तर में आल्पस पर्वत और तीन तरफ से सागरों से घिरे, यूरोप के मध्य दक्षिण में स्थित यह प्रायद्वीप पूर्णत: सुरक्षित था । वियेना-व्यवस्था से इटली फिर से विभक्त हो गया । इटली के उत्तर-पश्चिम में सार्डीनिया-पीडमान्ट का राज्य था, जहाँ सेवाय-वंश का शासन था । उसके उत्तर-पूर्व में लोम्बार्डी और वेनीशिया के प्रदेश थे, जिन पर आस्ट्रिया का आधिपत्य था । परमा-मोडेना और टस्कनी, यद्यपि स्वतंत्र राज्य थे, तथापि उन पर आस्ट्रिया का प्रभाव था । मध्य में पोप का अपना स्वतंत्र राज्य था । दक्षिण में नेपल्स और सिसली थे, जहाँ बूर्बो-वंश का शासन था ।

वियेना व्यवस्था इटली के सन्दर्भ में राष्ट्रीय तथा सामाजिक-आर्थिक हितों के विरूद्ध एक निर्णय था । राजतंत्र की रक्षा, पोप को अनुस्थापित करना तथा फ्रांस के विरूद्ध व्यूह रचना के सिद्वान्त पर ये निर्णय लिये गये थे । इस प्रकार 1815 ई0 में इटली एक बार फिर विभाजित, राजतंत्रों के अधीन, रूढ़िवादी चर्च के नेतृत्व में तथा कुलीन वर्ग के अधीन था । उसमें एकता का पूर्ण अभाव था । इसलिए तो आस्ट्रिया के चांसलर मेटरनिख ने कहौ था कि ' 'इटली तो एक भौगोलिक अभिव्यक्ति है" । इटली का कोई झंडा नहीं होने, यूरोपीय राष्ट्रों में उसकी गिनती नगण्य होने तथा विभिन्न राज्यों की अलग-अलग मुद्राएं होने पर मेजिनी ने दुःख व्यक्त किया था । इसलिए इटली के एकीकरण के संघर्ष में इटली के नागरिक को यह सिद्ध करना था कि इटली एक संगठित जन-समूह. है, जिसकी अपनी भौगोलिक सीमाएं हैं तथा जिसकी ऐतिहासिक परम्पराएं, शक्तिशाली सांस्कृतिक- आर्थिक व्यवस्था और आधार है । 1815 ई0 से 1870 ई0 तक इटली ने अपने पुनर्जागरण आन्दोलन द्वारा इन सभी संकल्पनाओं को ठीक सिद्ध किया ।

4.4 इटली के एकीकरण में बाधाएं:

इटली के एकीकरण में मूलभूत बाधा इटली में प्रतिक्रियावादी विदेशी प्रभुत्व का होना था । इटली पर आस्ट्रिया का प्राधान्य था । इसलिए कावूर ने कहा था- आस्ट्रिया इटली की स्वतंत्रता का प्रथम शत्रु है । लोम्बार्डी एवं वेनेशिया उसके सीधे नियंत्रण में थे और मौडेना व टस्कनी पर आस्ट्रिया से सम्बन्धित राजकुमारों का अधिकार था और परमा की रानी लुईसा आस्ट्रिया की राजकुमारी थी ।

दूसरी बाधा इसकी भौगोलिक स्थिति थी । एक लम्बे कटे हुए देश के रूप में इटली मोटे तौर पर तीन राजनीतिक इकाईयों-उत्तरी मध्य और दक्षिणी इटली-में विभक्त था ।

तीसरी बाधा पोप की उपस्थिति थी । पोप अपने राज्य रोम पर अपनी सस्ता को बनाए रखना चाहता था । इसके अतिरिक्त कैथोलिक यूरोप पोप के अस्तित्व को कभी नष्ट नहीं होने देना चाहता था ।

चौथी बाधा यह थी किस तरह की विचारधारा के अन्तर्गत इटली का एकीकरण किया जाए, इस बारे में राजनीतिज्ञ एक मत नहीं थे । मेजिनी इटली का एकीकरण एक गणराज्य के रूप में चाहता था । गैरीबाल्डी भी इसका समर्थक था । जियोबर्टी का संघीय-राज्य का सिद्धान्त था । वह पोप के अधीन इटली के सभी राज्यों के संघ का समर्थक था ।

पाँचवी बाधा यह थी कि इटली में अभी तक राष्ट्रीय चेतना जागृत नहीं -हुई थी । इटली प्राचीन ग्रीस की तरह विभाजित था, जिसमें सभी राज्यों की अपनी अलग-अलग परम्पराएं एवं रीति-रिवाज थे । एक राज्य दूसरे राज्य से मिलकर नहीं रहना चाहता था । मैटरनिक के शब्दों में, ' 'इटली में एक राज्य-दूसरे राज्य के विरूद्ध, एक शहर दूसरे शहर के विरूद्ध, एक परिवार दूसरे परिवार के विरूद्ध था ।' ' यहाँ तक कि इटली के राजकुमारों ने भी अपने स्वार्थ तथा लाभ के लिए राष्ट्रीय हितों को बलिवेदी पर चढ़ा दिया था ।

- छठी बाधा इटली का सामन्तवादी एवं कुलीन-वर्ग था । वह नेपोलियन के पतन के पश्चात् पुन: सामन्तवादी तथा जागीरदारी प्रथा स्थापित करना चाहता था । उसकी शक्ति जागीरें तथा राजनीतिक प्रभुता थीं । 1815 ई0 में इटली में औद्योगिक क्रान्ति के चिन्ह नाममात्र को भी विद्यमान नहीं थे । वहाँ के लोगों का परिचय अभी यातायात के नवीन साधनों और उत्पादन के आधुनिक माध्यमों से नहीं हुआ था । इसलिए इटली में भूमि अभी भी महत्वपूर्ण सम्पत्ति थी और उसके साथ जुड़ी थी- परम्परागत सामाजिक तथा राजनीतिक मान्यताएं । इस प्रकार भूमि से जुड़े कुलीन वर्ग का यह डर स्वाभाविक था कि एकीकरण के होने से उनका प्रभाव समाप्त हो जायेगा ।

इन सबके अतिरिक्त आर्थिक विषमताओं ने भी एकीकरण के मार्ग को अवरूद्ध किया । दक्षिणी इटली अविकसित तथा ग्रामीण था जबकि उत्तरी इटली अर्द्ध-औद्योगिक ।

4.5 एकीकरण में सहायक तत्वों का उदय:

इटली के एकीकरण में विभिन्न विकट बाधाओं के बावजूद वहाँ स्वतंत्रता, समानता तथा देश प्रेम की भावनाएं अधिक समय तक दबी नहीं रह सकी । इटली के कुछ देश-भक्तों और लोकतंत्र के समर्थकों ने मिलकर स्वतंत्रता और उदारवाद की प्राप्ति के लिए संघर्ष करने का निर्णय किया । इन उद्देश्यों को प्राप्ति के लिए इटली में कई गुप्त संस्थाओं की स्थापना हुई । इनमें कार्बोनरी प्रमुख थी । यह स्मरणीय है कि गुप्त-संस्थाओं के योगदान से अभीष्ट परिणाम न निकल सके क्योंकि इन संस्थाओं के कार्यो में न तो एक-रूपता थी और न ही सम्बद्धता थी । इनमें आदर्शवादी, स्वप्नदर्शी, छली और बदमाश सभी को आश्रय मिला हुआ था । इन संस्थाओं के लक्ष्य यथार्थ से परे थे । फिर भी गुप्त संस्थाओं द्वारा प्रवर्तित क्रान्तिकारी आन्दोलन ने लोगों को झकझोर दिया ।

4.5.1 कार्बोनरी:

इटली के कोयला झोंकने वालों की इस गुप्त संस्था की स्थापना 1810 ई0 में नेपल्स में हुई थी । कार्बोनरी की शाखाएं समस्त इटली में फैली हुई थीं और उसमें सभी वर्गो के लोग सम्मिलित थे । इसमें कुलीन-वर्ग, सैनिक अफ्सर, किसान, धर्मगुरू, यहाँ तक कि बुर्जआ वर्ग ने

भी इस संस्था की सदस्यता अर्जित की । इसके सदस्य सांकेतिक भाषा में धार्मिक उत्सवों के बहाने चुपके-चुपके राजनीतिक उद्देश्य प्राप्त करना चाहते थे । इस संस्था के दो मुख्य उद्देश्य थे- विदेशियों को - इटली से बाहर निकालना और वैधानिक स्वतंत्रता की स्थापना करना । इस संस्था के तिरंगे झण्डे ने- काला, लाल और नीला रंग वाला झण्डा-शीघ्र ही लोकप्रियता प्राप्त कर ली और लोग उसकी पूजा करने लगे । 1831 ई0 तक यही झण्डा क्रान्ति का झंडा बना रहा ।

4.5.2 आर्थिक विकास:

अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक इटली आर्थिक दृष्टि से एक पिछड़ा हुआ देश थीं (यहाँ की 80 प्रतिशत जनसंख्या कृषि में लगी हुई थी । भूमि उपजाऊ नहीं थी । खेती-बाड़ी इटली के केवल आधे हिस्से में ही हो सकती थी । इसका औद्योगिक स्तर केवल दस्तकारी तक ही सीमित था । व्यापार का बहुत कम विकास हुआ था । बैंकिग के साधन सीमित थे । औद्योगिक विकास और आविष्कार सम्बन्धी कार्य नाम-मात्र के ही थे । इटली के पिछड़े हुए औद्योगिक-स्वरूप के पीछे एक बड़ा कारण वहाँ आवागमन के साधनों का अभाव होना था । सामूहिक इटली में जल-मागों का अभाव था । इटली का सम्पर्क केवल तटीय जल-मागों द्वारा था ।

18 वीं शताब्दी के अन्त से पूर्व कुछ लेखकों ने, जिनमें फर्डिनेंडो-गलियानी, सीजारे बैकारिया, पीटरो बैटी इत्यादि प्रमुख थे, आर्थिक सुधारों की ओर इटली का ध्यान आकर्षित करना प्रारम्भ कर दिया था । 1730 ई0 से 1733 ई0 के मध्य में कारलो इमैन्योल तृतीय ने सार्डीनिया में और 1790 से 1829 ई0 के मध्य फर्डिनेंड तृतीय ने टस्कनी में आर्थिक-औद्योगिक सुधार लागू कर दिये थे । बाद के इटली के प्रमुख अर्थ-शास्त्रियों- गियन डोमिनिको, रामोग्नोसी, फेडेरिको कॉनफलेनिरी, कार्लोकैटलेनियो- ने आर्थिक सुधारों की दलील दी । उन्होंने आर्थिक क्षेत्र में स्वतंत्रता की माँग की, राष्ट्रीय बचत तथा विनियोग को प्रोत्साहन की मांग की, आवागमन के अच्छे साधनों की माँग की और यूरोप के विकसित औद्योगिक देशों से तकनीकी ज्ञान के आयात की माँग की । नेपोलियन की देन के साथ यह इन्हीं अर्थशास्त्रियों की देन थी कि इटलीवासी आर्थिक सहयोग और एकता में इटली के एकीकरण का भविष्य देखने लगे ।

इटली में भूमि सम्बन्धी सुधारों की शुरूआत नेपोलियन ने की थी । उसने कृषकों को भूमि के पट्टा अधिकार दिये और सामन्तों के सभी स्वामित्व अधिकार समाप्त कर दिये । इटली में यह कृषि-भूमि सम्बन्धी परिवर्तन इतना महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ कि 1815 के पश्चात् पुन: स्थापना के द्वारा लौटी हुई शक्तियाँ 1815 से पहले के सामन्तों के भूमि सम्बन्धी अधिकारों को पुन: दिलाने में असमर्थ रही । उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक इटली में नये औद्योगिक केन्द्र- स्थापित हो गये और नई तकनीक का प्रयोग धीरे-धीरे बढ़ने लगा । गन्धक का उत्पादन कई गुना बढ़ गया । सूती-कपड़ा उद्योग में कई गुना वृद्धि हुई । मशीन बनाने का उद्योग भी पनपने लगा । स्पिनिंग जेनी, मशीन करघें, वाटर व्हील्स, छापे की मशीनें तथा रेल के डिब्बे इत्यादि बढ़ने लगे । इटली में जलपोत निर्माण उद्योग में भी तरक्की हुई ।

19 वीं शताब्दी के आरम्भ में पूंजी आधार पर कृषि के विकास ने इटलीवासियों में केवल नवीन आर्थिक चेतना ही उत्पन्न नहीं की, वरन् इटली के औद्योगिक विकास में भी उसकी भूमिका उल्लेखनीय रही । कृषि सम्बन्धी नई मंडियों ने आवागमन के नये साधनों की आवश्यकता का अनुभव किया ।

उत्तरी व मध्य इटली में शीघ्र ही रेलवे लाइनों का बिछना शुरू हो गया और भाप के इंजन का प्रयोग आरंभ हुआ । यह उल्लेखनीय है कि इटली में रेलवे का विकास फ्रांस या जर्मनी की अपेक्षा कम था । इस धीमे विकास के कई कारण थे; जैसे कि इटली की भौगोलिक आकृति, सामान्य आर्थिक पिछड़ापन और पर्वतीय क्षेत्र होने के कारण रेलवे-निर्माण पर अत्यधिक व्यय । फिर भी धीरे-धीरे रेलवे लाइनें बिछाने का काम चलता रहा । 1861 ई0 तक इटली में 1623 किमी0 लम्बी रेलवे लाइनें बिछ चुकी थी और यह कार्य केवल तीस वर्षो में हुआ था । इटली ने आरम्भ में इंजन इंग्लैण्ड से खरीदे किन्तु बाद में वह स्वयं बनाने लगा । 1854 ई0 में इटली ने पहला रेलवे इंजन जेनोआ में बनाया । इटली के एकीकरण में रेलवे के योगदान को कभी नहीं भुलाया जा सकता है । इसका केवल इटली का आर्थिक व्यवस्था पर ही प्रभाव नहीं पड़ा, अपितु इसने राजनीतिक चेतना के विकास में भी योगदान दिया ।

इटली में गिल्ड अर्थ-व्यवस्था 1815 ई0 से पहले ही विखण्डित होना आरंभ हो गई थी और 1845 ई0 तक यह पूर्ण-रूपेण समाप्त हो चुकी थी । इससे भी इटली के आर्थिक स्वरूप में परिवर्तन आया ।

धीरे-धीरे इटलीवासी इस निष्कर्ष पर पहुंच गये कि औद्योगिक विकास के लिए पुरातन व्यवस्था को समाप्त करना- आवश्यक है क्योंकि ऐसा करने पर ही व्यापार और उद्योग पर लगे प्रतिबन्ध दूर हो सकते थे । नये उद्यमी जन्म ले सकते थे और आर्थिक-क्रियाओ को बढ़ावा मिल सकता था ।

4.5.3 प्रारम्भिक विद्रोहों का इटली पर प्रभाव:

1820 ई0 में गुप्त संस्थाओं द्वारा प्रदर्शित क्रान्तिकारी आन्दोलनों का एक कम आरम्भ हुआ, जो तीस वर्षो तक चलता रहा । 1820 ई0 के स्पेन के विद्रोह से प्रेरणा पाकर नेपल्स एवं पीडमान्ट की जनता ने वहाँ के शासकों से संविधान स्थापना की माँग की । सबसे पहला विद्रोह नेपल्स में हुआ, किन्तु आस्ट्रिया द्वारा सैनिक हस्तक्षेप के कारण यह असफल रहा । अभी नेपल्स के विद्रोह को दबाया भी न जा सका था कि पीडमान्ट और लोम्बार्डी में हलचल आरंभ हो गयी । पुन: आस्ट्रिया की सेनाओं ने विद्रोह को दबा दिया । इस प्रकार इटली में एक बार फिर राजतंत्र को सुरक्षित किया गया परन्तु जनता की संवैधानिक माँग को दबाने से इटली में राजतंत्र के निरंकुश तथा रूढ़िवादी स्वरूप के विरूद्ध इटली की भावनाएं उग्र हो गई । राजतंत्र जितना रूढ़िवादी तथा प्रतिक्रियावादी होता गया, इटली उतना ही उदारवादी तथा देशभक्ति से प्रेरित राष्ट्रवादी होता गया । विद्रोह दबा दिये जाने से राष्ट्रवादियों को अधिक तैयारी और मजबूत संगठन खड़ा करने का सबक मिला ।

स्थानीय विद्रोहों का सिलसिला चलता रहा । फ्रांस में 1830 की क्रान्ति होते ही इटली में एक बार फिर विद्रोह शुरू हो गया । पोप की रियासतों में उग्र प्रदर्शन हुए । परमा और

मोडेना के राज्यों से उसके शासक निकाल दिये गये । इन विद्रोहों के विरूद्ध आस्ट्रिया ने तुरन्त कठोर कार्यवाही की और अपदस्थ शासकों को पुन: अपने-अपने सिंहासनों पर आरूढ़ कराया । इस प्रकार आस्ट्रिया ने दो बार इटलीवालों की राष्ट्रीय एकता और स्वतंत्रता प्राप्ति की अभिलाषा को कुचल दिया । फिर भी इन असफल प्रयत्नों ने भविष्य की आशा जगायी । 1830 ई0 की क्रान्ति को सफलता नहीं मिली तो उसका सबसे बड़ा कारण अभी भी लोगों की राजनैतिक उद्देश्य के बारे में अनिश्चितता थी । - अब यह स्पष्ट हो गया कि बिना व्यापक संगठन और योजना के केवल स्थानीय स्तर पर विद्रोह करने से इटली में नये युग का सूत्रपात असम्भव है । 1820 ई0 और 1830 ई0 के विद्रोहों की असफलता से इटली के नेताओं को यह भी ज्ञात हो गया कि जब तक आस्ट्रिया के आधिपत्य का अन्त नहीं जाता जब तक उनके स्वतंत्रता और एकता के प्रयत्न निरर्थक होंगे । मेटरनिक के प्रभाव के कारण इटली में राष्ट्रीयता और उदारवाद की विजय लगभग असम्भव थी ।

4.5.4 लेखकों के प्रयास:

इटली के पुनर्जागरण के इतिहास में राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक तत्वों के साथ सांस्कृतिक क्षेत्र में लेखकों, दार्शनिकों, तथा आलोचकों का योगदान भी सराहनीय रहा ।

1821 ई0 में ही फॉस्कोल तथा रासेटी नामक महान् लेखकों को उनकी देश भक्ति की भावनाओं के कारण देश निकाला दे दिया गया था । 1832 ई0 में सिल्वियों पोलिको ने आस्ट्रिया के जेलखानों का दस वर्षीय वृतान्त ' 'ल मि प्रिजियोनी' ' नामक पत्रिका में लिखा । उसका प्रभाव इटली पर बहुत अधिक पड़ा । इटलीवासियों को इस लेख से यह पक्का विश्वास हो गया कि अत्याचारी आस्ट्रिया से इटली को मुक्त कराना आवश्यक है । 1843 ई0 में जियोबर्ती ने अपनी पुस्तक ' 'इटली की नैतिक और नागरिक श्रेष्ठता' ' में इटली के राज्यों के संघ की वकालात की थी । वह चाहता था आस्ट्रिया को इटली से निकालने के बाद पोप की अध्यक्षता में इटालियन राज्यों का एक संघ बने । कुछ ऐसे भी लेखक थे जिनका विचार था कि सारे राज्यों का सार्डीनिया में विलय हो जाय, तो एक शक्तिशाली और संगठित राजतंत्र के रूप में इटली का प्रादुर्भाव निश्चित है ।

4.5.5 मेजिनी और युवा इटली:

1815 ई0 से 1831 ई0 तक इटली की एकता के लिए जो भी प्रयत्न हुए सब असफल रहे । आस्ट्रिया की शक्ति के सामने इटली के देशभक्तों को हारना पड़ा । इसी समय इटली में एक महान विभूति का प्रादुर्भाव हुआ, जिसने इटली के राष्ट्रीय जीवन में नई चेतना जागृत की । यह था इटली के आन्दोलन का पैगम्बर, जोसेफ मेजिनी । वह स्वप्न देखा करता था कि कभी न कभी इटली का भी उद्धार होगा । शून्य क्षितिज से मानो उसे आव्हान मिला था कि तुम्हारे ही हाथों से इटली का कल्याण होगा और तुम्हीं स्वतंत्र इटली का नेतृत्व करोगे । 1830 ई0 की क्रान्ति के पूर्व वह कार्बोनरी का सदस्य था । उसने भी क्रान्ति में भाग लिया था । क्रान्ति का दमन हो जाने पर उसे बन्दी बनाकर सैब्रोना के दुर्ग में भेज दिया गया और बाद में इटली से निष्कासित कर दिया गया । देश विदेश में घूमने के बाद वह 831 ई0 में फ्रांस पहुँचा । वहाँ

उसने ' 'युवा इटली' ' नामक एक संस्था की स्थापना की, जिसने इटली के राष्ट्रीय आन्दोलन में शीघ्र ही कार्बोनरी का स्थान ले लिया । मेजिनी का विश्वास था कि इटली के नव युवकों में, प्राचीन गौरव और देशप्रेम की भावना भरकर उन्हें स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए संगठित करना चाहिये । मेजिनी ने कहा था, ' 'यदि समाज में क्रान्ति लानी है, तो नेतृत्व नवयुवकों के हाथ में दे दो; युवक-समाज के हृदयोंदयों में असीम शक्ति छिपी होती है । ' 'मेजिनी के दिमाग में संयुक्त इटली का स्वरूप जितना स्पष्ट और निश्चित था उतना अन्य किसी व्यक्ति के दिमाग में नहीं था । उसका उद्देश्य था, इटली के लोगों को शिक्षित कर यह अनुभव करवाना कि इटली एक राष्ट्र है । 1835 ई0 में मेजिनी ने लिखा था, ' 'हमारी आबादी लगभग 12 करोड़ है और प्राचीन काल से लोग हमें इटली की जनता पुकारते चले आ रहे हैं हमारे देश की सीमाएं प्राकृतिक हैं और बिल्कुल स्पष्ट हैं ।..... हम एक ही भाषा बोलते हैं । हमारा धर्म एक है, शिष्टाचार एक है, आदतें एक हैं । हमको अपनी उन राजनैतिक, वैज्ञानिक और कला परम्पराओं पर अभिमान है, जो यूरोप के इतिहास को अलंकृत करती हैं ।..... किन्तु न हमारे पास राष्ट्रीय झंडा है और न कोई राजनैतिक नाम है ।... नही यूरोपीय राज्यों में हमारी कोई प्रतिष्ठा है ।... सभी राज्य परस्पर स्वतंत्र हैं । हमारे आर्थिक हित छिन्न-भिन्न हो रहे हैं ।.. हमें किसी तरह की कोई आजादी नहीं, जो भावनाएं हमारे अन्दर उबल रही हैं, उनको प्रकट करने का कोई साधन हमारे पास नहीं है । इन सब का कारण है कि विदेशी लोग हमें गुलाम बना रहे हैं ।' '

- मेजिनी ने युवा इटली के माध्यम से इटली की जनता को तीन नारे दिये, परमात्मा में विश्वास रखो, सब भाइयों को एक साथ मिलाओ और इटली को मुक्त करो । उसके उद्देश्य स्पष्ट थे- इटली की एकता और स्वतंत्रता की प्राप्ति तथा स्वतंत्रता, समानता और जन-कल्याण पर आधारित राज्य की स्थापना ।

युवा इटली के प्रत्येक सदस्य को यह याद दिलाया जाता था कि वह इटली के देशभक्तों और शहीदों को कभी नहीं भूले । उनको शिक्षा दी जाती थी कि इटली का पुराना गौरव क्या था और मौजूदा शौचनीय अवस्था क्यों है? युवा इटली के सदस्य यह जान चुके थे कि जब कोई इटलीवासी किसी अन्य स्वतंत्र देश के स्वतंत्र नागरिक के समक्ष आँख मिलाने का साहस करता है तो शर्म के कारण उसका सिर झुक जाता है ।

मेजिनी के प्रयासों से उसके पास ऐसे नवयुवक एकत्र हो गये, जिनमें देशभक्ति का अपार जोश था और जो इटली की एकता के लिए कुछ भी करने को तैयार थे । उसने युवकों को सैनिक प्रशिक्षण दिया और स्थान-स्थान पर इसकी शाखाएं खोली । दो वर्ष में ही इसके सदस्यों की संख्या लगभग साठ हजार हो गयी थी । अब इटली के युवक एक नई आशा के साथ आगे बढ़ने लगे । राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए सम्पूर्ण इटली में एक शक्तिशाली जनमत तैयार हो गया । निसंदेह इटली का स्वतंत्रता-संग्राम एक नये युग में प्रवेश कर चुका था ।

मेजिनी के प्रयत्न से 1849 ई0 में रोम में गणतंत्र की स्थापना हुई, मगर कुछ समय पश्चात् ही फ्रांस की सेनाओं ने रोम में पोप को पुन: सत्तारूढ़ कर दिया । यद्यपि मेजिनी अपने उद्देश्य में असफल रहा किन्तु वह इससे निराश नहीं हुआ । वह कहा करता था, ' 'नये विचार तभी फलते-फूलते हैं, जब शहीदों के खून से उनका सिंचन किया जाए ।' '

इटली के इतिहास में मेजिनी का सबसे बड़ा योगदान यह था कि उसने इस बात को समझा कि इटली का एकीकरण का कार्य पूरा हो सकता है । अपना यह विश्वास उसने कई लेखों से जनता तक पहुंचाया। इंग्लैण्ड और फ्रांस में भटकता मेजिनी लगातार लिखता रहा तथा लेनिन की तरह विदेशों से अपने देशवासियों को सम्बोधित एवं प्रेरित करता रहा । युवा इटली भी एक तरह की गुप्त संस्था ही थी क्योंकि उसे स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने की इजाजत नहीं थी, लेकिन वह कार्बोनरी की तरह अस्पष्ट विचारों वाली संस्था नहीं थी । युवा इटली के पास इटली के भविष्य की कल्पना थी और उसे प्राप्त करने के लिए सुनिश्चित कार्यक्रम था । यंग इटली की प्रेरणास्पद भूमिका का प्रमाण इसी से मिलता है कि सारी दुनिया के राष्ट्रीय आन्दोलनों में इस तरह की संस्थाएं शुरू हुई, जैसे भारत में यंग-बंगला, तुर्की में यंग-तुर्की आदि ।

वास्तव में मेजिनी ने इटली के एकीकरण की आधारशिला रखी और इटली के लोगों में देशप्रेम, त्याग और बलिदान के विचार उत्पन्न किये । इसलिए साउथ गेट ने उसका मूल्यांकन करते हुए लिखा है, ' 'यह मेजिनी ही था, जिसने अपने देशवासियों में स्वतंत्रता की भावना उत्पन्न की । यद्यपि वह कावूर की भांति की कूटनीतिज्ञ और गैरीबाल्डी की भांति सेनानायक नहीं था, परन्तु वह एक कवि, आदर्शवादी विचारक और क्रान्ति का अग्रदूत था ।' '

4.5.6 उदार राजतंत्रवादी:

युवा-इटली के अतिरिक्त भी कुछ अन्य देशभक्त इटली की स्वतंत्रता के लिए कार्य कर रहे थे । कुछ देशभक्त उदारवादी राजतंत्र के माध्यम से इटली को स्वतंत्र करना चाहते थे । वे सार्डीनिया-पीडमान्ट के शासक चार्ल्स एल्बर्ट के नेतृत्व में इटली को विदेशी सत्ता से मुक्त कराना चाहते थे । यद्यपि सार्डीनिया का राज्य पहले प्रतिक्रियावादी ही था किन्तु शनैः-शनैः चार्ल्स एल्बर्ट के समय उसकी नीति में परिवर्तन आ गया तथा उसने राज्य में अनेक आर्थिक और सैनिक सुधार किये और यह घोषणा की, ' 'जब समय आयेगा तक मेरा जीवन, मेरा घन, मेरा सर्वस्व इटली की वेदी पर बलिदान किया जायेगा । " इस घोषणा से कई राष्ट्रवादियों को यह विश्वास हो गया कि इटली की स्वाधीनता तथा एकीकरण का सच्चा नेतृत्व पीडमान्ट का शासक ही करेगा । चार्ल्स एल्बर्ट के अस्थिर चरित्र के बावजूद सार्डीनिया पीडमान्ट के निर्माण में चार्ल्स की देन सराहनीय है ।

4.5.7 पोप की उदारवादी नीति:

1846 में पोप ग्रेगरी 16 वें का देहावसान हो गया और उसके स्थान पर पायस नवम् पोप बना । पोप पायस नवम् दयालु और उदार प्रवृत्ति का था । बहुत दिनों बाद एक ऐसा व्यक्ति पोप हुआ था, जो अपने चरित्र और स्वभाव से लोगों को नेतृत्व प्रदान कर सकता था । उसे इटली में परिवर्तन चाहने वालों से सहानुभूति थी । उसने स्वयं ही पहल की । उसकी रियासतों में राजनीतिक बन्दी छोड़ दिये गये और प्रशासन में कई तरह के सुधार किये गये । उसके उदारवादी प्रशासन का प्रभाव पोप के राज्यों तथा टस्कनी पर पड़ना प्रारम्भ हो गया । इससे मेटरनिख भयभीत हो उठा । आस्ट्रिया की सेना पोप के नगर फरेरा में घुस गयी तथा पोप पर दबाव डालने का प्रयास करने लगी । पोप ने इसे स्वीकार नहीं किया । कैथोलिक जगत

का ध्यान पोप ने आकर्षित किया । चार्ल्स एल्बर्ट ने पोप की सहायतार्थ सेना भेजी । यूरोपीय कैथोलिकों के विरोध से मेटरनिख घबरा गया । उसने अपनी सेना हटा ली । यह मेटरनिख की पहली राजनैतिक हार थी ।

4.5.8 1848 की क्रान्ति और इटली:

1848 ई0 में फ्रांस में क्रान्ति हुई तो इसका प्रभाव इटली पर भी पड़ना स्वाभाविक था । फलत: वहाँ भी राष्ट्रीय आन्दोलन आरम्भ हो गया । इटली में 1848 में क्रान्ति का उद्देश्य उदारवादी आर्थिक सुधार एवं संवैधानिक प्रशासन लागू करना तथा येनकेन प्रकारेण एकीकरण तथा स्वतंत्रता प्राप्त करना था ।

सर्वप्रथम नेपल्स और सिसली के राज्य में सुधारवादी नेताओं ने विद्रोह किया और संविधान की मांग की । अन्त में नेपल्स के शासक फर्डनेंड द्वितीय को उदारवादी संविधान स्वीकार करना पड़ा । इसके पश्चात् पीडमान्ट टस्कनी और पोप के राज्यों में भी संविधान की माँग बढ़ी और मार्च, 1848 तक इन तीनों राज्यों में वैधानिक राजतंत्र की स्थापना हो गयी । मार्च, 1848 की क्रान्ति द्वारा मेटरनिख के भागने की सूचना से इटली के लोगों में नया जोश उत्पन्न हो गया । सभी इस बात से सहमत थे कि इटली के कन्धों से आस्ट्रिया का जुआ उतार फेंका जाय । वियेना की सूचना पाकर मिलान में विद्रोह हो गया और वहाँ का वायसराय भाग गया । वहाँ के निवासियों ने आस्ट्रिया द्वारा तम्बाकू पर लगाये गये कर के विरोध में सिगरेट पीनी छोड़ दी । जो भी सिगरेट पीता दिखाई देता उस पर प्रहार किया जाता । एक प्रकार से तम्बाकू दंगे शुरू हो गये । वेनिस में भी आस्ट्रिया के शासन का अन्त हो गया और गणतंत्र की स्थापना हुई । परमा व मोडेना के शासक भी भाग गये । इस समय देश के सभी विचारों के लोग आस्ट्रिया के साथ युद्ध करके उसकी अधीनता से मुक्त होना चाहते थे । काउन्ट काबूर जो इस समय 'रिसाजीमेन्टो' नामक पत्र का सम्पादक था ने राष्ट्र के नाम एक अपील में कहा, ' 'सार्डीनिया के राज्य के लिए महान् निर्णय का अवसर आ गया है । सरकार और सम्पूर्ण राष्ट्र का केवल एक ही कर्तव्य है कि तुरन्त युद्ध छेड़ा जाय ।' ' सार्डीनिया के सम्राट चार्ल्स एल्बर्ट ने भी इस अपील को पढ़ा । उसको लगा कि मानो उसका राजवंश के सामने एक महान् ऐतिहासिक दायित्व है । उसने 23 मार्च, 1848 को आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी । पोप और नेपल्स के शासक फर्डीनेंड को वहाँ की जनता ने मजबूर कर दिया कि वे इटली के मुक्ति संग्राम में भाग लें । यह उल्लेखनीय है कि अब तक का इटली का संघर्ष विद्रोहों और आन्दोलनों तक सीमित था, किन्तु अब वह राष्ट्रीय युद्ध का रूप धारण करता प्रतीत हो रहा था । स्थान-स्थान पर आस्ट्रिया को पराजित होना पड़ा । दुर्भाग्यवश, इटली की एकता की यह लहर अल्पकालीन सिद्ध हुई । पोप कैथोलिक के विरोध से डरकर पीछे हट गया । फर्डीनेंड ने आन्तरिक उपद्रव के बहाने अपनी सेनाएं हटा ली । अब चार्ल्स -युद्ध में अकेला पड़ गया और उसे आस्ट्रिया की शर्तों पर आत्मसमर्पण करना पड़ा । फलस्वरूप लोम्बार्डी और वेनीशिया पर आस्ट्रिया का पुन: अधिकार हो गया ।

इन्हीं दिनों मेजिनी पुन: लौटकर इटली आ गया था । चार्ल्स एल्बर्ट की असफलता से मध्यमार्गी राजतंत्र दल की योजनाएं विफल हो गयी । अब उग्र गणतंत्रवादी दल राष्ट्रीय

आन्दोलन का नेतृत्व करने लगा । मेजिनी इस दल का नेता था । उसने कहा,- ' ' चार्ल्स एल्बर्ट कमजोर निकला और पोप पायस नवम् अस्थिर सिद्ध हुआ। राजाओं द्वारा स्वतंत्रता युद्ध समाप्त किया जा चुका है, अब सर्वसाधारण द्वारा स्वतंत्रता संग्राम आरम्भ किया जाना चाहिए । " फरवरी 1849 में मेजिनी के नेतृत्व में रोम में गणतंत्र की स्थापना की गयी । पोप का साम्राज्य समाप्त हो गया और स्वयं पोप ने नेपल्स में स्थित गेटा में जाकर शरण लेनी पड़ी । टस्कनी में भी गणतंत्र की स्थापना हो गयी और वहाँ के शासक लिओपोल्ड को भागना पड़ा । किन्तु सम्पूर्ण इटली का भाग्य तो पीडमॉन्ट पर आधारित था । पीडमान्ट के शासक चार्ल्स एल्बर्ट ने राजतंत्रवादियों के दबाव के कारण पुन: आस्ट्रिया के विरूद्ध संघर्ष आरंभ किया । किन्तु 23 मार्च 1849 को उसकी सेनाएं नोवारा नाम स्थान पर हार गयी । इस हार के फलस्वरूप चार्ल्स ने सिंहासन त्याग दिया और उसका पुत्र विक्टर एमेनुअल द्वितीय पीडमान्ट का शासक बना । उसे आस्ट्रिया से संधि करनी पड़ी जिसके अनुसार लोम्बार्डी पर आस्टिया का अधिकार हो गया । किन्तु आस्ट्रिया के कहने पर उसने पीडमान्ट का संविधान रद्द नहीं किया ।

नोवारा के युद्ध के बाद इटली में सर्वत्र प्रतिक्रिया आरंभ हुई । नेपल्स व सिसली में फर्डिनेंड ने पुन: अपनी शक्ति स्थापित कर ली । टस्कनी पर भी लिओपोल्ड का अधिकार हो गया । यद्यपि रोम का पतन हो चुका था, किन्तु लुई नेपोलियन की मदद से पोप को पुन: सत्तारूढ़ कर दिया गया । अगस्त, 1849 ई0 में वेनिस पर भी आस्ट्रिया का अधिकार हो गया । अन्तत: इटली में आस्ट्रिया का साम्राज्य छा गया । मेजिनी और गैरीबाल्डी को देश छोड़कर भागना पड़ा । इस प्रकार एकता और स्वतंत्रता का यह प्रयास विफल हो गया । केटलबी ने सही लिखा है,' ' " 1815 से 1850 तक इटली का इतिहास घरेलू फूट, विदेशी आधिपत्य एवं विफल संघर्ष का इतिहास था । "

यद्यपि राष्ट्रीय आन्दोलन और गणतंत्रीय प्रयत्न विफल हुए, फिर भी इस विफलता में भी सफलता के बीज मौजूद थे । इस संघर्ष के पश्चात स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व पीडमान्ट के राजवंश को प्राप्त हुआ। विक्टर एमेनुअल ने तिरंगे को ऊँचा उठाये रखने का आश्वासन दिया । सभी देशभक्तों को विश्वास हो गया कि पीडमान्ट राज्य ही इटली को मुक्त करा सकता है ।

4.6 अनुभागीय सारांश एवं अभ्यासार्थ प्रश्न:

सारांश-

जर्मनी की भाँति इटली भी अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था । नेपोलियन महान् ने इटली के लिए जो कुछ प्रत्यक्ष या परोक्ष किया था उस पर वियेना कांग्रेस ने पानी फेर दिया था जिससे इटली के एकीकरण का मार्ग दुष्कर हो गया था । उसके एकीकरण के मार्ग में कई कठिनाइयाँ थीं जिनमें प्रमुख रूप से आस्ट्रिया एवं पोप की उपस्थिति तथा स्वतंत्र राज्यों को संगठित करने से सम्बन्धित थीं । इटली की इन कठिनाइयों पर विजय विभिन्न तत्वों के सहयोग से सम्भव हुई । इटली के आर्थिक विकास ने राजनीतिक चेतना का मार्ग प्रशस्त किया । यूरोप के अन्य भागों की तरह 1848 ई0 में इटली में भी क्रांतिकारी विद्रोह शुरू हो गये थे और शासकों को जनहित में लोकतांत्रिक सुधार करने के लिए मजबूर किया जा चुका था । फिर

भी एकीकरण और आजादी का लक्ष्य अभी बहुत दूर था जो सार्डीनिया के नेतृत्व में साकार होना था ।

प्रश्न-

(1) मेजिनी एवं युवा इटली के बारे में आप क्या जानते हैं ।

(2) इटली के एकीकरण में कौन से तत्व सहायक रहे ।

(3) इटली के एकीकरण में विभिन्न बाधक तत्वों को रेखांकित कीजिए ।

4.7 एकीकरण यथार्थता की ओर:

इटली के एकीकरण का प्रारम्भिक चरण समाप्त हो गया था । इस सोपान में इटली को जोड़ने वाले तत्वों का ज्ञान लोगों को हो गया था । मेटरनिख का पतन हो चुका था । सारे इटली में पहली बार आन्दोलनों का स्वरूप राष्ट्रीय हो चुका था । इटली के एकीकरण में बाधक शक्तियाँ जग जाहिर हो चुकी थी । इन शक्तियों के विस्थापन में कई राष्ट्रीय नेता अपने-अपने तरीकों से लगे हुए थे । इटली का कोई एक शत्रु न था । उसे आस्ट्रिया, पोप तथा राजतंत्रों के विरूद्ध लड़ना था । गुप्त समितियों, लेखकों, तथा पिछले विद्रोहों एवं क्रान्तियों ने मिलकर इटली के स्वतंत्रता आन्दोलन का अनुप्राणित रखा । परन्तु इटली का यथार्थ में एकीकरण कैसे हो? इसके लिए कोई निश्चित योजना किसी के पास नहीं थी । यह कार्य विक्टर एमेनुअल एवं कावूर ने मिलकर किया । आगे का अध्ययन इटली के एकीकरण का यथार्थता की ओर बढ़ने का है ।

4.7.1 विक्टर एमेनुअल द्वितीय (1849-70 ई0)

विक्टर एमेनुअल एक वीर सैनिक, सच्चा देशभक्त और ईमानदार शासक था । वह यूरोप के राजनीतिक वातावरण से पूर्णत: परिचित नहीं था, तथापि वह एक समझदार राजनीतिज्ञ था । पीडमान्ट की जनता उसे 'ईमानदार राजा' कहा करती थी । मार्च, 1849 में जब विक्टर पीडमान्ट-सार्डीनिया का शासक बना, उस समय सार्डीनिया की सेना आस्ट्रिया से परास्त हो चुकी थी । अत: उसे आस्ट्रिया से संधि करनी पड़ी । आस्ट्रिया के साथ संधि के कारण सार्डीनिया की संसद में उसका विरोध बढ़ गया था । इधर आस्ट्रिया ने उस पर 1848 के संविधान को रद्द करने के लिए दबाव डाला, किन्तु विक्टर एमेनुअल ने संविधान को बनाये रखा । अगस्त, 1849 में सार्डीनिया की संसद ने उसे अस्वीकार कर दिया । विक्टर एमेनुअल ने पुन: चुनाव कराकर नयी संसद से संधि की स्वीकृति ले ली ।

विक्टर एमेनुअल को यह विश्वास था कि मध्य-मार्गी नीति अपना कर वह सार्डीनिया के नेतृत्व में इटली का एकीकरण कर सकता है । उसने इस हेतु प्रयत्न भी आरंभ कर दिये थे । वह अपने गुणों के कारण जनता में लोकप्रिय हो गया । गैरीबाल्डी जैसे गणतंत्रवादी भी उसकी प्रशंसा करते थे । इटली के सभी निर्वासित देशभक्त पीडमान्ट की ओर आकर्षित होने लगे । विक्टर एमेनुअल के भाग्य से 1850 में काउन्ट कवूर जैसा योग्य मंत्री उसे मिला, जिसकी गणना 19 वीं शताब्दी के महानतम राजनीतिज्ञों में की जाती है ।

4.7.2 कावूर (1810-61 ई0):

माउन्ट केमिलो-डी- कवूर का जन्म 1810 ई0 में ट्यूरिन के एक कुलीन परिवार में हुआ था । सैनिक शिक्षा प्राप्त कर वह सेना में इंजीनियर के रूप में भर्ती हुआ । किन्तु अपने उदार विचारों के कारण उसे सेना से 1841 ई0 में त्यागपत्र देना पड़ा । 1841-1846 तक वह अपनी जमींदारी का कार्य करता रहा । इस समय में वह कई -अगर फ्रांस और इंग्लैण्ड भी गया । इंग्लैण्ड में रहकर उसने संसदीय प्रणाली को नजदीक मे देखा । उसका विश्वास इस शासन प्रणाली पर अधिक दृढ़ हो गया । वह अपने देश में भी इसी प्रकार की शासन प्रणाली स्थापित करने का प्रयत्न करने लगा ।

1847 ई0 में कावूर ने इल रिसाजीमेन्टो नामक समाचार- पत्र का प्रकाशन शूरू किया । इस पत्र के माध्यम से इटली के एकीकरण की बात कही जाने लगी । 1848 ई0 में वह सार्डीनिया पीडमान्ट की प्रथम संसद का सदस्य चुना गया । उसकी योग्यता के कारण उसे 1850 में वित्त एवं उद्योग मंत्री बना दिया गया । उसका विश्वास था कि इटली के एकीकरण के लिए आर्थिक उन्नति और सैनिक शिक्त आवश्यक थी । उसकी यह भी धारणा थी कि जब तक विदेशी सहायता प्राप्त नहीं होगी, तब तक इटली स्वतंत्र नहीं हो सकता । राजनीति और शिक्त, दोनों ही आस्ट्रिया को इटली से निकालने के लिए आवश्यक थे । 1852 ई0 में डी-एज्रेग्लिओ के मिन्त्रमण्डल के त्यागपत्र देने पर वह प्रधानमंत्री बना । कवूर के प्रधानमंत्री नियुक्त होते ही इटली के इतिहास में एक नवीन अध्याय आरंभ होता है । अपने इस काल में उसने एक कूटनीतिज्ञ तथा अद्वितीय राजनीतिज्ञ होने का परिचय दिया । कवूर भी मेजिनी और गैरीबाल्डी के समान सच्चा देशभक्त था और इटली को स्वतंत्र कर उसका एकीकरण करना चाहता था । वह जानता था कि (1) इटली का एकीकरण सार्डीनिया के नेतृत्व में ही सम्भव हो सकता है, (2) एकीकरण के लिए यह आवश्यक है कि इटली के राज्यों को आस्ट्रिया से मुक्त कराया जाय और (3) आस्ट्रिया से मुक्ति-प्राप्त करने के लिए विदेशी सहायता आवश्यक है ।

कवूर के उद्देश्य गैरीबाल्डी और मेजिनी के समान ही थे किन्तु उसके विचार उन दोनों से कुछ भिन्न थे । मेजिनी का मिस्तष्क कल्पनाशील और काव्यात्मक था; कावूर का व्यावहारिक और निश्चयात्मक । कवूर उदार राजतंत्र का पोषक था । उसकी मेजिनी के गणतंत्रीय विचारों और क्रान्तिकारी साधनों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी । केटलबी ने लिखा है, ' 'यह कवूर के महान् मिस्तष्क का कार्य था, जिसने मेजिनी की प्रेरणा को एक प्रबल कूटनीतिक शिक्त के रूप में गतिमान बनाया तथा गैरीबाल्डी की तलवार का एक राष्ट्रीय अस्त्र के रूप में प्रयोग किया । "वास्तव में कवूर के बिना मेजिनी का आदर्शवाद और गैरीबाल्डी की वीरता निरर्थक होती । कवूर ने इन दोनों विचारों में सामन्जस्य स्थापित किया । कवूर की योजना थी कि आस्ट्रिया को इटली से बाहर निकाल फैंकने के लिए किसी यूरोपीय महाशिक्त की सहानुभूति प्राप्त करना आवश्यक है । एक बार उसने कहा भी था, ' 'हम चाहें न चाहें हमारा भाग्य फ्रांस पर निर्भर है ।"

कवूर का यह विश्वास था कि यदि सार्डीनिया-पीडमान्ट को इटली के एकीकरण का नेतृत्व करना है, तो उसे आर्थिक और सैनिक दृष्टि से सुदृढ़ बनाना होगा । अत: उसने इस नीति को अपने राज्य में अपनाया ।

4.7.2.1 कवूर की गृह-नीति:

कवूर ने राज्य की आर्थिक उन्नति के लिए व्यापार-वाणिज्य के विकास पर विशेष ध्यान दिया । उसने मुक्त व्यापार नीति अपना कर विदेश-व्यापार-वाणिज्य को प्रोत्साहन दिया । यातायात की सुविधाओं का विस्तार किया और बैंकों की स्थापना की । सहकारी समितियाँ खोली तथा कृषि की उन्नति के लिए विभिन्न संस्थाऐं स्थापित की । कवूर ने इंजीनियरी की शिक्षा प्राप्त की, व्यवसाय पत्रकारिता अपनाया और जीवन-राजनीति में विलीन कर दिया । वह हर समस्या पर तकनीकी विशेषज्ञ की भांति विचार करता था ।

कवूर ने आर्थिक सुधारों की दिशा में एक बड़ा कदम गिरजाघरों की भूमि पर कर लगाकर उठाया । उन्हें राजनीतिक नियंत्रण मे लेने की चेष्टा की । कैथोलिक ल इटली की एकता में बाधक थे, अत: चर्च के अनेक विशेषाधिकार छीन लिये ।

आर्थिक सुधारों के अतिरिक्त उसने सेना की ओर भी ध्यान दिया । जनरल ला-मोरमोरा को उसने सेना का अध्यक्ष नियुक्त किया । 90 हजार सैनिकों की उसने एक सुसज्जित सेना तैयार की । राज्य की सीमा पर दुर्ग बनवाये । जल-सेना की ओर भी उसे ध्यान दिया । इस बढ़े हुए खर्चो के समाधान के लिए उसने करों में वृद्धि की ।

कवूर अपनी गृहनीति:

इटली के एकीकरण के लिए आस्ट्रिया के प्रभुत्व से मुक्त होना, तथा पीडमान्ट के शासक की अध्यक्षता में उसे संगठित करना, काबूर की विदेश नीति का उद्देश्य था । वह मेजिनी के इस विचार से सहमत ही था कि अकेला इटली बिना किसी बाहरी सहायता के आस्टिया को बाहर धकेल देगा । अत: वह किसी यूरोपीय शक्ति की मदद की तलाश में था । वह बिस्मार्क की भांति यथार्थवादी राजनीति में विश्वास रखता था । राज्य की आवश्यकता को ध्यान में रखकर वह किसी भी माध्यम और नीति को अपना सकता था, बशर्ते उससे राज्य का हित हो । वह राजनीति में हिंसा को अनिवार्य शस्त्र मानता था । इस प्रकार उसकी विदेशनीति युद्ध और सैन्यवाद पर आधारित थी । उसे यह भी ज्ञान था कि इंग्लैण्ड और फ्रांस ही उसके सहायक हो सकते थे । इंग्लैण्ड की इटली के प्रति सहानुभूति अवश्य थी किन्तु उससे सक्रिय मदद की आशा उसे नहीं थी । दूसरी ओर फ्रांस का शासक नेपोलियन तृतीय महत्वाकांक्षी, साहसिक और राष्ट्रीयता का समर्थक था । फ्रांस की सेना भी यूरोप में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी । अत: कवूर ने नेपोलियन तृतीय की सहायता पाने का प्रयत्न किया क्रीमिया का युद्ध और कवूर:

4.7.3 कीमिया का युद्ध और कावूरः

क्रीमिया के युद्ध ने कवूर को इंग्लैण्ड और फ्रांस के साथ सहयोग करने और उनकी मित्रता के लाभ उठाने का अवसर दे दिया । पूर्वी-समस्या के उलझ जाने के कारण काला सागर के तट पर क्रीमिया का युद्ध 1854 ई0 में छिड़ गया था । इस युद्ध में इंग्लैण्ड और फ्रांस ने रूस के विरूद्ध तुर्की की मदद की थी । दूरदर्शी कवूर ने यहाँ एक अवसर देखा । रूस के विरूद्ध

लड़ती हुई, इंग्लैण्ड और फ्रांस की सेनाओं की मदद के लिए, कावूर ने जनवरी 1854 ई0 में सहायता देने का वचन दिया । अप्रैल 1854 ई0 तक 18,000 इटालियन सैनिक क्रीमिया पहुँच गये, जिससे मित्र राष्ट्रों को काफी प्रोत्साहन मिला । यह स्मरण रहे कि इस समय उदारवादियों ने कवूर की नीति का विरोध किया था क्योंकि उसने अप्रत्यक्ष रूप से निरंकुश तुर्की मदद की थी परन्तु विक्टर एमेनुअल ने उसकी नीति का अनुमोदन किया । कवूर की यद्यपि पूर्वी-समस्या में कोई रूचि नहीं थी, फिर भी वह युद्ध में शामिल क्यों हुआ ? वह चाहता था कि सार्डीनिया की यूरोपीय राज्यों में गणना होने लगे और इटली के एकीकरण का प्रश्न यूरोपीय शक्तियों के बीच कूटनीतिक प्रश्न बन जाय । वह यह भी चाहता था कि कम से कम एक बड़ी यूरोपीय शक्ति उसके पक्ष में हो जाय । कावूर ने यह राजनैतिक जुआ इसलिए खेला था कि उसे फ्रांस के शासक नेपोलियन तृतीय की सहानुभूति का विश्वास था । यह भी उल्लेखनीय है कि कावूर ने इंग्लैण्ड और फ्रांस की रूस के विरूद्ध सहायता करके जो जुआ खेला था, उसमें न तो कोई शर्त थी, न उसमें कोई गुप्त रहस्य था और न किसी ओर से कोई गारन्टी थी । क्रीमिया के इस युद्ध में सार्डीनिया की सेना ने वीरतापूर्ण प्रदर्शन किया । युद्ध-समाप्ति के पश्चात् पैरिस में सम्मेलन (मार्च, 1856) हुआ। यद्यपि सार्डीनिया को आमन्त्रित करने का आस्ट्रिया ने विरोध किया किन्तु इंग्लैण्ड और फ्रांस ने उसके विरोध के बावजूद सार्डीनिया को सम्मेलन में आमन्त्रित किया । पैरिस में इग्लैण्ड, फ्रांस, रूस तथा आस्ट्रिया के प्रतिनिधियों के साथ कावूर को भी बराबर की स्थिति में भाग लेने का अवसर मिला । इस अवसर पर फ्रांस के विदेश मंत्री वैलेवस्की ने कवूर से कहा था, ' 'तुम इतने चतुर हो कि तुमने ऐसे मामले में भी प्रवेश पा लिया, जिससे तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं है । " उसने सम्मेलन के समक्ष इटली की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का चित्र प्रस्तुत किया और आस्ट्रिया को उसके लिए दोषी ठहराया । कवूर ने पैरिस के शान्ति सम्मेलन में यह बात स्पष्ट रूप से बताई कि जिन बातों का प्रभाव इटली पर पड़ता है उन बातों का सार्डीनिया-पीडमान्ट पर भी प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता अर्थात् इटली के प्रश्न को यूरोपीय प्रश्न बना दिया । पैरिस सम्मेलन में उसने एक प्रकार से नैतिक विजय प्राप्त की और उसके कारण सार्डीनिया पीडमान्ट में ही नहीं, सम्पूर्ण इटली में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी । इस प्रकार क्रीमिया का युद्ध काश के लिए देव-प्रदत्त सुअवसर साबित हुआ। इसलिए यह कहा जाता है कि 'क्रीमिया के कीचड़ से इटली का जन्म हुआ'

पैरिस सम्मेलन के पश्चात् आस्ट्रिया ने इटली के प्रति उदारवादी और समझौतावादी नीति अपनायी । लोम्बार्डी और वेनीशिया में अपने शासन की कठोरता में कमी कर दी तथा निर्वासित क्रान्तिकारियों की सम्पत्ति जब्त करने के आदेश वापस ले लिये । सम्राट फ्रांसिस जोसेफ ने जनवरी, 1857 में इटली के प्रान्तों की यात्रा की और अपने भाई मेक्सीमिलियन को, जो उदारता की नीति का समर्थक था, लोम्बार्डी-वेनीशिया का गवर्नर नियुक्त किया । किन्तु इससे इटली के देश भक्तों का विरोध कम नहीं हुआ। वेनिश के निर्वासित नेता मानिन ने इस नीति के विषय में कहा था, ' 'हम नहीं चाहते कि आस्ट्रिया अपनी इटली सम्बन्धी नीति में सुधार करें, बल्कि यह चाहते हैं ' 'कि वह इटली से निकल जाय । "

4.7.4 नेपोलियन का सहयोग एवं लोम्बार्डी की प्राप्ति:

कवूर ने भावी स्वातंत्रय-संग्राम की रूपरेखा बना ली थी । किंतु रूपरेखा को साकार करने के लिए किसी विदेशी सहायता को प्राप्त करना अपरिहार्य हो गया था । इस हेतु कवूर के सामने दो राज्य थे-इंग्लैण्ड और फ्रांस । उसे यह शीघ्र ही मालूम हो गया कि ब्रिटिश जनता में तथा पामर्स्टन, गलेड्स्टन तथा रसेल जैसे बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों में इटली के साथ सहानुभूति होते हुए भी इंग्लैण्ड से किसी सक्रिय सहायता की आशा नहीं हो सकती । इसके विपरीत नेपोलियन की राष्ट्रीयता के प्रति प्रेम होने के कारण उससे सहायता प्राप्त करने की आशा की जा सकती थी । कवूर नेपोलियन से सन्धि करने का उपयुक्त अवसर देख रहा था परन्तु इसी बीच आर्सिनी काण्ड हो गया ।

4.7.4.1 ऑर्सिनी काण्ड:

1858 ई0 में मेजिनी के गणतंत्रवादी शिष्य ऑर्सिनी ने नेपोलियन तृतीय की हत्या का प्रयास किया तो कवूर की सारी योजनाओं पर तुषारापात हो गया । यह 1800 ई0 की दुर्घटना की पुनरावृत्ति थी और नेपोलियन की भांति ही नेपोलियन तृतीय भी बाल-बाल बचा गया था, यद्यपि उसके कई अंग-रक्षक मारे गये थे । कुछ दिनों तक पैरिस और ट्यूरिन के राजदरबारों के बीच सम्बन्धों में तनाव आ गया था । फ्रांस की सरकार इंग्लैण्ड से नाराज हो गयी क्योंकि बाद में पता चला कि इंग्लैण्ड मे ही नेपोलियन तृतीय को मारने की योजना बनायी गयी थी । कवूर को अत्यन्त जटिल स्थिति का सामना करना पड़ा क्योंकि वह फ्रांस को नाराज नहीं करना चाहता था । उसने आर्सिनी के कार्य की आलोचना की और नेपोलियन की इच्छानुसार समाचार-पत्रों पर कठोर प्रतिबंध लगाये । किंतु यह आश्चर्य की बात है कि आर्सिनी द्वारा जेल से लिखे गये एक पत्र का जिसमें फ्रांस के सम्राट से इटली को स्वतंत्रता दिलाने की प्रार्थना की थी, नेपोलियन तृतीय पर बहुत प्रभाव पड़ा ।

4.7.4.2 प्लोम्बियर्स का समझोता:

सम्राट नेपोलियन तृतीय लगभग एक माह के लिए सार्डीनिया की सीमा के निकट छुट्टियाँ व्यतीत करने के लिए ठहरा हुआ था । कावूर बिना किसी औपचारिक निमन्त्रण के प्लोम्बियर्स जा पहुँचा । कवूर और नेपोलियन की भेंट के परिणामस्वरूप फ्रांस तथा सार्डीनिया के बीच एक- समझौता हुआ । इस समझौते में निम्नलिखित निर्णय लिये गये-

(1) नेपोलियन ने वचन दिया कि आस्ट्रिया को इटली से निकालने के लिए सार्डीनिया और आस्ट्रिया के बीच युद्ध होने पर फ्रांस दो लाख सैनिक पीडमान्ट की सहायता के लिए भेजेगा ।

(2) आस्ट्रिया को बाहर निकालने के बाद लोम्बार्डी, वेनीशिया और कुछ अन्य भाग सार्डीनिया के राज्य में सम्मिलित कर दिये जायेंगे, जिससे इसकी सीमा आल्पस से एड्रियाटिक तक पहुँच सके ।

(3) नेपोलियन की सहायता के बदले में कवूर ने सेवाय और नीस के भाग फ्रांस को देने का आश्वासन दिया ।

(4) आस्त्रिया और टस्कनी को मिलाकर इटली में एक नया राज्य बनाने और प्रिन्स जेरोम बोनापार्ट को उस राज्य का शासक बनाने का निश्चय हुआ।

(5) नेपल्स और सिसली (दोनों) तथा पोप के राज्यों को पूर्ववत् बनाये रखने का भी निर्णय किया गया ।

(6) फ्रांस ओर सार्डीनिया की मित्रता को मजबूत बनाये रखने के लिए विक्टर एमेनुअल की पुत्री क्लोथिडे का विवाह नेपोलियन के चचेरे भाई प्रिन्स जेरोम बोनापार्ट के साथ होना निश्चित हुआ।

इस प्रकार इटली को चार राज्यों में विभाजित करने और उनका एक संघ बनाने की योजना बनायी गयी । कावूर नहीं चाहता था कि इटली के चार टुकड़े किये जायें । फिर प्रश्न यह उठता है कि कवूर ने इसे स्वीकार क्यों किया? वह पूर्व परिस्थितियों से शिक्षा ले चुका था । 1848-49 की घटनाएं उसके सम्मुख थी । कस्टीजा और नोवेरा की घटनाओं ने प्रमाणित कर दिया था कि अकेला इटली आस्ट्रिया को बाहर नहीं खदेड़ सकता है । कवूर को 1856 के पैरिस सम्मेलन में यह स्पष्ट ही गया था कि आस्ट्रिया बिना युद्ध के इटली पर अपना अधिकार नहीं छोड़ेगा । इसलिए इटली के लिए विदेशी सहायता प्राप्त करना अनिवार्य था और इस सहायता के लिए काई भी कीमत ज्यादा नहीं थी । वैसे तो कवूर इंग्लैण्ड की सहायता चाहता था । परन्तु इंग्लैण्ड आस्ट्रिया की शक्ति तथा साम्राज्य का समर्थक था क्योंकि इंग्लैण्ड फ्रांस और रूस पर अंकुश रखने के लिए आस्ट्रिया को शक्तिशाली बनाये रखना चाहता था । इंग्लैण्ड इटली के एकीकरण का परिणाम समझता था- विजयी नेपोलियन तृतीय, परास्त आस्ट्रिया तथा शक्तिशाली संयुक्त इटली । ऐसी स्थिति में कवूर के लिए यह संतोष की बात हो सकती थी कि इंग्लैण्ड को तटस्थ रख सके और वह इसमें सफल हुआ । अब कवूर को फ्रांस ही ऐसा देश नजर आ रहा था, जो इटली की सहायता को तैयार था ।

एक प्रश्न और नेपोलियन तृतीय ने इटली के एकीकरण में क्यों रूचि व्यक्त की? यह स्मरण रहे कि पैरिस सम्मेलन के समय कवूर ने इटली की राष्ट्रीय आकांक्षाओं के प्रति नेपोलियन की सहानुभूति प्राप्त कर ली थी । नेपोलियन कई कारणों से राष्ट्रीय आन्दोलन में सहायक होना चाहता था । वह पहले कार्बोनरी संस्था का सदस्य रह चुका था उसने इटली के स्वतंत्रता के संघर्ष में भी भाग लिया था । इसके अतिरिक्त वह दलित राष्ट्रों की राष्ट्रीयता का भी मसीहा होने का भी दावा करता था । उसका यह समीकरण भी था कि सार्डीनिया की सहायता करके वह इटली में आस्ट्रिया के प्रभुत्व को नष्ट कर सकेगा और 1815 में उसके वंश एवं फ्रांस का अपमान करने वाले शत्रु से प्रतिशोध भी ले सकेगा । उसे नीस और सेवाय के प्रदेश प्राप्त करने का भी वचन समझौते में मिल चुका था । संक्षेप में नेपोलियन की इटली सम्बन्धी नीति का उद्देश्य फ्रांस का गौरव बढ़ाना था ।

4.7.4.3 आस्ट्रिया-सार्डीनिया युद्ध:

प्लोम्बियर्स समझोते में यह तय किया गया था कि आस्ट्रिया को भड़का कर यथाशीघ्र युद्ध आरंभ किया जाय ताकि आस्ट्रिया आक्रामक लगे तथा सार्डीनिया आत्मरक्षार्थ लड़ने वाला प्रतीत हो । कवूर ने प्लोम्बियर्स से लौटते ही युद्ध की तैयारी आरंभ कर दी । पीडमान्ट के

समाचार पत्रों में आस्ट्रिया की कटु आलोचना की जाने लगी । कावूर अपने कार्यो से आस्ट्रिया को आक्रमण करने के लिए उकसाना चाहता था । कावूर ने इटली स्थित आस्ट्रिया के मस्स और फर्रारा में विद्रोह करवा दिया, जिससे स्थिति तनावपूर्ण हो गयी । ऐसा प्रतीत होने लगा कि सार्डीनिया और आस्ट्रिया के बीच युद्ध अवश्यम्भावी है । अत: इंग्लैण्ड ने दोनों देशों के बीच समझौता कराने हेतु यूरोपीय कांग्रेस आमन्त्रित करने का सुझाव दिया । आस्ट्रिया ने यह प्रस्ताव इस शर्त पर स्वीकार किया कि कांग्रेस से पूर्व सार्डीनिया का सैन्य-वियोजन हो जाना चाहिये । जबकि सार्डीनिया चाहता था कि पहले आस्ट्रिया की सेना अपनी सीमा में चली जाये । अत: ब्रिटेन का यह प्रस्ताव असफल रहा । अन्त में ब्रिटेन ने फ्रांस के सहयोग से समस्या के समाधान का रास्ता खोजने की कोशिश की । अन्त में सार्डीनिया डस समय पूर्खता के साथ आगे बढ़ा और उसने उत्तेजित होकर सार्डीनिया को 23 अप्रैल, 1859 को एक अल्टीमेटम भेजा कि तीन दिन के भीतर वह सैन्य-वियोजन कर दे अन्यथा उसके विरूद्ध युद्ध छेड़ दिया जायेगा । कवूर की सोई हुई आशाएं जग उठी । कवूर प्रसन्नता से चिल्ला उठा, ' 'पासा पलट गया है और हम इतिहास बनाने जा रहे है । " 29 अप्रैल को आस्टिया की सेनाओं ने सार्डीनिया की सीमा में प्रवेश किया और युद्ध आरंभ हो गया । इस युद्ध में विक्टर एमेनुअल ने स्वयं अपनी सेना की कमान सम्भाली । आस्ट्रिया यूरोप की नजरों में आक्रामक होने की वजह से नेपोलियन का संकोच भी समाप्त हो गया और 3 मई को फ्रांस ने भी सार्डीनिया के पक्ष में आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी । फ्रांस और सार्डीनिया की संयुक्त सेनाओं ने 20 मई, 30 मई, 4 जून, को क्रमश: मांटेबेलो, पोलेस्टो और मेगेन्टा में आस्ट्रिया को हराया । कुछ ही दिन बाद मिलान पर अधिकार हो गया । 24 जून को उस संयुक्त दल ने सॉलफरीनों की शानदार विजय प्राप्त की । इस हार के परिणामस्वरूप आस्ट्रिया को लोम्बार्डी का प्रदेश छोड़ना पड़ा और आस्ट्रिया के सैनिकों को वेनीशिया के चार प्रसिद्ध किलों-मैन्शुआ, पेस्चीरा, वेरोना और लेग्नोना- में शरण लेनी पड़ी । उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वेनीशिया पर भी सार्डीनिया का अधिकार हो जायेगा किन्तु इसी समय नेपोलियन तृतीय ने सार्डीनिया से पूछे बिना युद्ध बन्द करने की घोषणा कर दी । उसके युद्ध से अलग होने के कुछ कारण थे- (1) फ्रांस को इस युद्ध में काफी हानि उठानी पड़ी थी और यदि युद्ध अधिक समय तक चलता तो और अधिक हानि की सम्भावना थी । (2) नेपोलियन ने महसूस किया कि फ्रांस की दक्षिण-पूर्वी सीमा पर एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना फ्रांस के लिए एक खतरा साबित हो सकता है ।

(3) फ्रांस के रोमन कैथोलिक लोग युद्ध जारी रखने के पक्ष में नहीं थे क्योंकि सार्डीनिया के विजय अभियान से पोप की स्थिति खतरे में पड़ सकती थी । (4) नेपोलियन इस बात से भिज्ञ था कि पराजय के बावजूद आस्ट्रिया की सैनिक शक्ति अब भी कमजोर नहीं थी । साथ ही प्रशा भी आस्ट्रिया के पक्ष में युद्ध लड़ने की तैयारी कर रहा था । उसने सेनाओं को सीमाओं पर भेजना प्रारंभ कर दिया था । नेपोलियन दोनों की संयुक्त सेना का मुकाबला करने की स्थिति में नहीं था ।

4.7.4.4 विलाफ्रेंका की विराम संधि (11 जुलाई, 1859):

नेपोलियन तृतीय ने 11 जुलाई, 1859 को विलाफ्रेंका नामक स्थान पर आस्ट्रिया के सम्राट फ्रांसिस जोसेफ से भेंट करके युद्ध-विराम की शर्तें तय करली । ये शर्तें अग्र-लिखित थीं- (1) लोम्बार्डी सार्डीनिया को दे दिया जाए परन्तु वेनीशिया आस्ट्रिया के पास ही बना रहेगा । (2) मध्य इटली के राज्य परमा, मोडेना ओर टस्कनी में वहाँ के शासकों को पुन: स्थापित करने का निर्णय लिया गया । (3) पोप के अधिकार में इटली का एक संघ बनाया जायेगा और वेनीशिया उक्त इटालियन संघ का एक भाग होगा ।

विलाफ्रेंका की संधि कवूर और इटली के लोगों पर वज्रपात थी । जब उनकी आशाएं पूर्ण होने को थी उसी समय उन पर तुषारापात हो गया । इस स्थिति के बारे में लिप्सन ने सही ही लिखा है, ' 'इस देश ने विजयोल्लास का प्याला अपने होठों लगाया ही था कि वह गिरकर चकनाचूर हो गया । " इस संधि से आस्ट्रिया की पूर्ण हार के बिना ही वेनीशिया में आस्ट्रिया का अधिकार बना रहा, जो इटली के लिए द्यातक था । आहत कवूर ने सम्राट विक्टर एमेनुअल को यह सलाह दी कि वह इस संधि को न माने और अकेला ही युद्ध करे । किन्तु विक्टर एमेनुअल ने आवेश में कोई निर्णय नहीं लिया । कवूर ने त्यागपत्र दे दिया । विक्टर एमेनुअल को भी इस संधि से निराशा हुई थी । किन्तु वह यह भी महसूस कर रहा था कि वियेना की व्यवस्था द्वारा इटली पर जो आस्ट्रिया का संरक्षण स्थापित किया गया था, वह समाप्त हो चुका था । वह अपने प्रतिभाशाली मंत्री की अपेक्षा इस बात को अधिक स्पष्ट रूप से देख सका, यद्यपि पीडमान्ट की- आशाएं पूरी नहीं हुई तथापि उसे लाभ अवश्य मिला था । वह यह मानता था कि, जब यूरोपीय शक्तियों ने लोम्बार्डी पर इटली का अधिकार मान लिया है, तो वेनीशिया पर भी इटली का नैतिक अधिकार एक प्रकार से स्वीकार कर लिया ।

विक्टर एमेनुअल ने आस्ट्रिया और फ्रांस के साथ मिलकर 10 नवम्बर, 1859 को ज्यूरिख़ की संधि पर हस्ताक्षर किये । ज्यूरिख की संधि द्वारा विलाफ्रेंका की विराम-संधि की पुष्टि की गयी । इससे लोम्बार्डी पर पीडमान्ट का विधिवत अधिकार स्थापित हो गया और इसी के साथ इटली के एकीकरण का प्रथम चरण पूरा हुआ ।

4.7.5 मध्य-इटली का विलय:

आस्ट्रिया-सार्डीनिया युद्ध के समय सारा इटली राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत था । इसी दौरान मध्य-इटली की जनता ने भी अपने शासकों के विरूद्ध विद्रोह कर दिया और परमा, मोडेना और टस्कनी के शासकों को हटा दिया । इन विद्रोहों के लिए नेशनल सोसायटी (1) पहले की भूमिका तैयार कर चुकी थी । जनता ने बोलोग्ना और रोमाग्ना से पोप के प्रतिनिधियों को निकाल दिया और इन स्थानों पर अस्थायी सरकारों का गठन कर लिया । यहां के देशभक्तों ने-

(1) नेशनल सोसायटी का जन्म 1857 में हुआ था । इसके द्वारा पीडमान्ट के राजा के नेतृत्व में इटली के एकीकरण का लक्ष्य स्वीकार किया गया । गैरीबाल्डी भी इस समिति का सदस्य बनाया था । कवूर का इस सोसायटी से गुप्त सम्पर्क था और वह इसके कार्यों को प्रोत्साहन देता रहा था । इस सोसायटी का नारा था- एकता, स्वतंत्रता और विक्टर एमेनुअल ।

एक विशाल सेना भी गठित कर ली थी । इन प्रदेशों ने प्रस्ताव पास कर यह निर्णय लिया कि उनके राज्य सार्डीनिया में मिला दिये जायें । सार्डीनिया की मध्य डचियों के उस आन्दोलनों के प्रति सहानुभूति थी । इसलिए विदेशी शक्तियों के रूख पर मध्य डचियों का भाग्य अवलम्बित था। इंग्लैण्ड की उदारवादी सरकार की इटली की आकांक्षाओं के साथ सहानुभूति थी । उसने अहस्तक्षेप की नीति को अपनाया और घोषणा की कि इटलीवासियों को अपने मामले स्वयं तय करने का अधिकार है । आस्ट्रिया और प्रशा चाहते थे कि ज्यूरिख़ की संधि के अनुसार मध्य इटली में पुराने शासकों को गद्दी पर बिठाया जाए । अत: अब सारी स्थिति फ्रांस के दृष्टिकोण पर निर्भर थी । इसी बीच जनवरी, 1860 में कावूर पुन: प्रधानमंत्री पद पर असीन हुआ और उसने नेपोलियन के साथ इस बात पर सौदा तय किया । उसने नेपोलियन को नीस और सेवाय का लालच दिया । अन्त में यह तय हुआ कि मध्य-इटली के राज्यों को सार्डीनिया में मिलाये जाने पर कोई आपत्ति नहीं करेगा, यदि उसे उसके बदले नीस और सेवाय के प्रांत मिलें । नेपोलियन ऐसा करके प्लाम्बियर्स समझौते के अंतर्गत दिये गये सहयोग का मूल्य प्राप्त करने का अभिलाषी था । इस लाभ को प्राप्त करके वह अपने देश वासियों के असंतोष को भी दूर करना चाहता था । मार्च, 1860 में मध्य इटली के राज्यों मे जनमत-संग्रह कराया गया, जो एक नया प्रयोग था । परमा, मोडेना, टस्कनी बोलोग्ना और पियाकेन्जा ने प्रचंड बहुमत से सार्डीनिया के साथ मिलने का निर्णय किया । नीस और सेवाय में भी जनता ने फ्रांस के साथ मिलने का मत दिया और वहाँ पर फ्रांस का अधिकार हो गया ।

इटली के हाथ से नीस और सेवाय निकल जाने की कटु आलोचना हुई । नीस गैरीबाल्डी की जन्मभूमि थी, अत: उसे इस घटना से भारी आघात लगा । उसने कवूर की आलोचना करते हुए कहा, ' 'तुमने मुझे अपनी ही मातृभूमि में विदेश बना दिया है । ' 'इंग्लैण्ड में सभी लोगों को फ्रांस द्वारा किया गया यह अपहरण अच्छा नहीं लगा क्योंकि इंग्लैण्ड यह नहीं चाहता था कि फ्रांस के प्रभाव में वृद्धि हों ।

कवूर की नीति के फलस्वरूप सार्डीनिया पीडमान्ट का क्षेत्रफल पहले से दुगुना हो गया था और अब वेनीशिया को छोड़कर समस्त उत्तरी इटली तथा मध्यवर्ती उचियों के एक इटालियन राज्य का निर्माण हो चुका था । सम्राट विक्टर एमेनुअल ने नवीन संघीय शासन के अन्तर्गत ट्यूरिन में संसद का उद्घाटन करते समय कहा था, ' 'अब इटलीवासियों के इटली का जन्म हुआ है ।' ' इस प्रकार यह इटली के एकीकरण 'का दूसरा चरण पूरा हो गया था ।

4.7.6 नेपल्स और सिसली का विलय:

इटली प्रायद्वीप के उत्तरी और मध्य भाग तो एक राजसत्ता के अधीन हो गये थे किन्तु अभी भी आधा प्रायद्वीप मिलना शेष था । नेपल्स, सिसली, वेनीशिया और रोम अभी इटली के बाहर थे । विलाफ्रेंका के विश्वासपात्र के बाद कावूर ने कहा था, ' 'यूरोपीय शक्तियों ने मुझे कूटनीति के द्वारा उत्तर की ओर से एकीकरण नहीं करने दिया । अब मुझे क्रान्ति का सहारा लेकर दक्षिण की ओर से इटली का एकीकरण करना होगा । " यह कावूर की नीति में परिस्थिति-जन्य परिवर्तन का द्योतक था । नेपल्स और सिसली के पिछले 40 वर्षो का इतिहास अत्याचारपूर्ण निरंकुशता का इतिहास था । मई 1859 में नेपल्स और सिसली के शासक

फर्डीनेन्ड द्वितीय की मृत्यु हो गयी और उसके स्थान पर फ्रांसिस द्वितीय गद्दी पर बैठा । वह एक अयोग्य, अनुभवहीन और निर्बल शासक था । फ्रांसिस द्वितीय ने कुछ सुधार करने का प्रयत्न किया किन्तु उससे जनता का असन्तोष कम नहीं हुआ । सार्डीनिया और आस्ट्रिया युद्ध और केन्द्रीय इटली में जो विद्रोह हुए, उन सबका प्रभाव नेपल्स और सिसली पर भी पड़ा । इसके अतिरिक्त वहाँ के शासक के विदेशी होने के कारण भी भारी असंतोष था । सिसली में नेशनल सोसायटी का प्रचार कार्य तेजी से चल रहा था । सोसायटी का सचिव, ला फारीना सिसली का ही निवासी था और वह सिसली में विद्रोह करना चाहता था । मेजिनी ने भी विद्रोह को प्रोत्साहन दिया और उसके एक समर्थक फ्रांसिस्को क्रिस्पी ने विद्रोह की योजना तैयार की, किन्तु नेपल्स और सिसली के विद्रोह को सफल बनाने का श्रेय गैरीबाल्डी को जाता है ।

4.7.6.1 गैरीबाल्डी (1807-1882):

ग्यूसेप गैरीबाल्डी का जन्म 1807 में नीस नामक नगर में हुआ था । उसके पिता छोटे व्यापारिक जहाज के एक अधिकारी थे । उसके पिता चाहते थे कि गैरीबाल्डी को उच्च शिक्षा मिले । लेकिन गैरीबाल्डी का मन पढ़ने में नहीं लगा । वह केवल इतना पढ़ सका कि पुस्तकें पढ़ सके और अपनी स्वतंत्र एवं साहसिक प्रवृति को संतुष्ट कर सके । 10 वर्ष तक गैरीबाल्डी व्यापारिक जहाजों पर पर्यटन करता रहा । इस कारण उसे भू-मध्य-सागर का पर्याप्त अनुभव हो गया था । इन्हीं यात्राओं में उसका इटली के देशभक्तों ओर निवासियों से परिचय हुआ और उनके सम्पर्क से उसके मन में इटली की स्वतंत्रता की भावना जागृत हुई । वह इटली से उतना ही प्रेम करता था जितना कोई आध्यात्मिक सन्यासी ईश्वर से करता है । कुछ समय पश्चात् वह मेजिनी के सम्पर्क में आया और उसके उच्चदर्शी से प्रभावित होकर युवा इटली का सदस्य बन गया । 1833 ई0 में उसने मेजिनी द्वारा संगठित नौ-सैनिक-षड्यंत्र में भाग लिया । वह पकड़ा गया और उसे मृत्युदण्ड की सजा दी गयी लेकिन वह किसी तरह भागकर दक्षिण अमेरिका चला गया । चौदह वर्षो तक वह दक्षिण अमेरिका के क्रान्तिकारियों से सहयोग करता रहा । इस समय में उसने छापामार युद्ध का अच्छा प्रशिक्षण प्राप्त किया, जो आगे चलकर इटली के एकीकरण के युद्धों में सहायक हुआ । 1848 की क्रान्ति सूचना पाकर वह पुन: इटली लौट आया और उसने चार्ल्स एल्बर्ट के नेतृत्व में आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध में भाग लिया । इसके पश्चात् वह रोम में मेजिनी के गणतंत्र की सहायता करने पहुँचा । उसने फ्रांसिसी सेनाओं के विरूद्ध रोम की रक्षा का अन्त तक प्रयत्न किया किन्तु वह सफल न हो सका और किसी प्रकार बचकर टस्कनी पहुँचा । टस्कनी से वह पीडमान्ट आया और वहाँ से पुन: देश छोड़कर अमेरिका चला गया । अमेरिका में वह छह वर्ष रहा और वहाँ से काफी धन कमाकर 1854 में पुन: इटली लौट आया । इटली आने पर उसने सार्डीनिया के निकट के प्रीरा नामक टापू खरीदा और वहाँ एक स्वतंत्र कृषक के रूप में रहने लगा । 1856 में उसका कावूर से प्रथम सम्पर्क हुआ । वह काल के विचारों से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने 1857 में सार्डीनिया के शासक को अपनी सेवाएं अर्पित कर दी । गैरबाल्डी के जीवन की यह एक महत्वपूर्ण घटना थी क्योंकि गणतंत्रवादी अब वैधानिक राजतंत्रवाद का समर्थक बन गया था । उसी के कारण सार्डीनिया के गणतंत्रवाद का समर्थक बन गया था । उसी के कारण सार्डीनिया के गणतत्रवादियों

और राजतंत्रवादियों में समझौता हो सका । केटलबी ने लिखा है, ' 'यदि यह समझौता नहीं होता और दोनों के मतभेद बने रहते तो वे एक दूसरे को नष्ट करने का प्रयत्न करते और इटली की एकता का प्रयत्न विफल हो जाता । " इटली के एकीकरण में गैरीबाल्डी का वास्तविक योगदान 1860 से आरंभ होता है ।

4.7.6.2 सिसली में विद्रोह:

1859 के पतझड़ में सिसली के विद्रोह का श्रीगणेश हुआ। यहाँ की जनता बूर्बो राजाओं के निरंकुश शासन के विरूद्ध थी । यहाँ के देशभक्तों ने गैरीबाल्डी से प्रार्थना की कि वह उनका नेतृत्व करें । गैरीबाल्डी उनकी सहायता के लिए तैयार हो गया । किन्तु उसने यह शर्त रखी थी कि वे इटली और विक्टर एमेनुअल के नाम पर विद्रोह करें । 4 अप्रैल, 1860 को मसीना के निकट विद्रोह हो गया । यद्यपि आरंभ में विद्रोहियों को कुछ सफलता मिली । लेकिन फ्रांसीसी सेनाओं ने इस उपद्रव को क्रूरता से दबा दिया । इस घटना के बाद गैरीबाल्डी सिसली की मदद को तैयार हो गया । कवूर भी सिसली वालों की मदद करना चाहता था लेकिन वह खुलेआम ऐसा नहीं कर सकता था क्योंकि ऐसा करना अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विरूद्ध था । इससे नेपल्स और सार्डीनिया के मध्य युद्ध छिड़ सकता था । सम्भव था कि यूरोपीय राज्य इसमें हस्तक्षेप करने लगते । कवूर यह भी जानता था कि उत्तरी इटली का जनमत सिसली के विद्रोह का समर्थक है । अत: वह जनता की. भावना के विरूद्ध नहीं जा सकता था । कवूर को यह सुनहरा अवसर प्रतीत हो रहा था । बाहरी तौर पर वह अपनी तटस्थता का प्रदर्शन करता रहा किन्तु गुप्तरूप से उसने गैरीबाल्डी और सिसली की मदद की । 5 मई, 1860 को गैरीबाल्डी ने अपने प्रसिद्ध एक हजार लाल कुर्ती वाले स्वयं सेवकों के साथ जेनोवा से सिसली की ओर प्रस्थान किया । 11 मई को गैरीबाल्डी सिसली द्वीप के पश्चिमी किनारे पर मार्सेला पहुंच गया । वहाँ पर इंग्लैण्ड की सहायता से गैरीबाल्डी के सैनिक सिसली पर उतर गये । 15 मई को केल्टाफीमी नामक स्थान पर उसने नेपल्स की सेनाओं को परास्त किया । इसके बाद उसने पैलरमो पर अधिकार कर लिया । जून के अन्त तक सिसली पर गैरीबाल्डी का अधिकार हो गया और अपने को सिसली का अधिनायक घोषित किया । अपने अदम्य उत्साह, कौशल और राजा से असंतुष्ट जनता के अपूर्व सहयोग के कारण गैरीबाल्डी को अभूतपूर्व सफलता मिली ।

गैरीबाल्डी की शानदार सफलताओं से जो परिस्थिति बनी उसके कारण कवूर के समक्ष कई कठिनाइयाँ पैदा हो गयी । यह प्राय: निश्चित प्रतीत हो रहा था कि विजय के उत्साह से वह नेपल्स पर आक्रमण करेगा । यह भी सम्भव था कि वह और आगे बढ़ने का प्रयास करता तथा पोप की रियासतों पर आक्रमण करके रोम को लेने का प्रयत्न करता । रोम पर आक्रमण की स्थिति में -फ्रांस के हस्तक्षेप की पूर्ण सम्भावना थी । कवूर को यह आशंका थी कि गैरीबाल्डी, मेजिनी के प्रभाव के कारण, विजित प्रदेशों में गणतंत्र स्थापित न कर दे । कवूर यह चाहता था कि गैरीबाल्डी को जो सफलता मिली है वह इटली के हित में हो । वह यह नहीं चाहता था कि असमय रोम पर आक्रमण करने पर यूरोपीय शक्तियाँ विशेषकर फ्रांस और आस्ट्रिया इटली के मामलों में हस्तक्षेप करें । अत: कवूर बड़ी सावधानी से कदम उठा रहा था ।

कवूर ने गैरीबाल्डी को संदेश भेजा कि वह सिसली को उत्तरी इटली में मिला दे किन्तु गैरीबाल्डी तैयार नहीं हुआ । अब कवूर ने गैरीबाल्डी की महत्वाकांक्षाओं को नियंत्रित रखने एवं गणतंत्र के विरूद्ध जनमत तैयार करने के उद्देश्य से कुछ चुने हुए कार्यकर्ताओं को सिसली और नेपल्स भेजा । उन्होंने जनमत को नेपल्स के उत्तरी इटली के साथ मिलाये जाने के पक्ष में तैयार कर लिया । कवूर ने एडमिरल पर्सानों को भेजकर नेपल्स के जहाजी बेड़ों को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया । ' 'कवूर का यह व्यवहार नैतिक नहीं था, किन्तु यह मानना पड़ेगा कि परिस्थितिवश ऐसा मार्ग अपनाना पड़ा था । उसने जो कुछ भी किया उसमें उसका स्वार्थ नहीं था । ' 'कवूर ने स्वंय कहा था, ' 'यदि उन कार्यो को, जो इटली के लिए कर रहे हैं, अपने स्वार्थ के लिए करते तो अवश्य ही ठग और चोर कहे जाते ।' '

4.7.6.3 नेपल्स पर अधिकार:

थोड़ी तैयारी और संगठन के बाद गैरीबाल्डी ने अपनी सेना के साथ 19 अगस्त, 1860 को नेपल्स पर हमला कर दिया । पहले से उसकी स्थिति बेहतर थी क्योंकि उसे अपार जन-समूह का समर्थन प्राप्त था और सफलता से उसकी सेना का मनोबल ऊँचा था । लेकिन विरोध में एक लाख की सेना खड़ी थी जिसमें कुछ असंतुष्ट सैनिक भी थे । असंतुष्ट सेना हमेशा नुकसान पहुँचाती रही है । ये सैनिक गैरीबाल्डी के साथ मिलने लगे । नेपोलियन तृतीय गैरीबाल्डी की प्रगति को रोकना चाहता था, क्योंकि वह इटली को शक्तिशाली राज्य नहीं होने देना चाहता था । उसने इंग्लैण्ड को यह प्रस्ताव रखा कि आंग्ल-फ्रांसीसी जहाजी बेड़ा मिलकर मेसीना के तंग जल मार्ग पर गैरीबाल्डी को रोके और उसे सिसली से उत्तर की ओर न जाने दे । किन्तु ग्रेट ब्रिटेन ने उसे अस्वीकृत कर दिया क्योंकि वह किसी अन्य देश के मामलों में हस्तक्षेप करने को तैयार न था । इस प्रकार ब्रिटेन की सहानुभूतिपूर्ण नीति के कारण गैरीबाल्डी को नेपल्स में आगे बढ़ने का अवसर मिल गया । फ्रांस अकेला कुछ न कर सका ।

फ्रांसिस द्वितीय द्वारा गैरीबाल्डी को रोकने के प्रयत्न विफल हुए और उसके सेनापति विद्रोही हो गये । ऐसी स्थिति में शासक नेपल्स छोड़कर गेटा भाग गया । गैरीबाल्डी बिना किसी प्रतिरोध के आगे बढ़ता ही चला गया । लोगों ने उसका शानदार स्वागत किया और उसे दूसरा मसीहा माना । गैरीबाल्डी ने स्वयं को नेपल्स का अधिनायक घोषित किया और मेजिनी के समर्थक बर्तानी को राज्य का मंत्री नियुक्त किया ।

4.7.6.4 कवूर द्वारा पोप की रियासतों पर आक्रमण:

गैरीबाल्डी का उत्साह चरम पर था । उसने घोषणा की कि अब वह वेनिश और फिर रोम पर अधिकार करेगा । उसने इस ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया कि वेनिश और रोम पर आक्रमण करने से आस्ट्रिया और फ्रांस के साथ युद्ध हो सकता है । वह किसी प्रकार के समझौते के लिए तैयार न था । गैरीबाल्डी को न तो कायर बनना पसन्द था और न ही वह विक्टर एवं कवूर की दुरंगी चाल पसन्द करता था । ' 'वह नहीं चाहता था कि इटली के देशभक्त शक्ति हथियाने के लालच में हीनता का भाव ग्रहण करे । वह जानता था कि ऐसे स्वतंत्र लोगों की इच्छाओं को सदा के लिए सब कुछ बलिदान करने को उतावले रहते हैं । " गैरीबाल्डी के इरादों

के कारण कवूर की स्थिति काफी जटिल हो गयी, किन्तु कवूर ने भी गैरीबाल्डी के प्रयत्न को विफल बनाने का दृढ़ निश्चय कर लिया । इसी समय कवूर ने कहा था, ' 'मुझे इटली की विदेशियों, अनिष्टकारी सिद्धान्तों (गणतंत्रवादी सिद्धान्त), पागलों (गैरीबाल्डी) से रक्षा करनी है । ' 'कवूर ने यह निश्चय किया कि गैरीबाल्डी की किसी कार्यवाही से पहले ही कुछ ठोस कदम उठा लिये जाए । पीडमान्ट की सेना द्वारा पोप की रियासतों पर आक्रमण करा दिया जाए और इस प्रकार गैरीबाल्डी सेरोम की रक्षा की जाए ।

कवूर ने नेपोलियन की प्रतिक्रिया जानने के लिए फ्रांस के दरबार में अपने दूत भेजे । उनके द्वारा यह मालूम कराया गया कि यदि पीडमान्ट अम्ब्रिया और मार्चेस पर अधिकार कर ले तो नेपोलियन की प्रतिक्रिया क्या होगी? नेपोलियन के अनुकूल प्रतिक्रिया व्यक्त की । उसने पोप की रियासतों पर आक्रमण करने की स्वीकृति इस शर्त पर दी कि रोम पर किसी प्रकार का आक्रमण नहीं होना चाहिये । अब कवूर के लिए रास्ता साफ था । पोप की एक साधारण सी विरोधी चाल पर अप्रसन्न होकर उसी को युद्ध का बहाना बनाकर कावूर ने पोप की रियासतों पर 11 सितम्बर, 1860 को आक्रमण की आज्ञा दे दी । 29 सितम्बर को आम्ब्रिया और मार्चेस पर सार्डीनिया का अधिकार हो गया । इधर गैरीबाल्डी भी रोम की ओर आगे बढ़ रहा था किन्तु रास्ते में नेपल्स की सेनाओं ने उसका रास्ता रोक दिया, जिससे कई दिनों तक वह आगे नहीं बढ़ सका । कावूर ने इस समय का पूरा फायदा उठाया । दूसरी और इटली की संसद के निर्णयानुसार नेपल्स, सिसली व पोप के जीते प्रदेशों में जनमत संग्रह करवाया । अक्टूबर के अन्त तक सभी क्षेत्रों की जनता ने उत्तरी इटली के राज्य में सम्मिलित होने का निर्णय किया । इससे कवूर की स्थिति मजबूत हो गयी ।

दूसरी ओर गैरीबाल्डी फ्रांसिस द्वितीय के अधीन गैटा और केपुआ के किलों पर अधिकार नहीं कर पाया और उसे यह विश्वास हो गया कि इटली की सेना की सहायता के बिनवा सफल नहीं हो सकेगा । इसी समय विक्टर एमेनुअल स्वयं सेना लेकर नेपल्स की ओर बढ़ा । टिआनो नामक स्थान पर गैरीबाल्डी और विक्टर एमेनुअल की भेंट हुई । गैरीबाल्डी ने उसको इटली के शासक के रूप में स्वीकार किया । इसके पश्चात् गैरीबाल्डी ने अपनी सेना और समस्त अधिकार इटली के शासक को समर्पित कर दिये । विक्टर एमेनुअल ने 7 नवम्बर, 1860 को गैरीबाल्डी के साथ नेपल्स में प्रवेश किया । इसके पश्चात नेपल्स के राजमहल में विक्टर एमेनुअल को संयुक्त इटली का शासक घोषित किया गया ।

18 फरवरी, 1861 को ट्यूरिन में इटली की प्रथम संसद की बैठक हुई, जिसमें वेनीशिया और रोम को छोड़कर समस्त इटली के प्रतिनिधि थे । विक्टर एमेनुअल द्वितीय को विधिवत इटली का शासक स्वीकार किया गया । इस प्रकार सार्डीनिया का राज्य इटली का राज्य हो गया । संसद ने कवूर का यह प्रस्ताव भी स्वीकार कर लिया कि रोम इटली की राजधानी होनी चाहिये ।

4.7.6.5 गैरीबाल्डी की महानता:

इटली को मुक्त कराने में गैरीबाल्डी का योगदान अविस्मरणीय है । विक्टर एमेनुअल के इटली का राजा घोषित होने के पश्चात् गैरीबाल्डी को सम्मानित करने और उपाधियाँ देने का

प्रस्ताव रखा गया । लेकिन उसने आदरपूर्वक उपाधियों और पुरस्कारों को लेने से इन्कार कर दिया । उसने कहा, ' 'देश सेवा स्वयं एक पुरस्कार है, मुझे कोई दूसरी चीज नहीं चाहिये । स्वतंत्र इटली अमर हो ।' ' इटली के इस महान योद्धा के वीरतापूर्ण कार्यो का यही यशस्वी अन्त था । वह अपने खेतों में बोने के लिए बीजों का एक थैला लेकर अपने द्वीप के-प्रीरा चला गया । जिस त्याग, देशभक्ति और वीरता का परिचय गैरीबाल्डी ने दिया उसका उदाहरण विश्व-इतिहास में मिलना कठिन है । इतिहासकार केटलबी ने लिखा है, ' 'इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं कि वह इटली को मुक्त कराने वाला ऐसा परमवीर था जिसने इतिहास को वीर-काव्य बना डाला, राजनीति को साहसिक खेल मात्र समझा । "

4.7.7 कवूर का मूल्यांकन:

6 जून, 1861 को कवूर की मृत्यु हो गयी और यह महान् देशभक्त सम्पूर्ण इटली का एकीकरण देखने को जीवित नहीं रहा । एलीसन फिलिप्स का यह कहना ठीक ही है, ' 'एक राष्ट्र के रूप में इटली कवूर की देन हे । " कवूर ने राष्ट्रीय मुक्ति के कार्य को दलीय भावना से मुक्त रखा, विचारहीन द्याड्यन्त्रों से रक्षा की और क्रान्ति तथा प्रतिक्रिया की चट्टानों के बीच से उसकी नौका खेकर उसे संगठित शक्ति, ध्वज, शासन और विदेशी मित्र प्रदान किये । केटलबी के इस मत से हम सहमत हैं, ' 'कवूर के बिना मेजिनी का आदर्शवाद और गैरीबाल्डी की वीरता निहफल लड़ाई और निराशा के इतिहास में एक अध्याय और बढ़ा देते । वास्तव में कवूर के द्वारा ही इटली का एकीकरण सम्भव हु आ ।' '

कवूर एक कुशल राजनीतिज्ञ था । कवूर के इतिहास के मंच पर आने से पूर्व इटली को विदेशी प्रभाव से मुक्त करने के कई प्रयत्न हु ए थे, परन्तु वे सब निकल रहे थे । कवूर प्रथम व्यक्ति था, जिसने इटली की समस्या के सभी पहलुओं को देखा । समस्त देशवासियों में राष्ट्रीय एकता की भावना तो मेजिनी, गैरीबाल्डी आदि भर चुके थे और उनमें राष्ट्र को स्वतंत्र कराने की उत्कृष्ट अभिलाषा भी उत्पन्न कर दी थी, परन्तु राष्ट्रीय स्वतंत्रता का महायज्ञ कैसे सम्पन्न हो सकता था? यह वे नहीं जानते थे । गुप्त-षड़न्त्र और विद्रोह ही उनके उपाय थे । कवूर ने इन उपायों की व्यर्थता को देखा और समस्या के समाधान के लिए यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया । उसने एक कुशल राजनेता की भ भांति यह जान लिया कि इटली की समस्याओं का समाधान अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, यूरोपीय कूटनीति तथा युद्ध द्वारा ही हो सकेगा ।

वह एक कुशल कूटनीतिज्ञ भी था । सार्डीनिया जैसे छोटे राज्य के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहानुभूति और सहयोग पाना एक दुष्कर कार्य था किन्तु कवूर की कूटनीति ने इसे सम्भव बनाया । क्रीमिया के युद्ध में सार्डीनिया का भाग लेना कवूर की एक कूटनीतिक पहल थी । पैरिस के शान्ति-सम्मेलन में इटली के प्रश्न को प्रस्तुत कर इसे यूरोपीय प्रश्न बना दिया । मध्य डचियों के मामले में जिस गुप्त प्रचार को कवूर ने बढ़ावा दिया, उसने उसे एक श्रेष्ठ कूटनीतिज्ञ की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया । कवूर ने बड़ी बुद्धिमानी से सम्राट को सेना के साथ भेजकर गैरीबाल्डी के जोश पर अंकुश लगाया ।

4.7.8 इटली के एकीकरण का अन्तिम चरण:

रोम और वेनीशिया को छोड़कर इटली का एकीकरण लगभग पूर्ण हो चुका था । रोम और वेनीशिया का भाग्य अब भी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के साथ जुड़ा था । इटली का शेष एकीकरण प्रशा के कारण हुआ । कवूर के बाद विक्टर एमेनुअल ने इन राज्यों को इटली के अधीन लाने में जल्दबाजी नहीं की । उसने धैर्य के साथ उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा की । कवूर के बाद इटली की राजनीतिक अस्थिरता और खराब आर्थिक स्थिति के कारण विक्टर एमेनुअल इटली के लिए कुछ समय तक कोई कदम उठा न सका ।

4.7.8.1 वेनीशिया की प्राप्ति:

इटली के ऐसे अवसर की तलाश में था, जब वह वेनीशिया को आस्ट्रिया के प्रभाव से मुक्त कर सके। यह अवसर उसे 1866 ई0 में मिला । प्रशा का चांसलर बिस्मार्क आस्ट्रिया के विरूद्ध भावी युद्ध की तैयारी कर रहा था क्योंकि आस्ट्रिया इटली के एकीकरण के समान जर्मनी के एकीकरण में भी बाधक था । बिस्मार्क आस्ट्रिया के विरूद्ध इटली का सहयोग प्राप्त करना चाहता था । अप्रैल, 1866 में दोनों देशों के बीच एक संधि हुई जिसके अनुसार प्रशा युद्ध में इटली का सहयोग प्राप्त करना चाहता था । अप्रैल, 1866 को प्रशा ने आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी । विक्टर एमेनुअल ने दूरदर्शिता दिखायी और आस्ट्रिया की सेनाएं बंट गयी । इटली ने युद्ध में बड़े उत्साह से भाग लिया था किन्तु उसे आस्ट्रिया से कई स्थानों पर हारना पड़ा । इसके विपरीत 3 जुलाई, 1866 को प्रशा ने सेडोवा के युद्ध में आस्ट्रिया को निर्णायक पराजय देने में सफलता प्राप्त की । बिस्मार्क ने प्राग की संधि द्वारा वेनीशिया इटली को दिलवा दिया । जनमत संग्रह के द्वारा वेनीशिया की जनता ने इटली में मिलना स्वीकार कर लिया ।

4.7.8.2 रोम की प्राप्ति:

रोम को छोड़कर सम्पूर्ण इटली का एकीकरण 1866 में पूर्ण हो चुका था । रोम के बिना इटली की स्थिति उसी प्रकार थी जैसे हृदय के बिना शरीर । रोम पोप के अधीन था और रोम में फ़्रांसीसी सेनाएं पोप. की रहा के लिए मौजूद थी । गैरीबाल्डी ने 1867 में रोम को लेने का असफल प्रयास किया था । अत: इटली के राजनीतिज्ञ जानते थे कि फ्रांस के सहयोग के बिना उस पर अधिकार करना कठिन था ।

रोम की प्राप्ति का कार्य तब पूर्ण हुआ, जब प्रशा और फ्रांस के बीच 1870 में युद्ध हुआ । इस युद्ध में नेपोलिय तृतीय को प्रशा के विरूद्ध अपनी पूरी ताकत लगानी पड़ी । अत: उसने रोम से भी अपनी सेना बुला ली । फ्रांस को प्रशा से उलझा हुआ देखकर विक्टर एमेनुअल ने रोम पर आक्रमण कर दिया । 20 सितम्बर, 1870 को रोम पर इटली का अधिकार हो गया । अदनन्तर रोम में जनमत संग्रह कराया गया जिसमें 40 हजार से अधिक मत विक्टर एमेनुअल के पक्ष में पड़े, जबकि पोप पक्ष में केवल 46 मत पड़े । परिणामस्वरूप रोम इटली में शामिल कर लिया गया, और उसे संयुक्त इटली की राजधानी बनाया गया । 2 जून, 1871 को सम्राट ने इटली की इस राजधानी में प्रवेश किया ।

इस प्रकार एक लम्बे संघर्ष के बाद विभिन्न बाधाओं को पार करते हुए, इटली ने अपना एकीकरण पूरा किया और वह एक राष्ट्र के रूप में अवतीर्ण हुआ । वह अब एक 'भौगोलिक अभिव्यक्ति' मात्र नहीं रहा अपितु एक स्वतंत्र राष्ट्र बन गया ।

4.8 इकाई सारांश एवं अभ्यासार्थ प्रश्न

सारांश:

आज इटली की शक्तिशाली राष्ट्रों में गणना की जाती है किन्तु एकीकरण से पूर्व यूरोप की राजनीति ने उसका विशेष महत्व नहीं था । 19 वीं शताब्दी में इटलीवासियों ने अपनी एकता और स्वाधीनता के लिए दीर्घकाल तक संघर्ष किया उसकी विवेचना इतिहास के विद्यार्थियों के लिए आवश्यक एवं रोचक है । 1848 से पूर्व इटली ने एकीकरण की बाधाओं से तो साक्षात्कार कर लिया था किंतु उनको लांघना सहज नहीं था । 1859- 1870 के मध्य इटली एक हो गया- फ्रांस ने सहायता दी, जनता ने विद्रोह कर दिया तथा प्रशा के युद्धों से अनुकूल अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति उत्पन्न हुई उससे यही लगता था कि कार्य आसान था किंतु वस्तुस्थिति इसके विपरीत थी । इटली के एकीकरण के पीछे आधे शताब्दी के प्रयासों व असफलताएं तथा त्याग एवं कष्टों की कहानी है और एकीकरण के दौर में भी अनेक प्रच्छन्न बाधाओं का सामना कवूर को करना पड़ा । राजनीतिक शतरंज की चालों में अनेक बार ऐसी परिस्थितियाँ आई-चाहे वह नेपोलियन के विश्वासघात के रूप में हो या गैरीबाल्डी के दुस्साहिक प्रयासों के रूप में जबकि एक मामूली गलत चाल भी मेहनत पर पानी फेर देती; अत: एकीकरण आसान नहीं अपितु त्याग एवं परिश्रम का फल था जो मेजिनी के नैतिक बल, गैरीबाल्डी की तलवार, कवूर की कूटनीति तथा विक्टर एमेनुअल की समझदारी एवं व्यावहारिक बुद्धि तथा असंख्य देशभक्तों के बलिदार से प्रस्फुटित हुआ था ।

अभ्यासार्थ प्रश्न:

1. कवूर एवं विक्टर एमेनुअल के नेतृत्व में इटली के एकीकरण के आन्दोलन का वर्णन करो ।
2. 'नेपोलियन तृतीय ने इटली के एकीकरण में निर्णायक भूमिका निभाई'-विवेचना कीजिए
3. गैरीबाल्डी केवल विचारों का व्यक्ति नहीं था बल्कि कामों का यह बात इटली के इस महान् देशभक्त के बारे में कहाँ तक ठीक है ।
4. 'क्रीमिया के कीचड़ से नवीन इटली का निर्माण होगा'-कवूर । विवेचना करो ।
5. इटली के एकीकरण के विभिन्न सोपानों का विवेचन कीजिए ।

4.9 संदर्भ अध्ययन सामग्री:

(हिन्दी)

केटलबी, सी0डी0एम : आधुनिक काल का इतिहास

चौहान, देवेन्द्रसिंह : यूरोप का इतिहास (1815-1919)

लिप्सन, ई0 : 19 वीं तथा 20 वीं सदी के यूरोप
ग्राण्ट एण्ड टेम्परले : यूरोप का इतिहास (19 वीं तथा 20 वीं शताब्दी)

(English)

Fisher, H.A.L.: A History of Europe
Garibalei: Autobiography
King, Bolton: History of Italian unity
Marroit : Makers of Modern Italy
Orisi, P: Cavour
Thomson, David: Europe since Napoleon

इकाई-5
जर्मनी का एकीकरण

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 पृष्ठभूमि
5.2 जर्मनी के एकीकरण में बाधक तत्व
5.3 संयुक्त जर्मनी के निर्माण में मन्द गति के कारण
5.4 एकीकरण के प्रयास में सहायक तत्व
5.4.1 बौद्धिक आन्दोलन
5.4.2 औद्योगिक क्षेत्र में सहयोग
5.4.3 फ्रांस की 1848 की क्रांति
5.4.4 जर्मनी का औद्योगिक विकास
5.5 अनुभागीय सारांश एवं अभ्यासार्थ प्रश्न
5.6 प्रशा का शासक विलियम प्रथम एवं उसके सैनिक सुधार
5.7 जर्मनी के एकीकरण का सूत्रधार-बिस्मार्क
5.8 चांसलर बनने के बाद बिस्मार्क के उद्देश्य एवं योजना
5.9 एकीकरण की और
5.9.1 प्रथम चरण- डेन्मार्क से युद्ध एवं गेस्टाइन समझौता
5.9.2 द्वितीय चरण- आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध एवं प्राग की सन्धि
5.9.3 तृतीय चरण- फैंको-प्रशियन युद्ध एवं फैंकफर्ट की सन्धि
5.10 इकाई सारांश एवं अभ्यासार्थ प्रश्न
5.11 संदर्भ अध्ययन सामग्री

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य जर्मनी की प्रमुख ऐतिहासिक, आर्थिक एवं राजनयिक प्रक्रियाओं से आपको भली भाँति परिचित कराना है, जिन्होंने जर्मनी के एकीकरण को पूर्णता प्रदान की । इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप जर्मनी के एकीकरण की गुत्थियों को समझ सकेंगे । प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप अधोलिखित बिन्दुओं को समझ सकेंगे-

फ्रांस की क्रांति एवं नेपोलियन बोनापार्ट ने किस तरह जर्मनी के एकीकरण की आधारशिला रखी ।

आर्थिक कारकों सहित वे कारक जिन्होंने जर्मनी के एकीकरण में परोक्ष रूप से योगदान देकर 'प्रतिक्रिया के युग' के प्रभाव को कमजोर बनाया तथा एकीकरण के प्रयास को क्षीण नहीं होने दिया ।

वे सैनिक सुधार जिनके बिना जर्मनी के रंगमंच पर बिस्मार्क की जरूरत न पड़ती ।

बिस्मार्क के विभिन्न कूटनीतिज्ञ पूर्ण कार्य, जिनके बिना संयुक्त जर्मनी का सपना अधूरा रहता ।

जर्मनी के एकीकरण के सूत्रधार बिस्मार्क ने किस तरह 'रक्त और लोह' की नीति के अन्तर्गत एकीकरण के प्रयास की श्रृंखला में लगातार तीन युद्धों में विजयश्री प्राप्त की और संयुक्त जर्मनी का निर्माण किया ।

5.1 पृष्ठभूमि-

फ्रांस की राज्यक्रांति ने जिन नई शक्तियों एवं प्रवृत्तियों को जन्म दिया उनमें राष्ट्रीयता की भावना प्रमुख है । उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में एक ओर राष्ट्रीयता, उदारवाद तथा क्रांति की प्रगतिशील शक्तियाँ काम करती रही; दूसरी ओर, निरंकुशता, स्थितिपालकता आदि एकाधिक नामों से पुकारी जाने वाली प्रतिक्रिया की शक्ति उनका दमन करने का प्रयास करती रही । यह एक प्रकार का संक्रमण काल था । इस युग में द्वन्द चलता रहा किंतु राष्ट्रीयता की भावना ने युग को आगे बढ़ाया । इसी राष्ट्रीयता की भावना ने जर्मनी को एक दिशा दी । निःसन्देह नेपोलियन वह प्रथम व्यक्ति था जिसने अप्रत्यक्ष रूप से जर्मनी में राष्ट्रीयता की भावना का बीजारोपण किया था । यह स्मरणीय है कि फ्रांसीसी क्रांति से पहले जर्मनी यूरोपीय देशों में राजनीतिक दृष्टि से सर्वाधिक विभक्त देश था जिसमें लगभग 300 राज्य थे । नेपोलियन ने जर्मनी में 39 राज्यों का एक संघ बनाकर राष्ट्रीय एकता का मार्ग प्रशस्त किया यह इतिहास की विचित्रता है कि नेपोलियन बोनापार्ट ने वर्तमान जर्मनी का निर्माण किया । ' 'अपनी रचनात्मक राजनीति के कारण तो सीधे तरीके से; और उसके शासन के विरोध के कारण जो विरोध उत्पन्न हुआ उससे उल्टे तरीके से, उसके द्वारा संयुक्त जर्मनी का निर्माण हुआ और जर्मन साम्राज्य की नींव पड़ी । जर्मनी का संयुक्त होना कोई साधारण घटना नहीं थी । इटली के एकीकरण के समान यह भी उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोपीय इतिहास की प्रमुख घटना थी । एकीकरण के बाद जर्मनी यूरोप की एक मजबूत शक्ति के रूप में उठा । वहाँ थोड़े ही समय में अत्यधिक उद्योगीकरण हुआ जिसके बाद वह भी उपनिवेशों की छीना झपटी में शामिल हो गया । जर्मनी के आधारीकरण के बाद वह ऐसी दौड़ में शामिल हुआ जिसका दुःखद अंत रहा ।

वियेना कांग्रेस (1815 ई0) ने जर्मन राज्यों के एकीकरण का विरोध किया लेकिन तब तक राष्ट्रीयता जड़ पकड़ चुकी थी । जर्मन क्षेत्र में नजदीक होने की तड़प बढ़ती जा रही थी किंतु अभी एकीकरण की बात कोसों दूर थी । इस समाप्ति की भावना के पीछे आर्थिक कारण भी थे । जर्मनी में आर्थिक विकास हो रहा था और व्यापक संगठन के बिना पूरा आर्थिक लाभ उठाना राज्यों के लिए सम्भव नहीं था । इसलिए बुजुर्आ ताकतों ने जनसमर्थन के सहारे निकट आने का कम शुरू कर दिया, दूसरी तरफ प्रतिक्रियावादी युग के प्रतीक आस्ट्रिया के मेटरनिख ने कई यूरोपीय शासकों को साथ लेकर किसी भी परिवर्तन की आकांक्षा का दमन शुरू किया ।

वियेना कांग्रेस ने जर्मन राज्यों के एकीकरण का विरोध करते हुए उसे एक शक्तिहीन संघ राज्य के रूप में आस्ट्रिया के प्रभाव में रख दिया । आस्ट्रिया को इस संघ का अध्यक्ष बनाया गया । इस समझौते के अन्तर्गत किसी भी शासक को जर्मन सम्राट का पद नहीं दिया गया । जर्मनी में ऐसी कोई केन्द्रीय संघीय संस्था न थी जो राज्यों की शक्ति पर नियंत्रण कर

पाती । जर्मनी की संघीय डाइट एक समझौता करने वाली संस्था मात्र साबित हुई । इसमें जर्मन रियासतों के शासकों द्वारा मनोनीत प्रतिनिधि ही शामिल हो सकते थे । यह संघीय डाइट आस्ट्रिया के प्रभाव तथा आस्ट्रिया व प्रशा की पारस्परिक ईर्ष्या के कारण कोई निर्णायक कार्यवाही नहीं' कर सकती थी । इस प्रकार वियेना समझोते के अन्तर्गत जर्मनी के प्रशासन के लिए की गयी व्यवस्था अनुपयोगी और व्यर्थ थी ।

जर्मनी के राज्य भौगोलिक विस्तार की दृष्टि से भिन्न-भिन्न प्रकार के थे । मौटे तोर पर जर्मनी के राज्यों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है यथा-उत्तरी, मध्य तथा दक्षिणी । उत्तरी भाग में प्रशा, सैक्सनी, हैनोवर, फ्रैंकफूर्ट आदि राज्य थे जबकि मध्य भाग में राइन लैंड और दक्षिण में वुर्टेम्बर्ग, बवेरिया बादेन, पैलेटिनेट, हेस-डर्मेस्टाट आदि । आकार और सैनिक शक्ति की दृष्टि से प्रशा सबसे शक्तिशाली था । इन राज्यों की सामाजिक व राजनीतिक प्रणालियां भी बड़ी पिछड़ी हुई थीं । अनेक राज्यों में बँटे होने के कारण जर्मनी के आर्थिक विकास को बड़ा नुकसान उठाना पड़ा था । राष्ट्रीय चेतना की जागृति के साथ, विशेषकर फ्रांस की क्रांति के बाद, इन राज्यों के लोगों ने जर्मनी के राष्ट्रीय एकीकरण, लोकतंत्री सरकार की स्थापना ओर सामाजिक व आर्थिक सुधारों की माँग करना शुरू कर दिया । यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि जर्मन राज्य राजनीतिक दृष्टि से विखंडित होते हुए भी एक-दूसरे से थोड़े-बहुत जुड़े हुए थे । इसका पहला कारण यह था कि इन राज्यों में पवित्र रोमन सम्राट के प्रति सैद्धांतिक रूप से आदर की भावना थी । दूसरा प्रमुख कारण डाइट का अस्तित्व था । डाइट में विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि एक ही मंच पर एकत्र होते थे ।?

5.2 जर्मनी के एकीकरण में बाधक तत्व-

इटली के एकीकरण के विपरीत जर्मनी के एकीकरण में बाधाएँ यद्यपि कम थीं किंतु प्रारम्भिक काल में वे भी कम जटिल न थीं- (i) जर्मनी के विभिन्न राज्यों की धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक असमानताएँ (ii) जर्मनी की समस्याओं में आस्ट्रिया का हस्तक्षेप (iii) अधिकांश जर्मन राज्यों की शिथिल सैनिक शक्ति (iv) जन-सामान्य में जागृति का अभाव (v) विदेशी शक्तियों की जर्मनी के मामलों में रुचि; उदाहरणार्थ- फ्रांस दक्षिण जर्मनी के रोमन कैथोलिकों में रुचि रखता था । इग्लैण्ड की रुचि हेनोवर में थी क्योंकि हेनोवर के इलेक्टर को 1714 में इंग्लैण्ड का शासक बना दिया गया था । इन सभी बाधाओं के अतिरिक्त आस्ट्रिया की नीति यह भी रही कि जर्मनी में राष्ट्रीय एकता स्थापित न हो और हैप्सबर्ग राजवंश की प्रधानता बनी रहे ।

5.3 संयुक्त जर्मनी के निर्माण में मन्द गति के कारण-

1815 से 1850 तक जर्मनी के एकीकरण की प्रगति मन्द रही । इसके कुछ कारण थे- प्रथम: जर्मनी को वह शारीरिक एवं मानसिक थकान दूर करनी थी जो नेपोलियन के साथ युद्धों के कारण हुई थी । द्वितीय जर्मनी में राजनीतिक विषमताएं थीं । प्रतिक्रियावादी, आस्ट्रिया के हैप्सबर्ग साम्राज्य के अधीन जर्मन साम्राज्य की स्थापना चाहते थे सुधारवादियों में कुछ प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी को संगठित करना चाहते थे तो कुछ सभी राज्यों को समाप्त कर एक

गणराज्य की स्थापना का स्वप्न देख रहे थे । तृतीय: मेटरनिख के द्वारा जर्मनी को नियंत्रण में रखने के लिए प्रतिक्रियावादी नीति का अवलम्बन किया गया । मेटरनिख ने कार्लसबाद के आदेशों के द्वारा जर्मनी में प्रतिक्रियावादी व्यवस्था स्थापित कर दी । अब शिक्षकों तथा विद्यार्थियों पर कठोर नियंत्रण स्थापित कर दिया गया । गुप्त समितियों एवं समाचार पत्रों पर भी प्रतिबन्ध लगा दिये गये । दुःखद तथ्य यह रहा कि जर्मनी के कुछ राज्य भी इस काल में आस्ट्रिया की नीतियों के समर्थक बने रहे । इस प्रकार आस्ट्रिया का दुर्भाग्यपूर्ण हस्तक्षेप जर्मनी की एकता के लिए बुरा साबित हुआ ।

5.4 एकीकरण के प्रयास में सहायक तत्व-

जर्मनी के एकीकरण की गति चाहे धीमी रही किंतु 1815 से 1850 के मध्य कुछ ऐसी प्रवृत्तियों का विकास हो गया था जिन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को गतिमय बनाया । राष्ट्रीयता और एकीकरण की विचारधारा के प्रसार में निम्नलिखित तत्व प्रमुख रूप से सहायक रहे-

5.4.1 बौद्धिक आन्दोलन-

जर्मन उदारवाद व राष्ट्रवाद के विकास में जर्मन प्रबुद्ध वर्ग की देन कम नहीं थी । अठारहवीं शताब्दी में जर्मनी के कुछ प्रसिद्ध दार्शनिकों एवं विद्वानों ने जर्मनी के बौद्धिक जीवन को एक नयी दिशा प्रदान की । इस युग के दार्शनिकों में हर्डर ने सर्वप्रथम मानव स्वतन्त्रता के बारे में विचार व्यक्त किये । फिक्टे ने जर्मनी के फ्रांस विरोधी राष्ट्रवाद को तर्क और युक्ति के आधार पर स्थापित किया । हींगल का मत था कि सार्वलौकिक विचारधारा का सर्वोत्तम रुप है- राष्ट्र, इसलिए राष्ट्र का स्थान सर्वोपरि होना चाहिए । हार्डेनबर्ग नोवलिस उस युग का श्रेष्ठ लेखक व कवि था । उसकी रचनाएँ जर्मनी के अतीत के इतिहास पर प्रकाश डालती हैं जिसके परिणामस्वरूप जर्मनी के जनमानस की आशा-आकांक्षा और कल्पना की शक्ति जागृत और सजग हो गई । इससे जर्मनी के निवासियों को यह भी अनुभव हुआ कि उनको एक सूत्र में बांध रखने वाला सूत्र सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अर्थात् धर्म, भाषा और प्राचीन इतिहास है । डालमेन, रांके, बोमर, हासर आदि इतिहासकारों ने पुराने इतिहास की छानबीन करके जर्मन इतिहास कासे नये रुप में प्रस्तुत किया । इसके साथ ही हेनरिक हाइन, आर्नडीटीटी आर्नड्ट्ट जैसे कवियों ने जनता में राष्ट्रीयता का जोश भरा । इस प्रकार प्रबुद्ध वर्ग ने जर्मन जनता की राष्ट्रीयता की भावनाओं को उकेरा जिसको मेटरनिख की कठोरता भी न रोक सकी ।

5.4.2 औद्योगिक क्षेत्र में सहयोग-

प्रशा ने 1819 में पहली बार श्वार्जबर्ग-सोंदर-शोगन के छोटे से राज्य से सीमा-शुल्क सम्बन्धी सन्धि करके जालवरीन या सीमा शुल्क संघ का श्रीगणेश किया । अर्थशास्त्री फेडरिक लिस्ट की विचारधारा इस अर्थनीति की पृष्ठभूमि में कार्यरत थी । वह राष्ट्रवादी होने के कारण आर्थिक राष्ट्रवाद में विश्वास रखता था । उसका यह मत था कि जर्मनी की सीमा के अन्दर निःशुल्क वाणिज्य नीति प्रचलित होनी चाहिए जिससे जर्मनी की अर्थनीति में एकता स्थापित हो सके । उसने जर्मनी के रेलमार्ग को विस्तृत करने के महत्व पर ध्यान दिया । लिस्ट को 'जर्मन रेलमार्ग का जनक' कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है । जर्मनी में एकता लाने के लिए जो

पारस्परिक आदान-प्रदान की आवश्यकता थी, वह आवश्यकता विकसित रेलमार्ग के निर्माण से पूरी हुई ।

जालवरीन का प्रारम्भ में कुछ जर्मन राज्यों द्वारा विरोध हुआ किंतु शीघ्र ही उनके मतभेद समाप्त हो गये । 1834 तक जर्मनी के सभी प्रमुख राज्य अपनी आर्थिक सुविधाओं को ध्यान में रखकर इसके सदस्य बन गये थे । इस चुंगी संघ में यह निश्चय किया गया कि इस संघ के सदस्य अधिकांश वस्तुओं का स्वतन्त्र व्यापार करेंगे । और एक-दूसरे के सामान पर चुंगी नहीं लेंगे । इस समझोते के महत्व को आरम्भ में आस्ट्रिया समझने में असफल रहा । प्रारम्भ में सम्भवत: जालवरीन के पीछे कोई राजनीतिक उद्देश्य या उच्चाभिलाषा नहीं रही परन्तु धीरे-धीरे प्रशा जालवरीन के नेतृत्व के माध्यम से जर्मन एकीकरण के राजनीतिक नेतृत्व व उत्तरदायित्व को लेने व उत्तरदायित्व को लेने के लिए अज्ञात रुप से प्रस्तुत हो रहा था । 1850 तक जर्मनी के सम्पूर्ण राज्य इस आर्थिक संघ में शामिल हो गए ।

जालवरीन की सफलता और आस्ट्रिया के उससे दूर रहने का यह परिणाम निकला कि निरंतर एक आर्थिक शक्ति के प्रभाव और दवाब से जर्मन राज्यों के मध्य जो राजनीतिक व्यवधान था और जिसने जर्मनी को इतना खंडित कर रखा था, वह व्यवधान धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा था । आर्थिक क्षेत्र में एकता की इस अनुभूति ने जर्मनी के विकेन्द्रीकरण में सहायक राजवंशीय तथा प्रादेशिक प्रभाव को भी कम कर दिया । इसलिए यह कहना उपयुक्त होगा कि जालवरीन जर्मन राष्ट्रीय एकीकरण का एक उल्लेखनीय एवं प्रभावशील सोपान था ।

5.4.3 फ्रांस की 1848 की क्रांति-

फरवरी, 1848 की फ़्रांसीसी क्रांति एवं वियेना में मैटरनिख के पतन की सूचना पाकर जर्मनी के विभिन्न रियासतों में विद्रोह हुए । प्रशा, बवेरिया, सैक्सनी, बादेन आदि सभी राज्यों में राष्ट्रीयता और लोकतन्त्र के समर्थकों ने निरंकुश एवं प्रतिक्रियावादी शासकों के विरुद्ध संघर्ष आरम्भ किया । प्रारम्भ में विद्रोहियों को सफलता मिली । अधिकांश जर्मन राज्यों में वैध राजसत्ता स्थापित हो गयी तथा उदार मंत्रिमण्डलों की नियुक्तियाँ हुई । वैधानिक शासन एवं व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को मान्यता प्राप्त हुई । प्रशा के शासक फेडरिक विलियम चतुर्थ (1840-1858) ने उदार संविधान स्वीकार किया और यह घोषणा की- ' 'आज मैंने जर्मनी के प्राचीन झण्डे को स्वीकार किया है और मैं अपनी प्रजा को जर्मन साम्राज्य के प्राचीन झण्डे की रक्षा के लिए समर्पित करता हूँ । अब से प्रशा और जर्मनी के हित एक होंगे ।' ' इस घोषणा से जर्मनी के राष्ट्रवादियों को बल मिला किंतु यह सब कुछ अल्पकालीन साबित हुआ और फेडरिक विलियम पुन: निरंकुशता की नीति की ओर अग्रसर हो गया ।

मार्च, 1848 में सम्पूर्ण जर्मनी का एक संघ बनाने के उद्देश्य से जर्मनी के राष्ट्रवादियों ने एक राष्ट्रीय संसद आमन्त्रित की जिसका अधिवेशन फ्रेंकफर्ट में हुआ । इस संसद में जर्मनी के सभी राज्यों के प्रतिनिधि एकत्र हुए और जर्मन संघ का संविधान तैयार करने लगे । यह उल्लेखनीय है कि इन प्रतिनिधियों में अधिकांश मध्यम वर्ग के थे किंतु वे क्रांतिकारी नहीं थे । श्रमिक एवं किसानों को प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं था । इस संसद के सदस्य-प्रतिनिधि लगभग एक वर्ष तक संविधान को लेकर वाद-विवाद ही करते रहे, जो इस संसद की सबसे बड़ी दुर्बलता

रही । जब संविधान को अंतिम रुप दिया जा रहा था तब तक प्रतिक्रियावादी पुन: प्रभावी हो गए । अस्तु! मार्च, 1849 में संसद ने संघ का संविधान बना लिया और प्रशा के शासक को जर्मनी का सम्राट बनाने का निर्णय लिया । किंतु फेडरिक विलियम चतुर्थ ने नवीन जर्मन साम्राज्य का राजमुकुट अस्वीकार कर दिया । कायरतापूर्ण व्यवहार, अस्थिर नीति, अहंकार तथा रूढ़ियों के प्रति मोह के कारण फेडरिक ने ताज को ठुकरा दिया । इस घटना ने उदारवादियों एवं राष्ट्रवादियों की आशाओं पर तुषारापात कर दिया । इस प्रकार जर्मनी में 1848 का उदारवादी तथा क्रांति समर्थक आन्दोलन असफलता के साथ समाप्त हो गया । परन्तु फिर भी, 1848 की क्रांति सर्वथा निष्फल नहीं रही । क्रांति ने जर्मनी में उदारवाद एवं राष्ट्रीयता की भावना कों सबल बनाया ।

5.4.4 जर्मनी का औद्योगिक विकास-

यूरोप में औद्योगिक क्रांति के विस्तार के साथ जर्मनी का भी प्रवेश हुआ । जालवरीन की स्थापना और विस्तार के साथ जर्मनी में व्यापार और उद्योगों का मार्ग प्रशस्त हुआ । इस समय में प्रशा के रूर क्षेत्र में प्रचुर मात्रा में कोयला और लोहा मिल जाने के कारण औद्योगीकरण तीव्र गति से हुआ । सूती कपड़े के उद्योग में मशीनों का उपयोग बढ़ने लगा और कई स्थानों पर सूती कपड़े की मिलें स्थापित की गई । साथ ही रेलों का भी विस्तार किया गया । 1850 तक जर्मनी के प्रमुख नगरों को एक दूसरे से रेल द्वारा जोड़ दिया गया था । जर्मनी का आर्थिक नेतृत्व प्रशा ही कर रहा था और 1860 तक जर्मनी की गणना यूरोप के औद्योगिक राज्यों में की जाने लगी थी । इसके विपरीत आस्ट्रिया प्रशा के बहुत पीछे रह गया था क्योंकि उद्योग-व्यापार और वाणिज्य में आस्ट्रिया अपनी रूढ़िवादी नीति (एकाधिकार गिल्ड प्रथा आदि) के कारण बहुत पिछड़ा रहा । 1866 के आस्ट्रिया प्रशा युद्ध के प्रारम्भिक काल में आस्ट्रिया को आर्थिक घाटा और तीव्र आर्थिक संकट का सामना करना पड़ रहा था जबकि प्रशा अपने बढ़ते हुए व्यापार वाणिज्य और उद्योग के कारण निरंतर उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा था ।

उद्योगों के विकास के परिणामस्वरूप समाज में एक नए पूँजीपति वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ । जर्मनी के राजनीतिक जीवन पर यह वर्ग प्रभावशाली हो गया । इस वर्ग की इच्छा थी कि जर्मनी के छोटे-छोटे राज्यों को समाप्त कर एक संयुक्त जर्मनी का निर्माण किया जाए जिसमें उद्योग-धन्धों पर कोई प्रतिबन्ध न रहे । डेविड थामसन ने यूरोप सिंस नेपोलियन में लिखा है कि पूँजीपति वर्ग का सहयोग मिल जाने से एकीकरण के आन्दोलन को ऐसा बल प्राप्त हुआ, जो पहले के आन्दोलनों को प्राप्त नहीं हो सका ।'

5.5 अनुभागीय सारांश एवं अभ्यासार्थ प्रश्न

अठारहवीं शताब्दी में जर्मनी अनेक राज्यों में बँटा हुआ था । नेपोलियन की लड़ाईयों के जमाने में इनमें से बहुत से समाप्त हो गए । युद्ध के बाद जर्मनी में 38 राज्य बचे रहे थे । आकार और सैनिक शक्ति के हिसाब से प्रशा सबसे शक्तिशाली था । 1815 ई0 में जर्मनी के राज्यों को आस्ट्रिया के साथ एक जर्मनीय संघ में संगठित कर दिया गया । फिर भी राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित होकर लोगों ने सुधारों की मांग जारी रखी । 1848 ई0 में जर्मनी के प्रत्येक

राज्य में विद्रोह हुए और शासकों को लोकतन्त्रीय संविधान बनाने पर मजबूर किया । प्रारम्भ में राष्ट्रवादियों एवं लोकतांत्रिकों को कुछ सफलता अवश्य मिली किंतु शीघ्र ही शासकों का दमन चक्र शुरू हो गया और लोगों को क्रांति के प्रारम्भ में जो अधिकार मिल चुके थे, वे भी छिन गए । हजारों जर्मन, क्रांतिकारियों को देश छोड़कर भागना पड़ा । जर्मनी के एकीकरण के लिए हुई 1848 ई0 की क्रांति की असफलता से एकीकरण के संघर्ष का पहला दौर समाप्त हो गया । अब जर्मनी का एकीकरण एक लोकतन्त्रीय देश के रुप में क्रांतिकारियों के प्रयत्न से नहीं होना था बल्कि एक सैन्य शक्ति प्रधान साम्राज्य के रुप में शासकों द्वारा होना था । प्रशा एवं उसके चांसलर बिस्मार्क ने जर्मनी के एकीकरण में अहम् भूमिका अदा की किंतु प्रशा के औद्योगिक विकास, औद्योगिक क्षेत्र में सहयोग के प्रतीक जालवरीन एवं बौद्धिक आन्दोलन की भूमिका भी उल्लेखनीय रही है ।

5.6 प्रशा का शासक

सम्राट विलियम प्रथम एवं उसके सैनिक सुधार-

फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ का 1858 में मस्तिष्क विकृत हो आने से अगले तीन वर्षों तक उसका भाई विलियम उसका संरक्षक बना और 1861 में फ्रेडरिक की मृत्यु के पश्चात् विलियम प्रशा का शासक बना । इस समय उसकी आयु 64 वर्ष थी । यद्यपि विलियम प्रथम का मस्तिष्क उतना विचारवान एवं तीक्ष्ण नहीं था, जितना कि उसके भाई का किन्तु वह दृढ़ निश्चयी था और उसके विचार सुलझे हुए थे । वह परिश्रमी, ईमानदार एवं व्यावहारिक था । वान सिबेल ने अपनी पुस्तक 'द फाउन्डिंग ऑफ जर्मन एम्पायर' में लिखा है कि ' 'विलियम में ऐसी अनोखी प्रतिभा थी जिससे वह समझ लेता था कि क्या प्राप्य है और क्या अप्राप्य ।' ' उसमें योग्य व्यक्तियों को परखने की क्षमता थी । उसको प्रशा पर गर्व था और वह प्रशा के अपमान को सहन नहीं कर सकता था । यद्यपि वह उदारवाद को बुरा समझता था किंतु प्रशा के हित के लिए वह उदारवादियों के साथ सहयोग करने को तत्पर था । उसका दृढ़ विश्वास था कि प्रशा के सुदृढ़ राजतन्त्र के माध्यम से ही जर्मनी का एकीकरण सम्भव है । निःसन्देह विलियम का शासनकाल प्रशा और जर्मनी दोनों के लिए ऐतिहासिक सिद्ध हुआ ।

विलियम प्रथम महत्वाकांक्षी शासक होने के कारण प्रशा की सेना का पुनर्गठन चाहता था । उसने वानरून को युद्ध मन्त्री और वान मोल्टके को प्रधान सेनापति नियुक्त किया । उन्हीं दोनों व्यक्तियों की सलाह से उसने सेना के पुनर्गठन और सुधार की योजना तैयार की । उसने 39 नए रेजिमेंट और 9 घुड़सवार रेजिमेंट संगठित करने का आदेश दिया । लेकिन इतने व्यापक विस्तार के लिए धन की जरुरत थी । इस हेतु प्रशा के निम्न सदन (प्रतिनिधि सभा) की स्वीकृति आवश्यक थी । इस समय निम्न सदन में उदारवादियों का बहुमत था, जो वान रुन के सैनिक सुधारों को प्रतिक्रियावादी समझते थे । संसद ने युद्ध मन्त्री की योजना में कुछ संशोधन करने का प्रस्ताव किया, किंतु वानरून किसी प्रकार का संशोधन स्वीकार करने को तैयार नहीं हुआ । इसलिए संसद ने बजट पास करने से इन्कार कर दिया । विलियम ने संसद को भंग कर दिया और उसका नया निर्वाचन करवाया । लेकिन दुर्भाग्यवश इस बार भी संसद में

उदारवादियों का बहुमत रहा । अब एक संवैधानिक गतिरोध उत्पन्न हो गया क्योंकि अब सत्ता के अधिकार का प्रश्न उठ खड़ा हुआ था ।

विलियम संकट में पड़ गया । वह सेना की सुधारों की योजनाएं त्यागना नहीं चाहता था । अब तो एक ही रास्ता रह गया था कि वह पद त्याग कर इस समस्या से मुक्त हो जाये । ऐसे समय वानरून ने सम्राट को सलाह दी कि बिस्मार्क को अपना चांसलर नियुक्त करे जो इस समय फ्रांस में प्रशा का राजदूत था ।

5.7 जर्मनी के एकीकरण का सूत्रधार-बिस्मार्क-

ओटोवान बिस्मार्क प्रशा के एक प्रतिष्ठित सामंत परिवार का था । वह एक अत्यंत योग्य एवं कुशल व्यक्ति था । प्रजातन्त्र में उसकी कतई आस्था नहीं थी । दूसरे शब्दों में वह उदारवादी विचारधारा का कट्टर विरोधी था । उसने उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग मध्य में कहा था, ' 'मैं इस युग की उस भावुकता से डरता हूँ जिसमें प्रत्येक दीवाने विद्रोही को सच्चा देशभक्त समझा जाता है ।' ' वह संविधान को घृणा की दृष्टि से देखता था तथा उसे केवल रद्दी का टुकडा समझता था । इसलिए जब फ्रैंकफर्ट की संसद के निमंत्रण पर जर्मन सम्राट बनने का प्रस्ताव प्रशा के राजा ने ठुकरा दिया था तो उसे व्यक्तिगत तौर पर प्रसन्नता हुई थी ।

यद्यपि बिस्मार्क की आस्ट्रिया के प्रमुख व्यक्तियों तथा रुढ़िवादियों से मित्रता थी, तथापि वह चांसलर बनने के बाद प्रशा के स्वतन्त्र स्वरूप और नीति को प्रतिष्ठित करने में सफल रहा । उसने यह समझ लिया था कि तत्कालीन जर्मन संघ का गठन किस सीमा तक असंतोषजनक था । इसलिए बिस्मार्क इस बात पर भी विचार कर रहा था कि किस प्रकार से इस संघ की प्रतिकूल परिस्थिति को प्रशा के समर्थन में परिवर्तित किया जाए जिससे प्रशा जर्मनी के एकीकरण के लिए स्वयं को प्रस्तुत कर सके । वस्तुत: बिस्मार्क जर्मनी की आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए किसी भी नीति का अवलम्बन करने में नहीं हिचकिचाया । उसने सदैव जर्मनी की आवश्यकता व प्रतिष्ठा को अपने व्यक्तिगत सम्मान और प्रतिष्ठा के ऊपर समझा ।

1847 में बिस्मार्क ने राजनीति में प्रवेश किया । उस वर्ष सम्राट ने उसे संयुक्त प्रशियन डाइट का सदस्य निर्वाचित किया । इस सभा में उसने उदारवाद एवं क्रांति का विरोध किया था । इसी समय उसे राष्ट्रीय असेम्बली एवं संविधान सभा का सदस्य बनने का भी मौका मिला । 1851 तक बिस्मार्क राजतन्त्र के कट्टर समर्थक के रुप में पहचाना जाने लगा था । 1851 में सम्राट ने बिस्मार्क को फ्रैंकफर्ट की सभा में प्रशा का प्रतिनिधि नियुक्त किया तथा वहाँ वह अगले आठ वर्ष तक प्रशा का प्रतिनिधित्व करता रहा । इन आठ वर्षो में उसने कूटनीतिक शिक्षा ग्रहण की, उसके व्यक्तित्व का विकास हुआ तथा उसकी महत्त्वाकाक्षाएं जागृत हुई । यहाँ उसके आस्ट्रिया सम्बन्धी विचारों में परिवर्तन आया । पहले वह आस्ट्रिया से सहयोग कर क्रांति का दमन करने का समर्थक रहा था । किंतु अब उसे ज्ञात हुआ कि आस्ट्रिया व प्रशा का सहयोग सम्भव नहीं है क्योंकि आस्ट्रिया, प्रशा को बराबरी का स्थान देने को तैयार नहीं था । आस्ट्रिया, जर्मनी की छोटी-छोटी रियासतों को अपने पक्ष में रखकर जर्मन संघ पर अपना प्रभाव बनाए रखना चाहता था । वह समझ गया था कि छोटी-छोटी रियासतों का झुकाव आस्ट्रिया की तरफ अधिक है क्योंकि आस्ट्रिया यथा स्थिति बनाये रखने के पक्ष में था । इस

दौरान प्राप्त अनुभव से वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि आस्ट्रिया को पराजित किए बिना, प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण सम्भव नहीं है ।

1859 में बिस्मार्क को सेंट पीटर्सबर्ग में राजदूत बनाकर भेज दिया गया । रूस में रहते हुए उसने कुशलता का परिचय दिया और जार अलेक्जेण्डर द्वितीय से व्यक्तिगत मित्रता स्थापित की । यह उसका प्रथम सफल कूटनीतिक कार्य था, जो कालांतर में उसके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ । क्रीमिया युद्ध (1855) के समय प्रशा की निरपेक्षता, सेंट पीटर्सबर्ग में आस्था प्रकट करके रूसी सम्राट को संतुष्ट करना-इन सभी कार्यो के फलस्वरूप बिस्मार्क के लिए रूसी मैत्री सुरक्षित रही, जिसका समय आने पर फ्रांस के विरूद्ध सफलतापूर्वक उपयोग किया गया था ।

मार्च, 1862 में बिस्मार्क को सेंट पीटर्सबर्ग से हटाकर पैरिस में फ्रांस के राजदूत के रुप में भेजा गया । फ्रांस में उसे नेपोलियन तृतीय एवं उसके मन्त्रियों से मिलने एवं उनकी नीतियों को समझने का अवसर मिला । फ्रांस में वह अधिक समय तक नहीं रहा और सितम्बर, 1862 में सम्राट ने उसे बर्लिन बुला लिया तथा प्रशा का चांसलर (प्रधानमन्त्री) नियुक्त किया ।

5.8 चांसलर बनने के बाद बिस्मार्क के उद्देश्य एवं योजना

बिस्मार्क को जिन परिस्थितियों में यह पद सौंपने का निश्चय किया गया था उस समय सम्राट एवं संसद में सैनिक बजट को लेकर ठनी हुई थी । अत: बिस्मार्क ने जब चांसलर पद की शपथ ली थी तब सम्राट को सम्बोधित करते हुए उसने कहा था- ' 'मैं श्रीमान के साथ नष्ट हो जाऊँगा, किंतु संसद के इस संघर्ष में आपका साथ नहीं छोड़ूगा ।' ' बिस्मार्क ने सम्राट के सैनिक सुधारों को लागू करने के लिए पहले प्रतिनिधि सभा से समझौता करने का प्रबल किया किंतु जब समझौता नहीं हो सकता तो उसने प्रतिनिधि सभा की अवहेलना करते हुए केवल उच्च सदन (राज्य सभा) से बजट पास करा लिया और सैनिक सुधारों के लिए आवश्यक धनराशि जुटा ली । 1862 से 1866 तक इसी प्रकार उच्च सदन द्वारा बजट पास किया जाता रहा। वास्तव में बिस्मार्क का यह कार्य अवैधानिक था किंतु राज्य की आवश्यकता को सर्वोपरि मानकर उसने विधान की बिल्कुल परवाह नहीं की । वस्तुत: इस काल में बिस्मार्क का अधिनायकत्व स्थापित हो गया और संसदीय व्यवस्था केवल नाममात्र की बनी रही । 1862 में ही उसने उदारवादियों के सिद्धान्तों का खण्डन करते हुए अपनी नीति को इस प्रकार स्पष्ट किया, ' 'जर्मनी का ध्यान प्रशा के उदारवाद की ओर नहीं है वरन् उसकी शक्ति पर लगा हुआ है । प्रशा को अनुकूल अवसर आने तक अपनी शक्ति को सुरक्षित रखना है । हम पहले कई बार इस प्रकार के अवसर खो चुके हैं । हमारे समय की महान् समस्याएँ भाषणों और बहुमत के प्रस्तावों द्वारा नहीं बल्कि 'रक्त और लौह' की नीति के द्वारा ही सुलझ सकती है; 1848-49 में हमने यही भूल की थी ।' ' इसका स्पष्ट अर्थ था कि प्रशा के भविष्य का निर्माण सेना करेगी न कि संसद ।

रक्त और लोहे की नीति का मतलब था- युद्ध । इस नीति के पीछे प्रशा की सामरिकता की नीति की परम्परा का प्रभाव विद्यमान रहा क्योंकि फ्रेडरिक महान् के समय से प्रशा की समृद्धि का जो युग प्रारम्भ हुआ उसका आधार प्रशा की सामरिक श्रेष्ठता ही थी । बिस्मार्क का

यह हठ निश्चय था कि जर्मनी का एकीकरण कभी भी सत्ताधारी यूरोपीय राज्यमंडल स्वीकार नहीं करेगा, क्योंकि शक्तिशाली संयुक्त जर्मनी यूरोप के शक्ति संतुलन के लिए एक खतरा साबित होता । इसलिए बिस्मार्क का यह विश्वास था कि शक्तिहीन प्रशा और आगे चलकर शक्तिहीन जर्मनी, एक तो एकीकरण में ही असमर्थ रहेगा और दूसरी ओर यदि एकीकरण हो भी गया तो निर्माण की दृष्टि से जर्मनी, शक्ति के अभाव में, सदा पिछड़ा रहेगा ।

बिस्मार्क का मुख्य उद्देश्य प्रशा को शक्तिशाली बनाकर, जर्मन संघ से आस्ट्रिया को बाहर निकालना एवं जर्मनी में उसके प्रभाव को समाप्त करके प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण करना था । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक था कि राज्य के समस्त साधनों पर उसका अधिकार हो । उसका यह अटूट विश्वास था कि राजतंत्र का एकमुखी मार्ग ही जर्मनी की समस्या का एकमात्र समाधान है । उसने राजतन्त्र के केन्द्र बिन्दु पर ही समग्र जर्मनी की राष्ट्रीयता को एकसूत्र में बांधे रखने का प्रयत्न किया । बिस्मार्क अपने को केवल राजा के प्रति उत्तरदायित्व मानता था ।

अपने उद्देश्य प्राप्त करने के लिए बिस्मार्क को बहु तःसी आन्तरिक एवं बाहा कठिनाइयों का सामना करना पड़ा किंतु वह बड़े साहस और लगन के साथ आगे बढ़ता गया । यद्यपि कई बार विलियम प्रथम बिस्मार्क की स्वेच्छाचारी नीति से परेशान हो जाता था किंतु वह सम्राट को समझा कर अपनी नीति की स्वीकृति प्राप्त कर लेता था । उसने प्रशा की सेना का पुनर्गठन करके उसे यूरोप में श्रेष्ठ बना दिया । इसके पश्चात् ही उसने कूटनीतिक चालों से आस्ट्रिया को निर्बल बनाने की चेष्टा की । सौभाग्य से उच्च समय की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति बिस्मार्क की नीति को कार्यान्वित करने में सहायक हु ई । बिस्मार्क ने अपने सम्पूर्ण कार्यक्रम के दौरान इस बात का विशेष ध्यान रखा कि जर्मनी के एकीकरण के लिए प्रशा की अस्मिता नष्ट नहीं हो जाए । वह प्रशा का बलिदान करने को तैयार नहीं था, जैसा कि पीडमांट ने इटली के एकीकरण के लिए किया । वह प्रशा में ही जर्मनी को समाहित कर लेना चाहता था ।

5.9 एकीकरण की ओर-

अपने उद्देश्य तथा अपनी नीति निर्धारित करके बिस्मार्क अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए सब प्रकार के प्रयत्न करने लगा । इस समय अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति प्रशा के अनुकूल थी । जर्मनी की राष्ट्रीयता के शत्रु, आस्ट्रिया और रुस जिनमें पहले परस्पर मित्रता थी उनमें क्रीमिया युद्ध के परिणामस्वरूप मनमुटाव हो गया था । बिस्मार्क ने इस स्थिति से लाभ उठाना चाहा और रूस को अपनी तरफ मिलाने का प्रयत्न किया । 1862 में जब पोलैण्ड वालों ने विद्रोह किया तो उसने विद्रोह के दमन में रूस की सहायता की, यद्यपि जर्मनी में लोकमत पोल लोगों के पक्ष में था और इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा आस्ट्रिया की सहानुभूति भी उनके साथ थी । इन प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उसने रूस की सहानुभूति प्रशा के लिए प्राप्त कर ली । आस्ट्रिया का रूख पोल लोगों के पक्ष में होने के कारण रूस उससे और भी अधिक अप्रसन्न हो गया । जहाँ तक फ्रांस का सवाल है, फ्रांस में नेपोलियन तृतीय का रूख राष्ट्रीयता के प्रति सहानुभूतिपूर्ण था । अत: उससे मित्रता में आसानी रही । उसने फ्रांस के साथ व्यापारिक संधि करके उसकी भी

मित्रता प्राप्त कर ली । इस प्रकार उसने ऐसी स्थिति तैयार कर ली जिसमें आवश्यकता के समय आस्ट्रिया को कोई सम्भव सहायता प्राप्त न हो सके ।

5.9.1 प्रथम चरण- डेन्मार्क से युद्ध एवं गेस्टाइन समझौता-

श्लेसविग तथा हॉल्सटाइन नामक दो रियासतें उनमार्क के शासन के अधीन तो थीं लेकिन डेन्मार्क का अविभाज्य अंग नहीं थी । ये डचियाँ डेनमार्क और जर्मनी के बीच में स्थित थीं । हॉल्सटाइन जर्मन संघ का सदस्य था और यहाँ की जनता भी जर्मन थी श्लेसविग में जर्मन बहुमत तो था लेकिन वहाँ डेन लोग भी बहुत बड़ी संख्या में रहते थे । डेन्मार्क का शासक धीरे-धीरे इन रियासतों का डेन्मार्क में पूरी तरह विलय चाहता था । डेन्मार्क की जनता इसका समर्थन करती थी, लेकिन जर्मन लोग इसके खिलाP थे । 1852 में लंदन में हुए सम्मेलन में यूरोप के शासकों ने इन रियासतों पर डेनमार्क की सत्ता इस शर्त पर मानी थी कि वह इनको कभी पूरी तरह विलय नहीं करेगा । इसी शर्त को आगस्टनबर्ग के ड्यूक ने स्वीकार कर इन पर अपना दावा छोड़ दिया था । लन्दन की संधि का अगले लगभग 10 वर्षों तक सभी ने पालन किया । परन्तु 1863 में श्लेसविग-हॉल्सटाइन का प्रश्न फिर से उठा । डेनमार्क के शासक फेडरिक सप्तम ने मार्च, 1863 में अपने नए संविधान के तहत हॉलसटाइन पूरी तरह डेनमार्क में मिला लिया और श्लेसविग को स्वायत्तता दे दी । जब नवम्बर, 1863 में फेडरिक की मृत्यु हो गई तो लन्दन की संधि के अनुसार नवम् क्रिश्चियन सिंहासन पर बैठा । उसने भी फ्रेडरिक सप्तम की व्यवस्था को स्वीकार कर लिया । किंतु ऑगस्टनबर्ग के ड्यूक के पुत्र फ्रेडरिक ने लन्दन संधि के विरूद्ध इन डचियों पर अपना अधिकार पेश किया । वह विरोध का नेतृत्व करने लगा । जर्मन डाइट ने उसका समर्थन किया और संघीय सेना ने हॉल्सटाइन पर अधिकार कर लिया । यहीं से जर्मनी का इतिहास बिस्मार्क की अतुलनीय कूटनीति तथा अदम्य इच्छा शक्ति का इतिहास बन जाता है ।

अब जर्मन राष्ट्र श्लेसविग-हॉल्सटाइन को एक पृथक राजा के शासनाधीन जर्मन परिसंघ में शामिल करने का अभिलाषी हो गया । इसके विपरीत बिस्मार्क इन प्रदेशों को प्रशा में सम्मिलित करने के अतिरिक्त उन्हें परिसंघ के विनाश तथा जर्मनी से आस्ट्रिया के बहिष्कार का साधन बनाना चाहता था । जर्मन राष्ट्र एक बात चाहता था और बिस्मार्क उससे बिलकुल भिन्न दूसरी बात । यह एक महत्वपूर्ण पहलू है कि बिस्मार्क ने बड़ी दृढ़ता और कुशलता के साथ जनता तथा यूरोपीय राज्यों के विरोध पर विजय प्राप्त करके राष्ट्र को जबरदस्ती उस लक्ष्य पर पहुँचा दिया जिसे उसने स्वयं उसके लिए स्थिर किया था ।

बिस्मार्क यह मानता था कि इन डचियों का प्रशा के नाविक विकास में भी महत्वपूर्ण स्थान है । क्योंकि इन दोनों डचियों की भौगोलिक स्थिति सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण थी । वह किसी भी प्रकार उनको प्रशा में शामिल करना चाहता था । एक बार उसने कहा भी था, ' 'मैंने प्रारम्भ से ही डचियों पर प्रशा के अधिकार करने का विस्तार किया था । '' किन्तु अभी वह बल प्रयोग कर इन्हें प्राप्त करने की स्थिति में नहीं था । यदि वह अकेला ही डेन्मार्क पर आक्रमण करता तो आस्ट्रिया अवश्य उसका विरोध करता । इसलिए उसने आस्ट्रिया को मिलाकर उसकी सहायता से अपना काम निकलना चाहा ।

जनवरी, 1864 में आस्ट्रिया और प्रशा दोनों राज्यों के बीच समझौता हुआ जिसके अनुसार यह निश्चित किया गया कि वे जर्मन डाइट अथवा अन्य जर्मन राज्यों के हस्तक्षेप के बिना डचियों की समस्या को हल करेंगे । किन्तु इस संधि में डचियों के भविष्य के विषय में केवल यह निश्चित हुआ कि ये दोनों राज्य पारस्परिक समझौते द्वारा डचियों का भविष्य निर्णय करेंगे । इसी अनिश्चय की स्थिति से आगे चलकर विस्मार्क ने लाभ उठाया ।

डेन्मार्क ने उचियों के सन्दर्भ में जिस नीति का पालन किया उसका आस्ट्रिया और प्रशा को अल्टीमेटम दे दिया जिसमें उसे नये संविधान को रद्द करने को कहा । डेनमार्क को इंग्लैण्ड से सहायता मिलने की आशा थी, अत: उसने अल्टीमेटम की कोई परवाह नहीं की । फरवरी, 1864 में आस्ट्रिया और प्रशा की संयुक्त सेनाओं ने डेन्मार्क पर आक्रमण कर दिया । डेन्मार्क को कहीं से सहायता प्राप्त नहीं हुई । वह पराजित हो गया । वियेना संधि (अक्टूबर, 1864) के अनुसार डेनमार्क को श्लेसविग तथा हॉल्सटाइन के साथ ही लावेनबुर्ग की डची को आस्ट्रिया तथा प्रशा के संयुक्त अधिकार में छोड़ देना पड़ा और उनकी वे जो कुछ व्यवस्था करें उसे स्वीकार करने का वचन देना पड़ा ।

गेस्टाइन समझौता- आस्ट्रिया और प्रशा के बीच इस सम्बन्ध में लम्बे समय तक यह गहरा मतभेद चलता रहा कि डचियों पर अधिकार किसका हो और उनकी क्या व्यवस्था की जाये? आस्ट्रिया चाहता था कि ये दोनों डचियों आगस्टनबर्ग के ड्यूक फ्रेडरिकको सौंप दी जायें किंतु बिस्मार्क की इच्छा इन डचियों पर अन्तत: अधिकार करने की थी किन्तु वह कुछ समय के लिए आस्ट्रिया को सन्तुष्ट रखते हुए अपना प्रयोजन सिद्ध करना चाहता था । यह बिस्मार्क की चाल थी । अन्त में गेस्टाइन नामक स्थान पर 14 अगस्त, 1865 को विलियम और फ्रांसिस जोसेफ ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये । इस समझौते के अनुसार यह निश्चित हुआ कि लावेनबुर्ग की डची प्रशा को बेच दी जाए, श्लेसविग प्रशा के पास रहे और हॉल्सटाइन आस्ट्रिया के अधिकार में रहे । कील के बन्दरगाह पर आस्ट्रिया और प्रशा का संयुक्त अधिकार रहा, किंतु प्रशा को वहाँ किलेबन्दी करने का भी अधिकार मिला ।

गेस्टाइन समझौता बिस्मार्क की एक महान् कूटनीतिक विजय थी । बिस्मार्क ने डचियों का प्रश्न जर्मन परिसंघीय सभा से बिल्कुल हटा दिया और आगस्टेनबुर्ग के ड्यूक को भी अपने मार्ग से अलग कर दिया । इस प्रकार इन दोनों ओर से जो उलझनें पैदा हो सकती थीं, उन्हें दूर कर दिया । इसके साथ ही बिस्मार्क ने इस समझौते के द्वारा आस्ट्रिया के साथ संघर्ष की काफी गुंजाइश रख छोड़ी थी । आस्ट्रिया को हॉल्सटाइन अवश्य मिला किंतु वहाँ की जनता जर्मन थी तथा जो सब ओर से प्रशा से घिरा हुआ था और आस्ट्रिया दूरस्थ स्थित था । ऐसी स्थिति में आस्ट्रिया के विरुद्ध असंतोष फैलाने एवं उपद्रव करवाने तथा इस प्रकार आस्ट्रिया को भड़काने की बिस्मार्क को अच्छी सुविधा थी । इस समझोते के पश्चात् बिस्मार्क ने कहा था, ' 'मुझे विश्वास नहीं था कि ऐसा भी कोई आस्ट्रियन राजनीतिक होगा जो इस प्रकार के समझोते पर हस्ताक्षर कर सके ।' ' यद्यपि इस समझौते द्वारा आस्ट्रिया और प्रशा के बीच युद्ध की स्थिति टल गयी थी किंतु बिस्मार्क ने स्वयं कहा था कि इस समझौते के द्वारा हमने ' 'दरार

को कागज से ढक दिया है । " निःसन्देह बिस्मार्क ने इस समझौते के द्वारा आस्ट्रिया के साथ अवश्यम्भावी युद्ध की ओर कदम बढ़ाया ।

5.9.2 द्वितीय चरण- आस्ट्रिया प्रशा युद्ध एवं प्राग की सन्धि-

बिस्मार्क की योजना का दूसरा चरण गैस्टाइन समझौते के बाद शुरू होता है । उसने आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी । सैनिक संगठन के साथ उसने कूटनीति के स्तर पर भी अभियान शुरू किया । बिस्मार्क ने कूटनीति द्वारा आस्ट्रिया को मित्रहीन बनाने की नीति का अवलम्बन किया । इसके साथ ही आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध में सफलता प्राप्त करने के लिए बिस्मार्क को दो अनुकूल तत्वों की भी आवश्यकता थी । पहले तो यूरोप में जर्मनी के लिए अनुकूल वातावरण और दूसरे, जर्मनी का समर्थन तथा सहयोग ।

बिस्मार्क ने पोलैण्ड में हुए विद्रोह को दबाने में रूस की मदद की थी । इसलिए वह आश्वस्त था कि रूस उसके विरूद्ध नहीं जायेगा । 'इंग्लैण्ड शानदार अलगाववाद' की नीति पर चल रहा था । इसलिए उसे इंग्लैण्ड से यूरोपीय मामलों में हस्तक्षेप की आशा नहीं थी । किंतु उसे नेपोलियन से मिलने का निश्चय किया । बियारिज में दोनों की 1865 में भेंट हुई । यद्यपि इसका कोई दस्तावेज उपलब्ध नहीं है किंतु नेपोलियन ने बिस्मार्क को आस्ट्रिया के विरूद्ध होने वाले युद्ध में तटस्थ रहने का सम्भवत: आश्वासन दे दिया था । नेपोलियन को यह आशा अवश्य रही होगी कि तटस्थता का बिस्मार्क कोई न कोई मूल्य अवश्य अदा करेगा । फ्रांस को सम्भवत: बेल्जियम अथवा राइन के कुछ प्रदेश दिलाने की आशा बिस्मार्क ने दिलायी । दोनों में बिस्मार्क निश्चय ही होशियार और कुशल कूटनीतिज्ञ था । इसलिए उसे नेपोलियन को भुलावे में रखने में कठिनाई नहीं हुई। इस समझौते के पश्चात् बिस्मार्क ने इटली के प्रमुख राज्य पीडमान्ट-सार्डीनिया से मित्रता करने का प्रयत्न किया । सार्डीनिया का आस्ट्रिया से क्षुब्ध होने का एक कारण यह भी था कि आस्ट्रिया ने इटली के प्रदेश वैनेशिया पर प्रभुत्व कर रखा था । बिस्मार्क ने इसका लाभ उठाया और आस्ट्रिया के विरूद्ध सहयोग के लिए सार्डीनिया और प्रशा में अप्रैल, 1866 में एक गुप्त समझौता हो गया । इसके अनुसार यह तय किया कि यदि प्रशा आस्ट्रिया के विरूद्ध तीन माह के अन्दर युद्ध की घोषणा कर दे तो इटली भी आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध घोषित कर देगा । इस कार्य के बदले में विजयी होने पर प्रशा ने इटली को वेनेशिया दिलाने का वचन दिया । इस तरह बिस्मार्क की कूटनीति ने आस्ट्रिया को मित्रहीन बना दिया । तत्पश्चात् बिस्मार्क आस्ट्रिया पर आक्रमण का रास्ता ढूंढने लगा । युद्ध का बहाना ढूंढना कोई मुश्किल काम नहीं था । मोल्तके के नेतृत्व में प्रशा की सेना हर स्थिति के लिए तैयार थी । शासक विलियम तथा उसका परिवार यद्यपि युद्ध के लिए तैयार नहीं था किंतु बिस्मार्क ने उसे समझाया कि ' 'आस्ट्रिया प्रशा का कट्टर शत्रु है और उससे युद्ध अवश्य होगा । अभी तो स्थिति प्रशा के अनुकूल है परन्तु यदि अभी युद्ध नहीं हुआ तो युद्ध बाद में होगा और उस समय स्थिति उतनी अनुकूल नहीं रहेगी । " अन्त में राजा ने युद्ध की स्वीकृति दे दी ।

इधर हॉल्सटाइन की जनता आस्ट्रिया के शासन से नारवुश थी और उधर आस्ट्रिया कील में ड्यूक ऑफ आगस्टनबर्ग के पक्ष में चल रहे आन्दोलन को प्रोत्साहित कर रहा था । अत: प्रशा ने जनवरी, 1866 में आस्ट्रिया को एक कड़ा विरोध पत्र भेजा कि वह इस आन्दोलन

को तुरन्त समाप्त कर दे । आस्ट्रिया ने प्रशा के विरोध के उत्तर में यह स्पष्ट कर दिया कि 1864 की प्रशा और आस्ट्रिया ने श्लेसविग और हॉलसटाइन के प्रश्न पर निर्णय करने के लिए जर्मनी की संघीय संसद को आमन्त्रित किया । आस्ट्रिया के संकेत पर संसद ने निर्णय किया कि डेन्मार्क से लिए गए तीनों प्रदेश आगस्टनबर्ग के ड्यूक को दे दिए जाए । बिस्मार्क ने इस निर्णय का विरोध किया । उसने यह दलील दी कि यह गेस्टाइन समझोते के विरूद्ध है । उसने स्पष्ट कह दिया कि आस्ट्रिया द्वारा समझौता भंग किए जाने से प्रशा भी इससे मुक्त है । बिस्मार्क ने आस्ट्रिया का इंतजार किए बिना हॉल्सटाइन में 6 जून को प्रशा की सेना भेज दी । आस्ट्रिया कीं सेना बिना संघर्ष के पीछे हट गयी । आस्ट्रिया ने जर्मन परिसंघ अपनी सेना प्रशा के विरूद्ध भेजे क्योंकि प्रशा ने संघ का सदस्य होते हुए भी संघ के दूसरे सदस्य के विरूद्ध सेना भेजी है । बिस्मार्क ने जर्मन परिसंघ के इस कार्य को अवैध ठहराते हुए संघ को भंग घोषित कर दिया । यद्यपि जर्मनी की कई छोटी रियासतें आस्ट्रिया के साथ थी किंतु प्रशा की तैयारी सुनियोजित थी । प्रशा ने प्रारम्भ में हनोवर, हेस केसल और ड्रेस्डेन पर अधिकार कर लिया । इसके अतिरिक्त प्रशा की एक सेना राजकुमार फ्रेडरिक के नेतृत्व में साइलेशिया की ओर से आस्ट्रिया क्षेत्र में आगे बढ़ रही थी । दो अन्य सेनाएँ बोहीमिया में एक साथ मिल जायें और आस्ट्रिया पर आक्रमण करें । यद्यपि आस्ट्रिया ने प्रशा की सेनाओं को रोकने का प्रयत्न किया किंतु सफलता नहीं मिली । आस्ट्रिया की सेना को विभाजित रखकर इटली ने उसकी पराजय को आसान बना दिया था । प्रशा की सैनिक शक्ति के आगे आस्ट्रिया टिक नहीं पा रहा था । प्रशा के पास ऐसी राइफलें थी जो कई फायर कर सकती थीं जबकि आस्ट्रिया की सेना में एक ही बार चलने वाली राइफलें थीं । युद्ध का निर्णायक संघर्ष सेडोवा या कोनिग्राज में 3 जुलाई, 1866 को सम्पन्न हुआ । इस लड़ाई में आस्ट्रिया की सेना पूर्ण रूप से पराजित हो गई । इस युद्ध में आस्ट्रिया की सेना की हालत इतनी खराब हो गई कि प्रशा का सम्राट विलियम प्रथम तो आस्ट्रिया की राजधानी वियेना पर अधिकार करना चाहता था । किंतु बिस्मार्क ने कहा, ' 'युद्ध का निर्णय हो गया, अब हमें पुन: आस्ट्रिया के साथ उदारतापूर्ण सम्बन्ध बनाने होंगे ।' '

अब प्रश्न उठता है कि प्रशा ने अचानक क्यों युद्ध बन्द किया? इसके कई कारण थे । प्रशा ने आस्ट्रिया जैसी महान् शक्ति को सात सप्ताह के अन्दर यद्यपि परास्त कर दिया था किंतु अभी शत्रु की शक्ति पूर्णत: नष्ट नहीं हुई थी । यदि युद्ध चलता रहता और प्रशा के विरूद्ध यूरोपीय गुट बना जाता तो उसकी विजय का फल उसके हाथ से निकल जाने का भय था । फ्रांस को भी उपेक्षित नहीं किया जा सकता था । नेपोलियन तृतीय दोनों राज्यों के बीच मध्यस्थता करने को तैयार हो गया था । प्रशा की सेनाएँ भी उस समय तक आगे नहीं बढ़ सकती थी, जब तक कि पीछे से उसका तोपखाना नहीं आ जाता, जिसमें दो सप्ताह से कम समय नहीं लगता । बिस्मार्क का उद्देश्य पूर्ण हो गया था । उत्तरी जर्मन राज्यों से आस्ट्रिया को खदेड़ दिया गया था । अब वह आस्ट्रिया के साथ ऐसा व्यवहार करना आवश्यक समझता था जिससे आस्ट्रिया अपनी पराजयजनित घृणा को भूलकर आगे चलकर उसका मित्र बन सके ।

प्राग की सन्धि-

(i) आस्ट्रिया ने पुराने जर्मन परिसंघ को समाप्त करने की स्वीकृति दे दी ।

(ii) हनोवर, श्लेसविग, हॉल्सटाइन, हेस काक्षेल, नास्साउ आदि रम्य प्रशा में सम्मिलित कर लिए गए।

(iii) प्रशा के नेतृत्व में मेन नदी के उत्तर में स्थित राज्यों का एक नया संघ- उत्तरी जर्मन परिसंघ- बन जाने की आस्ट्रिया ने स्वीकृति दे दी । इस नए संघ से आस्ट्रिया स्वंय को अलग रखने के लिए राजी हो गया।

(iv) आस्ट्रिया को युद्ध के हर्जाने के तौर पर 30 लाख पौण्ड प्रशा को देने पड़े ।

आस्ट्रो-प्रशियन युद्ध के परिणाम-

इस युद्ध से यूरोपीय इतिहास का एक नवीन अध्याय शुरू हु आ । प्रशा की स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गई । उसकी सीमाएं दूर-दूर तक फैल गई । प्रशा को 27 ,000 वर्ग मील का भू-भाग प्राप्त हु आ। अब उसको कील का बन्दरगाह भी मिल गया । सम्पूर्ण उत्तरी जर्मनी का संगठन करके प्रशा उसका अध्यक्ष बन बैठा । इस युद्ध के पश्चात् प्रशा को यूरोप का शक्तिशाली एवं महत्वपूर्ण राज्य और बिस्मार्क को यूरोप का प्रभावशाली राजनीतिज्ञ समझा जाने लगा । प्रशा के उदारवादी अपना उदारवाद भूल गये और बिस्मार्क के कट्टर समर्थक बन गये ।

इस युद्ध से आस्ट्रिया की प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा और उसके साम्राज्य के संगठन पर भी प्रभाव पड़ा । इस युद्ध का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह निकला कि आस्ट्रिया का सम्बन्ध इटली से टूट गया और उसका एकीकरण लगभग पूर्ण हो गया । रूस आस्ट्रिया की पराजय से सन्तुष्ट हुआ । इस युद्ध के पश्चात् कूटनीतिज्ञों ने यह कहा कि 'सेडोवा की भूमि पर आस्ट्रिया की नहीं फ्रांस की हार हुई । 'यूरोपीय राजनीति के रंगमंच पर फ्रांस एवं उसके शासक नेपोलियन का प्रभाव कम हो गया । उल्लेखनीय बात यह रही कि फ्रांस के सहयोग के बिना प्रशा ने यह उपलब्धि प्राप्त की ।

एक प्रश्न यह उठता है कि बिस्मार्क ने पराजित राष्ट्र आस्ट्रिया के साथ इतना उदार व्यवहार क्यों किया? उसने इस युद्ध के पश्चात् आशातीत ढंग से आस्ट्रिया को सम्मान क्यों दिया? बिस्मार्क यह भली-भाँति जानता था कि आस्ट्रिया के साथ अधिक कठोर रूख, अख्तियार करने पर यूरोप के अन्य देशों के हस्तक्षेप की सम्भावना थी । यह बिस्मार्क की तर्कपूर्ण नीति के विरूद्ध था कि एक साथ एक से अधिक दुश्मन पैदा किए जाएं । इसके अलावा अभी फ्रांस से भी युद्ध होना शेष था । उस सम्भाव्य युद्ध में उसे आस्ट्रिया की तटस्थता की अपेक्षा थी । इस समय कठोर रहकर वह आस्ट्रिया को हमेशा के लिए नाराज नहीं कर सकता था । बाद की घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया कि बिस्मार्क में स्थितियों का कितना सही आकलन किया था ।

उत्तरी जर्मन संघ

बिस्मार्क के सम्मुख जर्मन राज्यों को संगठित करने का प्रश्न अहम् था । वह सभी जर्मन राज्यों को मिलाकर जर्मन राज्य संघ का निर्माण करना चाहता था । किंतु इस समय बिस्मार्क के लिए ऐसा करना सम्भव नहीं था क्योंकि दक्षिणी जर्मनी के राज्यों की इच्छा के विरूद्ध इन्हें संघ में सम्मिलित नहीं किया जा सकता था । इन राज्यों पर फ्रांस का प्रभाव था । अत: बिस्मार्क ने शेष 21 राज्यों को मिलाकर प्रशा के नेतृत्व में उत्तरी जर्मन संघ का निर्माण किया । इस नये जर्मन राज्य संघ के संविधान का निर्माण किया गया । संघ के लिए दो सदनों की संघीय संसद गठित की गयी । इसमें प्रथम लोकसभा या राइरवस्टेग थी, जो वयस्क

मताधिकार द्वारा निर्वाचित होती थी और दूसरी संघीय परिषद् या बुन्देस्राट थी, जिसमें संघ के विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि सम्मिलित होते थे । प्रशा का शासक वंशानुगत अध्यक्ष माना गया और यह भी निश्चित किया गया कि संघ का प्रथम चांसलर प्रशा का प्रधानमंत्री बिस्मार्क हो । इस प्रकार संघ की कार्यपालिका संघ के अध्यक्ष एवं चांसलर के नियन्त्रण में थी किंतु संघ के अन्तर्गत सभी राज्यों के अपने आन्तरिक शासन के अधिकार को पूर्ववत् बनाए रखा गया ।

उत्तरी जर्मन संघ के निर्माण से उत्तरी जर्मनी का एकीकरण पूर्ण हो गया किंतु जर्मनी का एकीकरण पूर्ण होने के लिए दक्षिण जर्मनी के राज्यों यथा बवेरिया, वुर्टमबर्ग, बादेन तथा हेस राज्यों का इस नये संघ में सम्मिलित होना आवश्यक था । बिस्मार्क यह जानता था कि फ्रांस इसका विरोध करेगा । फ्रांस का हित इस बात में था कि ये राज्य जर्मन संघ से पृथक रहें । इस प्रकार जर्मनी के पूर्ण एकीकरण के लिए अभी बिस्मार्क को दिमागी श्रम करना शेष था ।

5.9.3 फ्रेंको-प्रशियन युद्ध एवं फ्रैंकफर्ट की सन्धि:

(i) पृष्ठभूमि

बिस्मार्क की यह अवधारणा थी कि प्रशा और फ्रांस का युद्ध इतिहास के तर्क में निहित है । इससे स्पष्ट होता है कि बिस्मार्क शुरू से ही फ्रांस के विरूद्ध युद्ध की तैयारी का मानस बना चुका था परन्तु यह भी कहा जाता है कि दोनों राष्ट्रों के बीच होने वाले युद्ध के बारे में बिस्मार्क ने कोई सुविचारित योजना के तहत काम नहीं किया । अस्तु बिस्मार्क ने उत्तरी जर्मनी को प्रशा के ढंग के प्रशासन में बांध सैनिक तैयारी शुरू कर दी । अब बिस्मार्क के पास लगभग 10 लाख की एक आक्रमक सेना थी । एक ओर प्रशा का ताकत बढ़ रही थी तो दूसरी ओर, फ्रांस में प्रशा के नेतृत्व में उत्तरी जर्मन संघ बन जाने से बड़ा रोष उत्पन्न हो रहा था । फ्रांस के राजनीतिज्ञों को ऐसा प्रतीत हुआ कि प्रशा की विजय से न केवल फ्रांस की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को आघात पहुँचा है वरन् उसकी सुरक्षा के लिए भी भय उत्पन्न हो गया है । फ्रांस के कई राजनीतिज्ञ सेडोवा का प्रतिशोध लेने की माँग कर रहे थे । नेपोलियन तृतीय अपनी नष्ट होती हुई प्रतिष्ठा को पुन: प्राप्त करना चाहता था । कालान्तर में दोनों राष्ट्रों को 'युद्ध' अपनी-अपनी समस्याओं के समाधान का उपाय नजर आया।

(ii) लक्सेमबर्ग का प्रश्न-

नेपोलियन तृतीय यह आशा लगाए बैठा था कि बिस्मार्क उसे आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध में तटस्थ रहने की कोई कीमत चुकायेगा । उसे यह भी आशा थी कि फ्रांस की सीमा का विस्तार राइन नदी तक तो हो जायेगा । किंतु बिस्मार्क ने उसकी उपेक्षा की । इससे नेपोलियन नाराज हो गया ।

नेपोलियन तृतीय ने अपने प्रभाव एवं प्रतिष्ठा में वृद्धि के लिए 1867 में हॉलैण्ड के शासक से लक्सेमबर्ग को बेचने के लिए तैयार भी हो गया । किंतु इसी समय लक्सेमबर्ग को हस्तान्तरण की योजना जर्मनी में प्रगट हो गयी जिससे सर्वत्र फ्रांस का विरोध हुआ । जर्मनी के राष्ट्रवादी कहने लगे, 'जो प्रदेश जर्मनों का है उसे हम जर्मनी के शत्रुओं के हाथ में नहीं जाने देंगे ।' जर्मनी के समाचार पत्रों में भी इसका तीव्र विरोध किया गया । ऐसी स्थिति में, बिस्मार्क ने बाध्य होकर फ्रांस को सूचित किया कि वह लक्सेमबर्ग के हस्तान्तरित की स्वीकृति नहीं दे

सकता । हॉलैण्ड के शासक ने भी अब लक्सेमबर्ग हस्तनितरी करने से इन्कार कर दिया । फ्रांस में इसकी तीव्र प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था । नेपोलियन ने कहा कि, ' 'बिस्मार्क ने मेरे साथ छल किया है ।' ' स्थिति को बिगड़ती देख तटस्थ राष्ट्रों के सहयोग से लक्सेमबर्ग की समस्या पर विचार करने के लिए यूरोपीय राज्यों का सम्मेलन बुलाया गया । मई, 1867 के लन्दन सम्मेलन में लक्सेमबर्ग को तटस्थ राज्य मान लिया गया । इस प्रकार नेपोलियन द्वारा लक्सेमबर्ग प्राप्त करने का प्रयत्न विफल हो गया ।

(iii) स्पेन की गद्दी का प्रश्न

फ्रांस और प्रशा के तनावपूर्ण सम्बन्धों के दौरान स्पेन के उत्तराधिकार का प्रश्न उत्पन्न हुआ जिससे दोनों राज्यों के सम्बन्ध अधिक बिगड़ गये और अंत में युद्ध के नगाड़े बज गये ।

1868 में स्पेन की सम्राज्ञी इसाबेला द्वितीय के विरूद्ध जनता ने विद्रोह किया और उसे हटा दिया । स्पेन के सिंहासन के लिए योग्य उत्तराधिकारी की खोज आरम्भ हुई, जो लगभग दो वर्ष तक चलती रही । अन्त में प्रशा के शासक के सम्बन्धी राजकुमार लियोपोल्ड को स्पेन का सम्राट बनाने का निश्चय किया । प्रारम्भ में तो लियोपोल्ड ने इस आमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया किंतु 19 जून, 1870 को उसने अपनी स्वीकृति दे दी । लियोपोल्ड का नाम प्रस्तावित कराने में बिस्मार्क का हाथ बताया जाता है । लियोपोल्ड के शासक बनने से प्रशा के प्रभाव में वृद्धि होती ।

किंतु जब पैरिस में यह सूचना पहुँची कि लियोपोल्ड न स्पेन का शासक बनने की स्वीकृति दे दी है तो फ्रांस में बड़ी उत्तेजना फैल गई । सर्वत्र आक्रोश उत्पन्न हो गया । फ्रांस में उच्च राजनयिक सूत्रों में यह चर्चा थी कि लियोपोल्ड को स्पेन की गद्दी मिल जाने से प्रशा की शक्ति बढ़ जायेगी और फ्रांस की सुरक्षा को एक भंयकर खतरा उत्पन्न हो जायेगा । फ्रांस ने अपने राजदूत बेनेदिती को विरोध प्रकट करने को कहा । राजदूत ने प्रशा के सम्राट से एम्स नामक स्थान पर भेंट की, जहाँ विलियम स्वास्थ्य लाभ प्राप्त न कर रहे थे। अन्ततः सम्राट विलियम ने लियोपोल्ड को यह सलाह दी कि वह स्पेन के सिंहासन के लिए अपनी स्वीकृति वापस ले लें, अतः 12 जुलाई को लियोपोल्ड ने अपनी स्वीकृति वापस ले ली । इस घोषणा से इस दुःखद अध्याय का समापन हो जाना चाहिए था किंतु नेपोलियन एवं फ्रांस के कई राजनीतिज्ञ इतने से संतुष्ट नहीं हुए । वास्तविकता यह थी कि फ्रांस में नेपोलियन का विरोध बढ़ रहा था । वह अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहता था । अतः नेपोलियन ने कूटनीतिक पराजय के अपमान को प्रशा पर लादना चाहा । अब नेपोलियन में बर्लिन स्थित फ़्रांसीसी राजदूत बेनेदिती को संदेश भेजा कि वह प्रशा के राजा से इस बात की मांग करे कि वह भविष्य में कभी भी लियोपोल्ड या होहेंजोलर्न राजवंश के किसी भी व्यक्ति को स्पेन के उत्तराधिकार के लिए उम्मीदवार बनने की अनुमति नहीं देगा । फ़्रांसीसी राजदूत ने एम्स में सम्राट से भेंट की और उससे उपरोक्त आधार पर वचन मांगा, किन्तु सम्राट ने कोई निश्चयात्मक उत्तर नहीं दिया । इस बातचीत का विवरण तार द्वारा बिस्मार्क के पास भेजा गया । तार पहुँचने के साथ ही बिस्मार्क के चेहरे पर उदासी छा गयी किंतु शीघ्र ही उसे एक युक्ति सूझी कि यदि तार का संक्षिप्त रूप प्रकाशित कर दिया जाये तो

फ्रांस और जर्मनी दोनों ओर उत्तेजना फैल जायेगी । यह तथ्य उल्लेखनीय है कि तार का एक शब्द भी बदला नहीं गया, उसे केवल संक्षिप्त कर दिया गया । किंतु तार की पूरी इबारत और संक्षिप्त इबारत में जमीन-आसमान का फर्क था । सी.डी.एम केटलबी का यह कथन तर्कसंगत है कि ' 'पूरी इबारत मानों युद्ध की चुनौती के जवाब में बातचीत का निमन्त्रण था किंतु संक्षिप्त इबारत मानों चुनौती के जवाब में तलवार का वार था । "

एम्स के तार के संक्षिप्त रूप के प्रकाशित करते ही वही प्रभाव हुआ जिसकी बिस्मार्क को आशा थी । उस दिन 14 जुलाई थी और राष्ट्रीय पर्व था । फ्रेंच जाति पहले से ही उत्तेजित थी । कोई सरकार राष्ट्रीय माँग की कैसे अवहेलना कर सकती थी । तीन बार मन्त्रिपरिषद् की बैठकें हुई । फ्रेंच विदेश मन्त्री ग्रेमा का युद्ध के पक्ष में दवाब था । अन्त में युद्ध करना निश्चित हुआ । 15 जुलाई, 1870 क्रो युद्ध की घोषणा कर दी गई । ग्रेमा ने फ्रेंच संसद में गर्जन करके देशवासियों से कहा, ''हम प्रशा की सरकार से सम्मानपूर्ण आश्वासन तो प्राप्त नहीं कर सके किंतु युद्ध का मार्ग तो आपके लिए खुला है । "

फ्रांस और जर्मनी दोनों देशों में युद्ध के निर्णय का स्वागत किया गया । फ्रांस ने बड़े जोश के साथ युद्ध आरम्भ किया था, किंतु वह युद्ध के लिए तैयार नहीं था । सच तो यह है कि फ्रांस को यह युद्ध अपनी अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा और सम्मान की पुन: प्रतिष्ठा के लिए लड़ना पड़ा । फ्रांस की सेना के पास पर्याप्त रसद और कपड़े तक नहीं थे । दूसरी ओर प्रशा ने युद्ध की पूरी तैयारी कर रखी थी । उसकी सेना पूर्ण रूप से युद्ध के लिए तैयार थी । युद्ध मंत्री वॉन रुन और प्रधान सेनापति दीन मोल्टके के प्रयासों से प्रशा की सेना बहुत प्रशिक्षित और दक्ष हो गई थी । बिस्मार्क ने 1866 के युद्ध के बाद ही दक्षिणी राज्यों की प्रशा विरोधी और आस्ट्रिया समर्थक मनोवृत्ति को परिवर्तित करने की सफल चेष्टा की थी । उसने नेपोलियन की लोभी मनोवृत्ति के बारे में उनको यह कहकर अवगत करा दिया था कि नेपोलियन राइन प्रांत पर अपना अधिकार करने को उत्सुक है । बिस्मार्क की इस समीकरण का यह लाभ हुआ कि भविष्य में अब फ्रांस के विरूद्ध प्रशा के लिए इन राज्यों की सहायता प्राप्त करने की आशा उज्जवल हुई । इसके अतिरिक्त एक ओर-उत्तर जर्मनी के देश प्रेम तथा प्रशा के सफल नेतृत्व एवं सामरिक सफलताओं तथा दूसरी ओर आस्ट्रिया व फ्रांस की स्वार्थी और लोभी मनोवृत्ति को देखते हुए, दक्षिण धीरे-धीरे उत्तर के लक्ष्य को ही अपना लक्ष्य समझने लगा । फलत: नेपोलियन तृतीय की यह आशा धूमिल हो गई कि इस युद्ध में इस युद्ध में दक्षिण राज्य फ्रांस की सहायता करेंगे ।

बिस्मार्क ने अपनी कुशल कूटनीति द्वारा इटली को पहले ही वेनेशिया दिलवाकर फ्रांस से पृथक कर दिया था । अब बिस्मार्क ने इटली को आश्वासन दिया कि जब फ्रांस और प्रशा का युद्ध छिड़े तो इटली रोम राज्य पर अधिकार कर ले । यह स्मरणीय है कि 1849 के बाद से फ़्रांसीसी सेनाऐं पोप के राज्य रोम की सुरक्षा कर रही थीं ।

इस प्रकार बिस्मार्क ने कूटनीति का सहारा लेकर युद्ध को जीतने की पूर्व तैयारी कर ली थी । बिस्मार्क ने उपयुक्त परिस्थिति का अपनी बुद्धि, दूरदर्शिता और कौशल से शीघ्र लाभ उठाकर? अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का सफल प्रयास किया ।

जर्मनी की सेनाओं ने तीन ओर से फ्रांस पर आक्रमण किया । अगस्त के प्रारम्भ में बीसेनबर्ग में फ़्रांसीसी पराजित हुए और प्रशा की सेनाएँ अल्सास तक पहुँच गई । 18 अगस्त को ग्रेवलाट के युद्ध में पुन: फ़्रांसीसी सेना की हार हुई। प्रशा की सेना आगे बढ़ती गई । सबसे अधिक महत्वपूर्ण युद्ध सेडान में 1 सितम्बर, 1870 को हुआ। इसमें प्रशा के सेनापति वान मोल्टके ने फ़्रांसीसी सेना को इतनी बुरी तरह परास्त किया कि नेपोलियन तृतीय को 83 ,000 सेना सहित आत्मसमर्पण करना पड़ा । इस प्रकार फ्रांस में द्वितीय साम्राज्य का पतन हुआ और 4 सितम्बर, 1870 को फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना हो गई । नए गणतन्त्र ने युद्ध जारी रखने का निश्चय किया किंतु जर्मन सेनाएं आगे बढ़ती रहीं और पैरिस तक पहुँच गई । 18 जनवरी, 1871 को वर्साय के विख्यात राजमहल में बिस्मार्क ने जर्मनी के सम्राट विलियम प्रथम का राज्याभिषेक किया । पैरिस के पतन (28 जनवरी, 1871) के शीघ्र पश्चात् फ्रांस-प्रशा युद्ध समाप्त हो गया ।

फ्रैंकफर्ट की सन्धि

26 फरवरी 1871 को शांति संधि की प्रारम्भिक शर्तों पर हस्ताक्षर हुए और 10 मई को फ्रैंकफर्ट की संधि के रूप में उसको दोनों देशों के प्रतिनिधियों ने स्वीकार कर लिया । इस सन्धि के अनुसार-

(i) फ्रांस को मेज व स्ट्रासबर्ग सहित अल्सास व लोरेन के प्रदेश जर्मनी को देने पड़े ।

(ii) फ्रांस को युद्ध के हर्जाने के रूप में 20 करोड़ पोंण्ड की रकम क्षतिपूर्ति के एवज में देने के लिए बाध्य किया गया । इसके भुगतान के लिए तीन वर्ष की अवधि निश्चित की गई । क्षतिपूर्ण होने तक जर्मन सेना का फ्रांस में रहना भी निश्चित हुआ।

युद्ध के परिणाम

सेडान युद्ध ने जर्मनी के एकीकरण के शेष भाग को पूर्ण आहूति प्रदान की । युद्ध समाप्ति से कुछ पहले बिस्मार्क ने दक्षिण जर्मनी के राज्यों को जर्मन संघ में सम्मिलित करने की स्वीकृति ले ली थी । अप्रैल, 1871 में जर्मनी के नये विधान की घोषणा हुई जिसके अनुसार दक्षिण जर्मनी के समस्त राज्य यथा बवेरिया, वुर्टमबर्ग, बादेन तथा हेस का दक्षिणी भाग जर्मनी संघीय साम्राज्य में शामिल कर लिये गये । अब एकीकृत जर्मनी यूरोप का प्रतिष्ठित और शक्तिशाली राज्य बन गया । बिस्मार्क भी न केवल जर्मनी का वरन् यूरोप का ऐसा प्रभावशाली राजनीतिज्ञ बन गया । जिसने अगले 20 वर्षो तक यूरोप पर अपनी छाप छोड़ी ।

इस युद्ध ने इटली के एकीकरण को भी पूर्ण कर दिया । 1870 में जब फ्रांस-प्रश युद्ध छिड़ा तो नेपोलियन तृतीय ने प्रशा के विरूद्ध युद्ध लड़ने के लिए रोम से भी अपनी सेनाएँ बुला ली थीं । इसका लाभ उठाकर सार्डीनिया-पीडमाण्ट के सम्राट विक्टर एमेनुअल ने अपनी सेनाएं भेजकर रोम पर अधिकार कर लिया ।

युद्ध में पराजय के कारण फ्रांस में राजतन्त्र का सदैव के लिए अन्त हो गया । यद्यपि प्रारम्भ में कुछ समय के लिए विभिन्न विचारधारा के लोगों में संघर्ष चलता रहा किंतु अंत में गणतंत्रवादियों की विजय हुई तथा फ्रांस में तृतीय गणतन्त्र की स्थापना हुई। 1870 में स्थापित गणतन्त्र फ्रांस में थोड़े-बहुत परिवर्तनों के साथ आज भी वियमान है ।

इस युद्ध में रुस को भी अप्रत्यक्ष लाभ हुआ । रूस ने फ्रांस को युद्ध में फंसा हुआ देखकर बिस्मार्क के समर्थन पर पैरिस की संधि की धाराओं को तोड़कर काले सागर, में अपने जंगी जहाज उतार दिये तथा सेबास्टपोल की पुन: किलेबन्दी कर इस युद्ध में सर्वाधिक हानि फ्रांस की हुई। उसे युद्ध में भारी हर्जाना के अलावा अल्सास-लोरेन के अत्यधिक समृद्ध प्रदेश देने पड़े । इससे फ्रांस और प्रशा में दीर्घकालीन शत्रुता का जन्म हुआ। यही शत्रुता प्रथम विश्वयुद्ध का एक आवश्यक कारण बनी । हेजन के मतानुसार " 1871 के पश्चात् फ्रैंकफर्ट की सन्धि यूरोप का रिसने वाला फोड़ा बन गया ।' ' फ्रांस कभी भी अपने घोर अपमान को भूल अथवा क्षमा नहीं कर सकता था । कालान्तर में वह बड़ा हर्जाना तो भूल भी जाता किन्तु अल्सास एवं लॉरेन की जनता की सर्वसम्मति एवं कड़े विरोध होने पर शक्ति प्रयोग द्वारा इन प्रदेशों पर अधिकार कर लेना अक्षम्य था और कभी भी भूला नहीं जा सकता था पुनश्च, 'इससे फ्रांस का पूर्वी सीमान्त कमजोर हो गया ।

5.10 इकाई सारांश एवं अभ्यासार्थ प्रश्न

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की घटनाओं के आलोक में यह स्पष्ट होता है राष्ट्रीयता की जिस पवित्र अग्नि को फ्रांस की क्रांति ने प्रज्वलित किया था, वह जर्मनी एवं इटली के एकीकरण के साथ देदीप्यमान होकर अपनी आभाबिखेर रही थी । जर्मनी ने अपने एकीकरण की बाधाओं को अनेक सहयोगियों के साथ बिस्मार्क रूपी नाविक को लेकर जिस बखूबी से पार किया, वह युगान्तकारी घटना बनकर दुनिया के समक्ष आयी । प्रशा रूपी नाव के कन्धों पर जर्मनी के एकीकरण का जो भार था, उसको उसने पूरी ताकत के साथ उठाया । तत्कालीन राजनीतिज्ञ, समझते थे कि जर्मनी का एकीकरण एक ऐसा सुहावना प्रातकालीन दृश्य है जिसके चारों ओर गहरा कोहरा और धुन्ध है कोहरा था- प्रशा का आस्ट्रिया के प्रति आदर भाव और आस्ट्रिया के साथ मैत्री सम्बन्ध; तथा धुन्ध था - असंख्य स्वार्थ व - अनेक छोटे-छोटे राजाओं के परस्पर विरोधी हित अर्थात् जब तक आस्ट्रिया के प्रति कड़ा रूख न अपनाया जाता और जब तक सम्पूर्ण जर्मनी के हितों के आगे छोटी रियासतों के व्यक्तिगत हितो को तिलांजलि न दी जाती, तब तक जर्मनी का एकीकरण असम्भव था । विलियम प्रथम के सिंहासन पर बैठने के साथ जब बिस्मार्क चांसलर बना तभी जर्मनी के एकीकरण का प्रातःकालीन सुहावना दृश्य देखने लगा और प्रशा की नीति में ढूँढता और आत्मविश्वास का पुट प्रविष्ट हुआ।

जर्मनी के एकीकरण की सिद्धि सचमुच 'रक्त और लौह' के जरिए की गई । बिस्मार्क को अपने उद्देश्य प्राप्ति के लिए तीन युद्ध लड़ने पड़े । शस्त्र प्रयोग और रक्तपात राष्ट्रीय एकीकरण के सन्दर्भ में साधन के रूप में प्रयुक्त हुए । वस्तुत: बिस्मार्क के दृढ़ निश्चय, अदम्य साहस तथा कूटनीतिक कुशलता के सामने कोई बाधा स्थायी न बन सकी । यूरोपीय शक्तियाँ अपनी बनाई हुई व्यवस्था को भंग होते हुए देखते रहे परन्तु कोई बिस्मार्क को रोक न सका । बिस्मार्क के काल में पुरातन जर्मनी अपनी नई पहचान बना रहा था । इस समय दार्शनिकों और वैज्ञानिकों का जर्मनी तो पीछे रह गया और खून और लोहे वाला और बहुत बढ़िया फोजों वाला नया जर्मनी यूरोप के महाद्वीप पर हावी होने लगा ।

जर्मनी के एकीकरण में जालवरीन की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है । आर्थिक एकता ने राजनीतिक एकता के लिए मार्ग तैयार कर दिया था । जब आर्थिक हित सबके एक हो गए तो राष्ट्रीय जागृति के विकास को सहायता मिली । आस्ट्रिया इसके महत्व को न पहचान सका । अब प्रशा के आधिपत्य को चुनौती देने वाला कोई नहीं रहा । इस प्रकार शांत किंतु निरंतर आर्थिक दवाब के कारण वे सब राजनीतिक रूकावटें अप्रभावी हो गयीं जिन्होंने जर्मनी के टुकड़े-टुकड़े कर रखे थे ।

यह तथ्य विचारणीय है कि बिस्मार्क ने जर्मनी के एकीकरण में प्रशा के हित सर्वोपरि रखे । इसलिए संयुक्त जर्मनी के निर्माण के दौरान उसने इस बात का पूर्ण ध्यान रखा कि कहीं प्रशा का अस्तित्व जर्मन राष्ट्र में विलीन न हो जाए बिल्क नवोदित जर्मनी प्रशा के सांचे में दला हुआ निकला ।

हमें इस पहलू पर भी विचार करना चाहिए कि क्या बिस्मार्क के एकीकरण का कार्य इटली के एकीकरण के सूत्रधार कवूर से कठिन था? यदि हम इटली के कवूर से बिस्मार्क की तुलना करें यह बात साफ हो जाती है कि बिस्मार्क की स्थिति कई मायनों में कठिन थी । बिस्मार्क को जनता का सहयोग बिल्कुल नहीं मिला जबकि कवूर को इटली की जनता का भरपूर सहयोग मिला । बिस्मार्क को जनता और राज्य की इच्छा के विरूद्ध रक्तपात की नीति के द्वारा वही कार्य करना पड़ा जो कि इटली में शांतिपूर्वक सम्पन्न हुआ । आस्ट्रिया ने जर्मनी में अधिक रूचि ली, परन्तु उसने इटली में उतनी रूचि नहीं ली । इटली में आस्ट्रिया के प्रभाव के क्षीण होने पर वह जर्मनी में अपने प्रभाव को बनाए रखने के लिए चिंतित था । बिस्मार्क की सहायता करने के लिए न तो मेजिनी था और न गेरीबाल्डी । बिस्मार्क को अकेला ही संघर्ष करना पड़ा । इसके अतिरिक्त कई बार अपने ही सम्राट का नीतिगत समस्याओं एवं मुद्दों को लेकर उसे समर्थन प्राप्त करने में कठिनाई हुई ।

अंत में, एक बात और, जर्मनी के एकीकरण में बिस्मार्क के कार्य और उद्देश्य क्या थे? वस्तुत: इस विषय को लेकर इतिहासकारों में मतभेद है । एक विचार यह है कि बिस्मार्क ने जिस नीति का पालन किया उसके आधारभूत सिद्धान्तों और मोटी रूपरेखा को वह सत्तारूढ़ होने से पहले ही तैयार कर चुका था । लन्दन में इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री डिजरैली के साथ हुए अपने एक वार्तालाप में उसने अपने कार्यक्रम के मुख्य भाग-डेन्मार्क से युद्ध, आस्ट्रिया को जर्मनी से बाहर करना तथा फ्रांस से युद्ध करना- खुले शब्दों में बता दिया था । इस प्रकार उसके कार्य पूर्व निर्धारित योजना के अनुकूल थे । किंतु इतिहासकारों का एक वर्ग यह मानता है कि बिस्मार्क ने जो कुछ किया वह किसी पूर्व निर्धारित कार्यक्रम का अंग नहीं था । उसके सभी कार्य पहले से सोची समझी योजना के अन्तर्गत नहीं हुए । इस वर्ग का यह विचार है कि बिस्मार्क ने जो कुछ प्राप्त किया वह विशुद्ध अवसरवादी नीति का परिणाम था । उनका यह सोच है कि एक विशेष प्रकार का राजनीतिक वातावरण बना, कुछ विशिष्ट परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं और बिस्मार्क ने उस वातावरण एवं परिस्थितियों में ऐसा जोड़-तोड़ बैठाया जिससे अधिकतम लाभ उसके राज्य को हुआ । परन्तु उक्त दोनों विचार पूर्ण सत्य नहीं जान पड़ते हैं । परिस्थितियों का आकलन करने पर परिज्ञात होता है कि 1866 तक बिस्मार्क की नीति पूर्व निर्धारित थी, जैसे डेन्मार्क के साथ लड़ाई के बाद श्लेसविग और हाल्सटीन का प्रशासनिक बँटवारा बिस्मार्क ने सोच-विचार के ही किया था ताकि उन दोनों राज्यों की समस्या को लेकर ही आस्ट्रिया के साथ

भविष्य में विरोध तथा युद्ध का बहाना ढूँढा जा सके । परन्तु इस काल के बाद अर्थात् 1870 में जब फ्रांस-प्रशा का युद्ध हुआ तब बिस्मार्क की नीति पूर्ण रूपेण निर्धारित नहीं थी क्योंकि स्पेन के सिंहासन के प्रश्न के समय उभरी राजनीतिक घटनाओं पर बिस्मार्क का नगण्य वश था यह सच है कि अनुकूल परिस्थितियों का बिस्मार्क लाभ उठाने से नहीं चुका । अंत में फ्रैंकफर्ट की सन्धि ने प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी के एकीकरण के कार्य को पूर्णता प्रदान कर जर्मन राष्ट्र में आशा, एवं नई उमंग का संचार किया

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. "भाषणों एवं बहुमत के द्वारा समय की महान् समस्याओं का निराकरण नहीं किया जा सकता है वरन् रक्त एवं लोह की नीति द्वारा ही उनका समाधान होता है ।' ' कथन की समीक्षा कीजिये ।
2. 'बिस्मार्क आधुनिक जर्मनी का निर्माता था ।' विवेचना करो ।
3. 'फ्रांस के साथ प्रशा का युद्ध होना समय की आवश्यकता थी, जो टाली नहीं जा सकती थी ।' जर्मनी के एकीकरण के सम्बन्ध में अपने तर्क सहित मत देकर कथन की पुष्टि कीजिए ।
4. जर्मनी के एकीकरण के विभिन्न चरणों का उल्लेख कीजिए ।
5. टिप्पणियाँ लिखिए:

   (ख) जालवरीन

   (ग) श्लेसविग-हाल्सटाइन समस्या

   (घ) फ्रैंकफर्ट पार्लियामेन्ट

5.11 संदर्भ अध्ययन सामग्री-

केटलबी, सी.डी.एम : आधुनिक काल का इतिहास

गुप्ता, पार्थसारथी (सं) : यूरोप का इतिहास

चौहान, देवेन्द्रसिंह : यूरोप का इतिहास (1815-1919)

लिप्सन, ई0 : 19 वीं तथा 20 वीं सदी का यूरोप

(अंग्रेजी)

Lawson, W.H.: Evolution of Modern Germany

Fisher, H.A.L.: A History of Europe

Grant & Temperley: Europe in Nineteenth & Twentieth Centuries

Mann, Golo : The History of Germany since 1789

Thomson, David: Europe since Napoleon

mRrj inn'k jktf"k V.Mu
eDr fo'ofo|ky;

MAHY-103
आधुनिक विश्व

एम.ए. पाठ्यक्रम
(इतिहास)

खण्ड-2
राष्ट्रवाद, पूँजीवाद एवं समाजवाद–2

इकाई संख्या	पृष्ठ संख्या
इकाई 6 पूर्वी यूरोप में राजनीतिक व राष्ट्रवादी संघर्ष(1856 से 1878 ई.)	5–21
इकाई 7 ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी और फ्रांस के संवैधानिक सुधारों और समाजवादी आंदोलनों का तुलनात्मक अध्ययन	22–77
इकाई 8 रूस में राजनैतिक और आर्थिक आन्दोलन अर्द्धदास प्रथा के अंत तक	78–111
इकाई 9 यूरोप में नवीन शासनतन्त्र	112–135

पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. बी.एस. शर्मा, कुलपति (अध्यक्ष)

प्रो. रविन्द्र कुमार
निदेशक, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं
पुस्तकालय, नई दिल्ली

प्रो. बी.आर. ग्रोवर
पूर्व निदेशक, भारतीय इतिहास
अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रो. एस.पी. गुप्ता
इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम
विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

प्रो. जे.पी. मिश्रा
पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू
विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

प्रो. के.एस. गुप्ता
इतिहास विभाग, मोहन लाल सुखाड़िया
विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

डा. बृजकिशोर शर्मा
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग कोटा
खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

डा. कमलेश शर्मा
इतिहास विभाग, कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

डा. याकूब अली खान
इतिहास विभाग कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम निर्माण दल

डा. गोपीनाथ शर्मा
पूर्व प्रोफेसर
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर(राज.)

डा. एस.के. भनोत
राजकीय डूंगर महाविद्यालय
बीकानेर (राज.)

डा. बी.एल. भादानी
रीडर, इतिहास विभाग अलीगढ़ मुस्लिम
विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

श्री हुकुम चन्द जैन
राजकीय महाविद्यालय
कोटा

पाठ्यक्रम प्रभारी एवं सम्पादक

डा. (श्रीमती) कमलेश वर्मा, इतिहास विभाग, कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो.(डॉ.)बी.के. शर्मा
निदेशक(**अकादमिक**)
संकाय विभाग

योगेन्द्र गोयल
प्रभारी अधिकारी
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन - मार्च 2011 MAHI-02 / ISBN No.-13/978-81-8496-261-1

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इकाई-6

पूर्वी यूरोप में राजनीतिक व राष्ट्रवादी संघर्ष (1856 से 1878 ई.)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 पूर्व की समस्या (1856 से 1870 ई.)
6.2.1 मोल्डेविया व वैलेशिया का एकीकरण
6.2.2 रूस द्वारा पेरिस की संधि का उल्लंघन (1870-71 ई.)
6.3 बल्कान में राष्ट्रीयता का विकास
6.3.1 टर्की की दशा में उत्तरोत्तर गिरावट
6.3.2 सर्वस्लावाद
6.4 पूर्व की समस्या (1870-1878 ई.)
6.4.1 बोसेनिया तथा हर्जेगोविना में विद्रोह
6.4.2 बुल्गेरिया में विद्रोह
6.4.3 यूरोप के देशों की प्रतिक्रिया
6.4.4 एंड्रेसी नोट
6.4.5 बर्लिन मेमोरेण्डम
6.4.6 कुस्तुन्तुनिया सम्मेलन
6.5 रूस-टर्की युद्ध
6.6 सैनस्टीफैनों की संधि
6.6.1 सैनस्टीफेनों संधि की समालोचना
6.7 बर्लिन कांग्रेस (सन 1878 ई.)
6.7.1 बर्लिन कांग्रेस की आलोचना
6.8 सन् 1878 ई. के बाद बल्कान की घटनाएं
6.9 अभ्यासार्थ प्रश्न
6.10 प्रासंगिक पठनीय पुस्तकें ।

6.0 उद्देश्य

इस इकाई मे हमारा उद्देश्य आपको उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सन् 1856 से 1878 ई. तक पूर्वी यूरोप में घटित विविध राजनीतिक एवम् राष्ट्रवादी संघर्षों के सम्बन्ध में संचित जानकारी देना है । इस काल में बल्कान प्रायद्वीप में घटित विविध महत्वपूर्ण घटनाओं का समीक्षात्मक विवेचन करते हुए हम इस दौर के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष बर्लिन कांग्रेस का

समालोचनात्मक विश्लेषण करेंगे । इस इकाई के अध्ययन से आपको निम्नलिखित बातों की जानकारी होगी:-

मोल्डेविया व वैलेशिया में राष्ट्रीयता की भावना के उद्भव में कैसे एक नवीन एकीकृत राष्ट्र रूमानिया को जन्म दिया ।

सन् 1870-71 ई. में फ्रेन्को प्रशियन युद्ध के समय रूस ने पेरिस की संधि की काला सागर से सम्बन्धित धारा की धज्जियां कैसे उड़ा दी?

बल्कान में राष्ट्रीयता के विकास, टर्की की दशा में उत्तरोतर गिरावट व सर्वस्लावाद ने पूर्वी यूरोप को कैसे राजनैतिक व राष्ट्रवादी संघर्ष की ओर अग्रसर किया?

बोसेनिया व हर्जेगोविना में विद्रोह से बुल्गेरिया में विद्रोह तक की घटनाएं व यूरोप की प्रतिक्रिया क्या थी?

बल्कान समस्या को सुलझाने के लिए एण्ड्रेसी नोट, बर्लिन मेमोरण्डम व कुस्तुनतुनिया सम्मेलन में क्या कुछ किया जा सका ?

1877-78 ई. का रूस-टर्की युद्ध व तदुपरान्त हुई सैन स्टीफेनों की संधि क्या थी ?

1878 की बर्लिन कांग्रेस का समालोचनात्मक विश्लेषण कर इस कथन का परीक्षण करना कि क्या यह "सम्मानजनक शांति" थी?

1878 ई. के बाद बल्कान प्रदेश की मुख्य घटनाऐं क्या रही?

6.1 प्रस्तावना

कीमिया युद्धोपरान्त हुई पेरिस की संधि के फलस्वरूप टर्की यूरोपीय राष्ट्रीय व्यवस्था का सदस्य बन गया था । उसने अपनी ईसाई प्रजा के साथ सद्व्यवहार करने का व टर्की की दशा सुधारने का वचन दिया था । परन्तु, यथार्थ में टर्की ऐसा नहीं कर सका । उधर इटली व जर्मनी में हुए राष्ट्रीय आन्दोलनों व एकीकरण प्रयासों का प्रभाव पूर्वी यूरोप के इस बल्कान प्रदेश पर भी अपना असर दिखाने लगा । पूर्वी यूरोप में जहाँ एक ओर सर्बिया बुल्गेरिया व रूमानिया की जनता में राष्ट्रीयता व राजनैतिक स्वतन्त्रता की प्रेरणा जागृत होने लगी वहीं बल्कान प्रायद्वीप में स्लाववाद की भावनायें भी तीव्रता से मुखरित होने लगी । रूस व आस्ट्रिया बल्कान प्रदेश में अपना ध्यान केन्द्रित करने लगे । टर्की की उत्तरोतर खराब होती जा रही दशा व अराजकता ने टर्की साम्राज्य में राष्ट्रवादी गतिविधियों को भड़काने में अहम भूमिका निभाई । रूस ने बल्कान प्रदेश में निवास करने वाले स्लावों को संगठित हो स्वतन्त्रता होने के लिए उकसाना प्रारम्भ किया व सर्वस्लावादी आंदोलन छेड़ दिया । टर्की शासन के विरूद्ध स्लावों का प्रथम विद्रोह सन् 1874 ई. में बोसेनिया व हर्जेगोविना में हुआ । सन् 1876 में बुल्गेरिया के ईसाइयों ने भी टर्की के शासन के विरूद्ध विद्रोह कर दिया । इस बीच बल्कान समस्या का हल निकालने के लिए एण्ड्रेसी नोट और बर्लिन-मेमोरण्डम के उपरान्त 1877 ई. में कुस्तुन्तुनिया सम्मेलन बुलाया गया जो असफल हो गया । जब रूस को अच्छी तरह पता चल गया कि टर्की इसाईयों की दशा सुधारने के लिए जरा भी सचेष्ट नहीं है तो अप्रैल सन् 1877 में उसने टर्की के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी । रूमानिया ने भी रूस का साथ दिया । मौण्टीनिग्रो ने पुन: युद्ध शुरू कर दिया । रूस को सफल होते देखकर ब्रिटेन व आस्ट्रिया यह सोच कर कि कहीं रूस

अकेला ही सम्पूर्ण टर्की को न हड़प जाए, भी युद्ध में कूद पड़े । बदली स्थितियों में रूस ने टर्की से 1878 में सेनस्टीफेनों की संधि कर ली । इसका एक महत्वपूर्ण परिणाम यह निकला कि इस संधि के अनुसार टर्की के सुल्तान ने सर्बिया, मौण्टीनिग्रो व रूमानिया को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर दी । बुल्गेरिया को भी एक स्वशासित राज्य बना दिया गया परन्तु, दिखलाने के लिए उसे टर्की के सुल्तान के निरीक्षण में रखा गया । इस तरह टर्की का यूरोप स्थित राज्य प्राय समाप्त हो गया था । इस संधि ने बुल्गेरिया को तो बहुत कुछ दिया परन्तु ग्रीस, सर्बिया, अल्बानिया व रूमानिया के साथ उचित न्याय नहीं किया गया इस संधि ने रूस के प्रभाव को बल्कान में पुन: स्थापित किया । इस संधि के रूस के सर्वशक्तिशाली राष्ट्र बन जाने का खतरा पैदा हो गया जो आस्ट्रिया-हंगरी एवं ब्रिटेन को स्वीकार्य नहीं था । उन्होंने सेन-स्टीफेनो संधि का विरोध किया व पूर्वी समस्या का हल मात्र एक राष्ट्र रूस द्वारा न किए जाकर सभी राष्ट्रों द्वारा सम्मिलित रूप से किए जाने की मांग की । कतिपय कारणों से जर्मनी ने भी यही चाहा। अत: रूस को इस हेतु मानना पड़ा । इस तरह बिस्मार्क के निमन्त्रण पर एक सम्मेलन जून 1878 ई. में बर्लिन में बुलाया गया । इस बर्लिन संधि के फलस्वरूप सर्बिया, मोण्टीनिग्रो व रूमानिया तीन बाल्कन राज्य पूर्णत: स्वतन्त्र हो गए । एक नवीन राज्य बुल्गेरिया का भी निर्माण हुआ जो नाममात्र का टर्की के अधीन था । इस तरह बर्लिन कांग्रेस ने चार ईसाई राष्ट्रों का निर्माण किया ।

परन्तु सब 1856 ई. में कीमिया युद्ध के अन्त व बोसेनिया, बुल्गेरिया आदि में टर्की के प्रशासन के विरूद्ध विद्रोहों व फिर सेनस्टीफेनों से बर्लिन संधि तक की गतिविधियों के बीच सब 1856 से 1870 ई. के काल में पूर्वी यूरोप के इस बाल्कन प्रायद्वीप में दो महत्वपूर्ण घटनाऐं और घटी जो माल्डेविया व वैलेशिया के एकीकरण तथा रूस द्वारा काला सागर सम्बन्धी धारा के उल्लंघन से सम्बन्ध रखती थी । अस्तु, इस अध्याय में हम अपने अध्ययन की शुरूआत इन्हीं दो घटनाओं से करेंगे व फिर 1871 से 1878 की पूर्वी यूरोप की राष्ट्रवादी व राजनीतिक संघर्ष विषयक घटनाओं का मय पृष्ठभूमि के विश्लेषण करेंगें ।

6.2 पूर्व की समस्या (1856 से 1870 ई.)

6.2.1 मोल्डेविया व वैलेशिया का एकीकरण:-

कीमिया युद्ध के पश्चात पूर्वी समस्या ने पहली गड़बड़ी की सूचना डेन्यूब. के उत्तर में स्थित दो प्रांतो- मोल्डेविया तथा वैलेशिया से आई । सी.डी.एम. कैटल्बी: ए हिस्ट्री ऑफ माडर्न टाइम्स पृ. 313) पेरिस की संधि द्वारा इन दोनों राज्यों को प्रथम प्रथक धार्मिक, कानूनी तथा व्यापारिक स्वतन्त्रता प्रदान की गई थी । इन पर टर्की की नाममात्र की संप्रभुता व अधिकार शेष रहा था । इन राज्यों की प्रजा इससे संतुष्ट नहीं थी तथा दोनों राज्यों का एकीकरण और टर्की के अधिकार में पूर्ण मुक्ति प्राप्त करना चाहती थी । इनमें राष्ट्रीय भावनाओं का विकास व जागरण हो रहा था । दोनों राज्यों के लोग एक ही जाति के थे, उनकी एक ही भाषा थी, एक ही सभ्यता व संस्कृति थी तथा दोनों को अपने अतीत पर गौरव था । वे अपने भाग्य का विधाता स्वयं को बनाना चाहते थे । वे. टर्की तथा रूस के हाथ में शतरंज का मोहरा नहीं

बनना चाहते थे । (हेजन) परन्तु नेपोलियन तृतीय के अतिरिक्त अन्य सभी राष्ट्रों के राजनीतिज्ञ उनकी राष्ट्रीय भावनाओं का समर्थन नहीं करते थे ।

इंग्लैण्ड टर्की के अस्तित्व को बनाए रखना चाहता था । वह इस क्षेत्र में रूस के प्रभाव को भी घटाना चाहता था । मोल्डेविया व वैलेशिया के एकीकृत हो जाने से टर्की की सत्ता के लिए खतरा पैदा हो सकता था व इस क्षेत्र में रूस का प्रभाव भी बढ़ सकता था अतएव इंग्लैण्ड इन दोनों के एकीकरण का विरोधी था । टर्की का सुल्तान तो स्पष्टत: इस एकीकरण के विरूद्ध था चूंकि इससे जहाँ एक और उसकी संप्रभुता व सार्वभौमिकता को आघात पहुँचता वहीं अन्य बल्कान जातियों को भी टर्की के शासन के विरूद्ध विद्रोह करने की प्रेरणा मिलती जो टर्की के अस्तित्व के लिए घातक थी । आस्ट्रिया की नीति भी इस प्रकार के आंदोलनों का विरोध करने की रही थी चूँकि यदि वह ऐसे राष्ट्रीय आंदोलनों को प्रोत्साहन देने लगता तो इससे उसके स्वयं के साम्राज्य में भी राष्ट्रीयता की भावना जोर पकड़ सकती थी व स्थान-स्थान पर विद्रोह व उपद्रव हो सकते थे ।

परन्तु, इन राष्ट्रीय भावनाओं का दमन सम्भव नहीं हो सका । सन् 1859 ई. में मोल्डेविया की राजधानी जैस्सी (Jassy) में तथा वैलेशिया की राजधानी बुखारेस्ट (Bucharest) में राष्ट्रीय संसद (National Parliament) ने सर्व-सम्मति से एक ही व्यक्ति कर्नल अलैक्जेण्डर कौग (Col. Alexander Cough) को अपना शासक चुना व एक नवीन एकीकृत राष्ट्र रूमानिया के जन्म की घोषणा की । बड़ी शक्तियाँ एक बार तो इस घटना से उत्तेजित हो उठी, परन्तु बाद में उन्होंने यथास्थिति को मान्यता दे दी । सन् 1862 ई. में टर्की ने भी इस एकीकरण को मान्यता दे दी । कर्नल कोग ने कई महत्वपूर्ण सुधारों की घोषणा की । चर्च की सम्पत्ति को जब्त कर लिया गया व सामन्त प्रथा को समाप्त कर दिया गया । सन् 1866 ई. में कर्नल कौग के विरूद्ध विद्रोह उठ खड़ा हुआ जिसके परिणाम स्वरूप उसे गद्दी त्याग देनी पड़ी । तदुपरान्त चार्ल्स प्रथम रूमानिया का शासक बना । उसने प्रशा की सहायता से रूमानिया के लिए एक शक्तिशाली सेना तैयार की ।

6.2.2 रूस द्वारा पेरिस की संधि का उल्लंघन (1870-71 ई.)

फ्रेन्कों प्रशियन युद्ध (1870-71 ई.) के समय प्रशा के चान्सलर बिस्मार्क ने रूस की तटस्थता को आवश्यक महसूस किया । उसने इस हेतु रूस को सुझाव दिया कि यदि रूस 1856 की पेरिस की संधि की काला सागर से सम्बन्धित धारा का उल्लंघन करके काला सागर में अपने नौसैनिक अड्डे पुनर्स्थापित कर ले तो प्रशा अन्य देशों को इसके विरूद्ध आवाज न उठाने देगा । उत्साहित होकर रूस ने सेबेस्टोपोल की किलेबन्दी कर ली । युद्ध में फंसा होने के कारण फ्रांस कुछ न बोल सका । इंग्लैण्ड ने भी परिवर्तित स्थिति को स्वीकार कर लिया ।

6.3 बल्कान में राष्ट्रीयता का विकास

कीमिया के युद्ध के उपरान्त सन् 1856 ई. में हुई पेरिस की संधि के फलस्वरूप टर्की यूरोपीय राष्ट्रीय व्यवस्था का सदस्य बन गया था एवं उसने इस बात के लिए भी आश्वस्त किया कि वह अपनी ईसाई प्रजा के प्रति सद्व्यवहार करेगा । टर्की ने एक सीमा तक अपने इस वचन का निर्वाह करने की यथाशक्ति कोशिश भी की । तथापि वस्तुस्थिति यह थी कि टर्की में

निवास करने वाली ईसाई प्रजा को धार्मिक स्वतन्त्रता तो प्राप्त थी किन्तु राजकीय सेवाओं में अच्छे पद अभी भी उन्हें प्राप्त नहीं थे । इसके अतिरिक्त इटली एंव जर्मनी के राष्ट्रवादी आंदोलनों व एकीकरण प्रयासों ने बल्कान प्रदेश में भी राष्ट्रीयता की भावना को तेजी से उभार दिया । सर्बिया, बुल्गेरिया व रूमानिया की जनता भी राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत हो स्वतन्त्रता का सुखद स्वप्न देखने लगी । सन् 1859 ई. में रूमानिया का जन्म इसी का परिणाम था, इसी दौरान बल्कान प्रायद्वीप में सर्वस्लाववाद (Pan-Slavism) की भावना भी प्रबलता से मुखरित हुई । टर्की एवं हैप्सबर्ग साम्राज्य में निवास करने वाले स्लावों में जातीय आधार पर संगठित होने की भावना ने जोर पकड़ा । इस भावना को भड़काने एवं उसे एक भावात्मक आधार प्रदान करने में रूस ने महती भूमिका निभाई । रूस कीमिया की पराजय के उपरान्त से ही बल्कान प्रदेश में निवास करने वाली स्लाव जाति को अपनी तरफ करने के लिए सतत् प्रयत्न रत था । इस बहाने वह तुर्की में कुछ उपद्रव भी मचा सकता था । इस स्थिति के समानान्तर एक नया विकास यह दृष्टिगोचर हुआ कि इटली व जर्मनी से खदेड़े जाने के उपरान्त आस्ट्रिया ने भी बल्कान पर अपनी नजर जमा ली थी एवम् बल्कान में अपना प्रभाव क्षेत्र स्थापित करना उसका एक निहित स्वार्थ बन गया था । अतएव बल्कान, रूस तथा आस्ट्रिया जैसी दो महान हस्तियों का क्रीड़ा स्थल बनता दिखाई दिया ।

6.3.1 टर्की की अवस्था में उत्तरोत्तर गिरावट

कीमिया के युद्ध के उपरान्त यूरोपीय शक्तियों को ऐसा विश्वास था कि टर्की की सरकार एवम् प्रशासन अपने विगत अनुभवों से सबक लेकर अपनी दशा को सुधारने की चेष्टा करेगी । किन्तु, शीघ्र ही यह तथ्य उद्घाटित हो गया कि टर्की की दशा में सुधार तो दूर रहा उसकी अवस्था उत्तरोत्तर खराब होती चली गई । टैक्स कार्नरों द्वारा कर वसूली के समय किसानों पर किये जाने वाले मनमाने अत्याचारों, प्रशासनिक अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, आर्थिक अराजकता से उत्पन्न अफरा तफरी ने टर्की साम्राज्य के पतन की प्रक्रिया को तीव्र कर दिया । इस स्थिति ने टर्की साम्राज्य में राष्ट्रवादी गतिविधियों के लिए न केवल अनुकूलता ही पैदा की वरन् उनकी गतिशीलता को बढ़ाने में भी सार्थक भूमिका निभाई ।

6.3.2 सर्व-स्लाव-वाद

रूस के यूरोपीय क्षेत्रों में निवास करने वाले अधिकांश प्रजा जन एवम पूर्वी बल्कान में निवास करने वाले लोग स्लाव जाति के थे । जब रूस कीमिया युद्ध में असफल हो गया व डार्डेनल्स जलडमरूमध्य के मार्ग से भूमध्यसागर तक नहीं पहुँच पाया तो रूसी दार्शनिक केडिव ने बल्कान क्षेत्र से गुजर कर एड्रियाटिक व इंजीयन सागरों तक पहुँचने का नया मार्ग सुझाया । केडीव का सुझाव था कि सभी बल्कानी स्लॉवों को जातीय आधार पर संगठित कर तुर्की शासन से मुक्त करा दिया जाए और इस प्रकार जब इस क्षेत्र में संतुलन बिगड़ जाए तो स्वतन्त्रता पाने वाले नए राष्ट्रों को रूसी कठपुतली बना कर भूमध्यसागर तक पहुँचने का मार्ग खोल लिया जाये । सभी स्लॉवों को एक झंडे के नीचे संगठित करने की इस सर्व-स्लाववादी विचारधारा को शीघ्र ही प्रसिद्ध रूसी लेखक फेडोर दोस्तोबस्की एवम् प्रचारक एन.आई. देनीलेवस्की ने सेन्टपीटर्सबर्ग में मजबूती से जमा दिया। रूस ने मौण्टीनिग्रों में टर्की द्वारा किये जा रहे स्लावों

के दमन का विरोध किया । सन् 1867 ई. में बेलग्रेड व दूसरे सर्वियन स्थानों से अपनी सेना को हटाने के लिए टर्की पर दबाव डाला । इससे साइबेरिया के स्लाव रूस के प्रति कृतज्ञ हो गए। सन् 1867 ई. में ही रूस ने सेन्टपीटर्सबर्ग में स्लाव जातियों का एक सम्मेलन बुलवाया । इसमें जार अलेक्जेण्डर ने स्लाव जातियों का एक सम्मेलन बुलवाया । इसमें जार अलेक्जेण्डर ने स्लाव जाति के प्रतिनिधियों को "स्लाव भाईयों" कहकर सम्बोधित किया । रूस ने सन् 1970 ई. में स्लाव जाति को अपनी ओर मिलाने के लिए एक महत्वपूर्ण कदम और उठाया रूस ने टर्की की सरकार से एक स्लाव चर्च व धार्मिक नेता की माँग की। सुल्तान ने 10 मार्च, 1870 ई. को इस माँग को स्वीकार किया । रूस के इन कार्यो से बल्कान में रहने वाले स्लाव काफी प्रोत्साहित हुए । सन् 1871 ई. में देनीलोवस्की की पुस्तक "रूस तथा यूरोप" प्रकाशित हुई । इस पुस्तक में एक लम्बे युद्ध का आहवान किया गया जिसका उद्देश्य स्लाव जाति को केन्द्रीय व पूर्वी यूरोप में उचित स्थान दिलाना था । वस्तुत: यह समग्र विचारधारा राजनीति से प्रेरित थी तथा सेन्टपीटर्सबर्ग में कुछ विशेष तत्व इसका उपयोग गिरते हुए तुर्की का शीघ्रातिशीघ्र पतन करने के लिए कर रहे थे ।

6.4 पूर्व की समस्या (1870-1878 ई.)

6.4.1 बोसेनिया तथा हर्जेगोविना में विद्रोह:-

टर्की शासन के विरूद्ध स्लावों का प्रथम विद्रोह सन् 1874 ई. में बोसेनिया व हर्जेगोविना में हुआ । इस विद्रोह के कई कारण थे । वे मौण्टिनिग्रो के निकट थे जहाँ के किसानों ने अपना समग्र जीवन टर्की से संघर्ष में बिताया था । सामाजिक व आर्थिक कठिनाइयाँ, निर्दयी सामन्त प्रथा, अधिकारियों द्वारा किसानों का शोषण व अत्याचार इस विद्रोह के अन्य कारण बने । टर्की की आर्थिक हाल खराब होने से सैनिकों को कई महीनों से वेतन नहीं मिला था इससे वहाँ के सैनिकों में असंतोष व्याप्त था । इससे भी बोसेनिया व हर्जेगोविना के किसानों को काफी प्रोत्साहन मिला । 1874 ई. में दुर्भिक्ष पड़ने से किसानों की हालत और खराब हो गई । इन सभी कारणों से हर्जेगोविना के किसानों ने टर्की के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। रूस और सर्बिया ने विद्रोहियों को गुप्त रूप से सहायता की । किसानों ने टैक्स, देने के इंकार कर दिया । उन्होंने एक टर्की सेना को भी परास्त कर दिया । सर्बिया, मौण्टीनिग्रो, डलमेशिया से विद्रोहियों के प्रति सहानुभूति उमड़ पड़ी । बोसेनिया भी विद्रोह में सम्मिलित हो गया ।

इस विद्रोह से आस्ट्रिया हंगरी के शासक घबरा गये । आस्ट्रिया को भय था कि इस विद्रोह से कहीं आस्ट्रिया के स्लॉव न भड़क उठे । उसने यह प्रस्ताव रखा कि टर्की का सुल्तान अपनी ईसाई प्रजा की दशा को सुधारने के लिए कुछ कार्य करें । आस्ट्रिया-हंगरी के इस प्रस्ताव को जर्मनी, रूस व फ्रांस ने स्वीकार कर लिया किन्तु, ब्रिटेन ने इसे स्वीकार नहीं किया । ब्रिटेन इसे टर्की की सार्वभौमिक सत्ता पर आघात मानता था । टर्की की सरकार ने इसका लाभ उठाते हुए सुधार लागू करने की बात को गंभीरता से नहीं लिया । इंग्लैण्ड के विरोध के कारण रूस, आस्ट्रिया, व हंगरी, जर्मनी आदि राष्ट्र कोई ठोस कदम उठाने में असमर्थ थे । उस समय

ब्रिटिश प्रधानमंत्री डिजरैली था जो टर्की के सुल्तान पर किसी प्रकार का दबाव डालने के भ्रम में नहीं था । यही कारण था कि बल्कान समस्या का कोई हल नहीं निकल सका ।

6.4.2 बुल्गेरिया में विद्रोह:-

इसी बीच सन् 1876 ई. में बुल्गेरिया के ईसाइयों ने भी राष्ट्रीयता की भावना से उत्प्रेरित होकर टर्की के शासन के विरूद्ध विद्रोह कर दिया । बुल्गेरिया चूंकि कुस्तुन्तुनिया के समीप था अतएव इस विद्रोह का प्रभाव कुस्तुन्तुनिया पर भी पड़ने का खतरा था । अत: टर्की की सरकार ने इस विद्रोह को कुचलने के लिए एक बड़ी सेना बुल्गेरिया भेजी । टर्की की सेना ने बड़ी निर्ममता पूर्वक विद्रोह का दमन किया । 12 हजार बुल्गेरियन ईसाई मौत के घाट उतार दिये गये । गाँव के गाँव नष्ट भ्रष्ट हो गये ।

6.4.3 यूरोप के देशों की प्रतिक्रिया:

बुल्गेरिया पर टर्की के इस अमानवीय अत्याचारों के समाचारों ने समूचे ईसाई जगत में रोष पैदा कर दिया । ग्लेडस्टन ने इंग्लैण्ड-वासियों को आह्वान किया कि "टर्की का एकदम उस क्षेत्र से बोरिया बिस्तर गोल कर देना चाहिये जिसे उसने उजाड़ डाला है और अपवित्र कर डाला है ।" परन्तु इंग्लैण्ड के तत्कालीन प्रधानमंत्री डिजरैली ने कुछ भी करने से इन्कार कर दिया । उसने बुल्गेरिया के अत्याचारों को मात्र Coffee House Bubble कहकर पुकारा । वह टर्की को कमजोर नहीं देखना चाहता, था । उसे वहाँ रूस के प्रसार का भय था । कुछ समय पूर्व ही उसने स्वेज कैनाल के शेयर्स भी खरीदे थे । रूस का प्रभाव बढ़ जाने से उसकी स्वेज नहर योजना को खतरा उत्पन्न हो सकता था तथा साथ ही इंग्लैण्ड के भारतीय साम्राज्य की सुरक्षा भी उसके मस्तिष्क में थी । उसने बुल्गेरिया में की गई हत्याओं की संख्या को बहुत कम आँक कर बताया और यह संकेत दिया कि टर्की विरोधी आंदोलन राजनीतिक उद्देश्य से उसने किया गया है जिससे रूस के आक्रमणों व अतिक्रमणों को छिपाया जा सके । परन्तु डिजरैली के ऐसे विचारों के बावजूद इंग्लैण्ड का जनमत टर्की के विरूद्ध था। सर्वाधिक दिलचस्प स्थिति रूसी राजदरबार में थी । सर्वस्लावॅवादी विचारधारा का नेता इगनेटिव (Ignative) था वह रूसी सम्राट जार अलेक्जेण्डर द्वितीय पर हावी होने का प्रयास कर रहा था, जबकि दूसरी ओर शुवालोव (Shuvalov) जो रूस का लन्दन में राजदूत था, सर्वस्लाववादी विचारधारा को दबाना चाहता था। चान्सलर गौरचैकोव (Gorchakov) यद्यपि एक दूरदर्शी व शांतिप्रिय व्यक्ति था परन्तु दिन प्रतिदिन उसका प्रभाव समाप्त होता जा रहा था । तथा इग्नेटिव शक्तिशाली होता जा रहा था । इग्नेटिव रूसी सर्वस्लाववादी विचारधारा के वास्तविक शत्रु आस्ट्रिया के मग्यारों तथा जर्मनों को मानता था, इंग्लैण्ड को नहीं । इग्नेटिव जो कि सन् 1867 से 1870 ई. तक तुर्की में रूसी राजदूत रहा था, बाल्कन में कई ऐसे गुप्त संगठनों से सम्पर्क स्थापित कर चुका था जो कि इस क्षेत्र में तुर्की के प्रशासन को उखाड़ फेंकना चाहते थे । सन् 1875-76 के विद्रोहों में इन संगठनों का प्रत्यक्ष हाथ था ।

आस्ट्रिया का चान्सलर काउन्ट एन्ड्रेसी (Count Andrassy) भी इसका शांतिपूर्ण समाधान चाहता था तथा रूसी चान्सलर गोरचैकोव भी, परन्तु वियना व सैन्टपीटर्सबर्ग में इस

समय सैन्यवादी अधिक प्रभावशील हो चुके थे । अगस्त सन् 1875 में इटली, इंग्लैण्ड, फ्रांस, आस्ट्रिया, रूस तथा जर्मनी के संयुक्त जाँच आयोग ने इस क्षेत्र की स्थिति को असहनीय बताया तथा सुधारों पर जोर दिया । किस प्रकार के सुधार लाए जाए । इस पर तीन सम्राटों के संघ (Three Emperors League) के दो सदस्यों, रूस व आस्ट्रिया में इतना गहरा मतभेद था कि आयोग असफल हो गया । इगनेटिव ने टर्की के सुल्तान अब्दुल अजीज को धमकियां देनी शुरू कर दीं परन्तु टर्की पर इनका कोई असर नहीं पड़ा ।

6.4.4 एण्ड्रेसी नोट:-

झगड़े को बढ़ने से रोकने के लिए एण्ड्रेसी ने सभी पक्षों को एक नोट भेजा जिसमें टर्की के सुल्तान के कुशासन की आलोचना की गई व इस क्षेत्र की समस्याओं का वर्णन करते हुए उनके हाल की एक रूपरेखा प्रस्तुत की गई व सुल्तान से सुधार करने की मांग की गई । सुल्तान ने सुधार करने का वचन दिया किन्तु बल्कान राज्य केवल वचन से संतुष्ट नहीं थे । इंग्लैण्ड के परोक्ष सहयोग के कारण सुल्तान ने इस नोट की परवाह नहीं की । स्थिति की नाजुकता और बढ़ गई ।

6.4.5 बर्लिन मेमोरण्डम-

बिस्मार्क के सुझाव पर मई, 1876 में एंड्रेसी, गोरचैकोव तथा बिस्मार्क की बर्लिन में एक बैठक हुई इस बैठक पर आधारित एक सुधार कार्यक्रम सम्पूर्ण बाल्कन प्रदेश के लिए बनाया गया तथा बर्लिन मेमोरण्डम के रूप में सभी यूरोपीय शक्तियों को भेजा गया । इसे इंग्लैण्ड ने मानने से इन्कार कर दिया चूंकि डिजरौली का कहना था कि इंग्लैण्ड से इस बारे में इससे पूर्व कोई परामर्श नहीं किया गया था । यही नहीं शक्ति प्रदर्शन के लिए इंग्लैण्ड ने अपना जहाज बेडा तुर्की के साथ लगने वाली बेसिका खाड़ी को रवाना कर दिया ।

उपर्युक्त परिस्थितियों से लाभ उठाते हुए सर्बिया व मौंटिनिग्रो ने जून सन् 1876 में टर्की के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी किन्तु, उसकी सेना को टर्की की सेना ने शीघ्र ही परास्त कर दिया । टर्की की सेना तो बैलग्रेड तक पहुँच जाती यदि रूस चेतावनी देकर उसे रोक नहीं देता । डिजरौली को डर था कि कहीं इस युद्ध में रूस न टपक पड़े । उसने जार अलेक्जेण्डर को सूचित किया कि इंग्लैण्ड स्वेज नहर व कुस्तुन्तुनिया में अपने हितों की रक्षा करेगा । 2 नवम्बर 1876 ई. को अलेक्जेण्डर द्वितीय ने उसे विश्वास दिलाया कि उसका कुस्तुन्तुनिया पा बुल्गेरिया को लेने का कोई इरादा नहीं है । 9 नवम्बर 1876 ई. को मेन्शन हाउस में डिजरैली ने जार के वचन के प्रति खुले तौर पर अविश्वास किया । 10 नवम्बर 1876 ई. को अर्थात डिजरैली के भाषण के दूसरे ही दिन जार अलेक्जेण्डर ने खुले तौर पर घोषणा की कि यदि उसे टर्की से अपनी ईसाई प्रजा के संरक्षण के लिए पर्याप्त गारन्टी प्राप्त नहीं हुई तो वह दूसरी यूरोपीय शक्तियों से स्वतन्त्र रहकर कार्यवाही करेगा ।

6.4.6 कुस्तुन्तुनिया सम्मेलन:-

इसी बीच बल्कान समस्या का हल निकालने के लिए कुस्तुन्तुनिया में एक सम्मेलन बुलाया गया । इस सम्मेलन में इंग्लैण्ड से लार्ड सैलिसबरी आया था । इस सम्मेलन में आए

हुए प्रतिनिधियों ने तुर्की साम्राज्य में निवास करने वाली ईसाई प्रजा की दशा को सुधारने के लिए एक योजना तैयार की । उस समय टर्की का सुल्तान अब्दुल हमीद द्वितीय था । जबकि सम्मेलन चल रहा था तभी उसने टर्की के लिए एक उदार संविधान की घोषणा करते हुए सम्मेलन को भी इस आशय की सूचना दी । ऐसी परिस्थिति में सम्मेलन की कोई आवश्यकता नहीं रही । अपने कार्य में विफल होकर सम्मेलन समाप्त हो गया । परन्तु, इसके भंग होने के उपरान्त सुल्तान अब्दुल हमीद ने संविधान की बात सर्वथा भुला दी ।

6.5 रूस-टर्की युद्ध (1877-78 ई.)

जब रूस को भली भांति पता चल गया कि टर्की इसाईयों की दशा सुधारने के लिए जरा भी गंभीर नहीं है तो उसने अपने धैर्य का बांध टूटने पर अप्रैल सन् 1877 ई. को टर्की के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी । तुर्की से युद्ध करने से पूर्व रूस ने आस्ट्रिया के साथ बुडापेस्ट समझौता करके यह तय कर लिया था कि यदि इस युद्ध में आस्ट्रिया तटस्थ रहेगा तो उसे बोसेनिया, हर्जेगोविना के क्षेत्र मिल जायेंगें । ब्रिटेन को मिस्त्र तथा स्वेज नहर की सुरक्षा व कुस्तुन्तुनिया एवं स्टेट्स की स्वतन्त्रता का आश्वासन दिया गया । तदुपरान्त ही रूस ने टर्की के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी । रूमानिया ने भी रूस का साथ दिया । मोण्टिनिग्रो ने पुन: युद्ध शुरू कर दिया । रूसी सेना ने टर्की की सेना को बड़ी तीव्रता से खदेड़ना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु बढ़ती हुई रूसी सेना को वीर टर्की सेनापति ओस्मान पाशा ने प्लेवेना में रोक दिया । यह इस युद्ध की प्रमुख घटना मानी जाती है । उसने मिट्टी की दीवार के पीछे रहकर रूसी आक्रमण को पांच महीनों के लिए निष्क्रिय बना दिया । यद्यपि अंतिम विजय रूसियो की हुई । खाद्य सामग्री के अभाव के कारण ओस्मान को आत्म समर्पण करना पड़ा । इसके बाद रूसी सेना को रोकने वाला कोई नहीं रहा । वह बल्कान पर्वत श्रेणी से थ्रोसिया के मैदान में पहुँचे। वहाँ से उन्होंने कारकोरा समुद्र तट पर डेरा डाल दिया । वहां से कुस्तुन्तुनिया की मीनारें साफ दिखाई देती थी । एशिया में भी सर्वत्र रूसी सेना विजयी रही । समस्त आर्मीनीया उसके आधिकारिक में आ गया । अब्दुल हमीद घबड़ा उठा। उसने संधि के लिए प्रार्थना की । 31 जनवरी 1878 ई. को युद्ध विराम स्थापित हुआ ।

रूस-टर्की युद्ध में रूस की विजय ने यूरोप में खलबली मचा दी । सर्वाधिक घबराहट आस्ट्रिया-हंगरी व ब्रिटेन को थी । उन्होंने देखा कि टर्की रूस का शिकार बन चुका था । यह इन दोनों राष्ट्रों को स्वीकार्य नहीं था । इस भय की सीमा पर एक सेना भेजी और इंग्लैण्ड ने अपना जंगी जहाज बेड़ा दर्रे दानियल (डार्डनल्स) में भेजा । इसके अतिरिक्त इस विशिष्ट स्थिति का सामना करने के लिए ब्रिटिश संसद में 60 लाख पौंड की एक बड़ी धनराशि भी स्वीकृत की। अत: जब रूसी सेना कुस्तुन्तुनिया के निकट पहुंची तो उसने उसे ब्रिटिश बेडे से रक्षित पाया । रूस उस समय इंग्लैण्ड के साथ लड़ने को तैयार नहीं था । इसका कारण यह था कि उसकी सेना थक चुकी थी । उसकी आर्थिक स्थिति भी अच्छी नहीं थी । इसके अतिरिक्त रूस को भय था कि ब्रिटेन के साथ सामुद्रिक लड़ाई लड़ने के अलावा जमीन पर आस्ट्रिया हंगरी के साथ भी लड़ना होगा । ऐसी परिस्थिति में रूस ने टर्की के साथ मार्च, 1878 ई. में सैनस्टीफेनों की संधि की ।

6.6 सैनस्टीफेनों की संधि (मार्च 1878 ई.)

3 मार्च, 1878 ई. को विजेता रूस ने टर्की पर सैनस्टीफेनों नामक नगर में एक संधि थोप दी जो गुप्त थी परन्तु, वह अधिक समय तक गुप्त न रह सकी । इस विवादास्पद संधि को सैनस्टीफेनों की संधि कहा गया

इस संधि के मुख्य बिन्दु निम्नलिखित थे:-

(1) सर्बिया, मौण्टिनिग्रो व रूमानिया को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हुई ।

(2) मोण्टिनिग्रो व रूमानिया को कुछ भू भाग भी दिये गये ।

(3) रूस को टर्की से आर्मीनिया के कुछ भाग मिले और साथ ही उसे बसेरेबिया मिला जो उसने सन् 1856 ई. में खो दिया था ।

(4) रूमानिया से बसेरेबिया का उपजाऊ प्रान्त लेने के बदले दोब्रुजा के अनुपजाऊ प्रदेश के दो तिहाई भाग का रूमानिया को मिलना रूस ने स्वीकार किया ।

(5) बुल्गेरिया को एक स्वशासित राज्य बना दिया गया परन्तु दिखलाने के लिए उसे टर्की के निरीक्षण में रखा गया और उसे टर्की के सुल्तान को वार्षिक कर भी देना था । बुल्गेरिया की सीमाएं उदारतापूर्वक निर्धारित की गई ।

(6) टर्की ने युद्ध के हर्जाने के रूप में रूस को । अरब 40 करोड़ रूबल देने स्वीकार किये ।

(7) टर्की ने डैन्यूब नदी के दुर्गों को तोड़ना स्वीकार किया ।

(8) रूस का कार्स, अरदहान, बेतुम, बयाजीद व बसेरेबिया पर अधिकार हो गया ।

(9) बोसेनिया व हर्जेगोविना को टर्की तथा आस्ट्रिया के संयुक्त नियन्त्रण में स्वशासन प्रदान किया गया ।

(10) कीट, एपीरस व थिसैली में प्रादेशिक आवश्यकतानुसार स्वशासन स्थापित किया जाए व सुल्तान को कुछ अधिकार दिए गये ।

6.6.1 सैन स्टीफेनों संधि की समालोचना:-

यह संधि रूस की महान विजय थी । वह युद्ध व कूटनीति में विजयी रहा । इस संधि का अभिप्राय था यूरोप में टर्की साम्राज्य का विनाश । इससे रूस की शक्ति व प्रभाव बढ़ा । संधि के अनुसार वृहत् बुल्गेरिया का निर्माण हुआ । इस नये राज्य का नियन्त्रण सोलोनिक व कुस्तुन्तुन्िया के सभी मार्गों पर था । इस संधि ने बुल्गेरिया को तो बहुत कुछ दिया किन्तु, ग्रीस, सर्बिया, अल्बानिया व रूमानिया के साथ उचित न्याय, नहीं किया । यह इस संधि की महान भूल थी । रूमानिया इस संधि से बहुत क्षुब्ध थे चूंकि उसे वसेरेविया जैसा उपजाऊ प्रदेश रूस को देना पड़ा । सर्बिया व ग्रीस भी इस संधि से बहुत क्षुब्ध थे चूंकि वे अपने लिए मेसीडोनिया के कुछ भाग हड़पना चाहते थे किन्तु वे ऐसा नहीं कर सके । इस संधि का आस्ट्रिया हंगरी ने भी विरोध किया क्योंकि उसका प्रतिद्वन्द्वी रूस बल्कान में इस संधि के अनुसार सर्वशक्तिशाली बन गया था । वृहत बुल्गेरिया के निर्माण से उसे आस्ट्रिया-हंगरी साम्राज्य का दक्षिण की ओर विस्तार भी अवरूद्ध हो गया था । इंग्लैण्ड तो इससे बिल्कुल ही

विचलित हो उठा । उसे यह स्पष्ट दिखाई देने लगा कि उसका मित्र टर्की एक यूरोपीय राष्ट्र के रूप में समाप्त हो गया है । वह दक्षिण में भूमध्यसागर की ओर रूसी विस्तार भी अवरूद्ध हो गया था । इंग्लैण्ड तो इससे बिल्कुल ही विचलित हो उठा । उसे यह स्पष्ट दिखाई देने लगा कि उसका मित्र टर्की एक यूरोपीय राष्ट्र के रूप में समाप्त हो गया है । वह दक्षिण में भूमध्यसागर की ओर रूसी विस्तार के खतरे से भी आतंकित हो रहा था । केस्पियन सागर की तरह काला सागर भी रूसी झील बनने को था । मैरियर इस सम्बन्ध में अपना यह मत रखते है कि "तुर्की में विस्तार की दिशा में रूस एक महत्वपूर्ण कदम उठा चुका था ।" (मैरियट: यूरोप एंड बियोण्ड, पृ० 58) इससे आस्ट्रिया व इंग्लैण्ड तो बौखला उठे । इसलिए आस्ट्रिया और इंग्लैण्ड ने मिलकर रूस को इस संधि पर पुनर्विचार करने को कहा । इन दोनों राष्ट्रों ने यह प्रस्ताव रखा कि सैनस्टीफेनों की संधि पर पुनर्विचार होना चाहिए चूंकि पूर्वी समस्या का हल एक ही राष्ट्र (रूस) अकेला नहीं कर सकता वरन् इस समस्या का हल सभी राष्ट्र सम्मिलित रूप से करें । रूस जब इसके लिए नहीं माना तो डिजरैली ने 17,000 भारतीय सैनिकों की एक बड़ी फौज माल्टा में भेज दी थी । यह इंग्लैण्ड की ओर से युद्ध का प्रथम संकेत था । इससे रूस डर गया । रूस उस समय लड़ने की स्थिति में भी नहीं था । उसे भय लगने लगा कि कहीं उसका कीमिया युद्ध जैसा हाल न हो जाये । बल्कान में उठते हुए युद्ध के बादलों को देखकर बिस्मार्क भी चिन्तित हो उठा । उसे यकीन था कि युद्ध छिड़ते ही आस्ट्रिया हंगरी भी युद्ध में शामिल हो जायेंगे । यदि जर्मनी किसी दल का साथ देता है तो स्वाभाविक है कि फ्रान्स उसके विरोधी दल का साथ देगा । ऐसा होने पर फ्रांस का एकाकीपन समाप्त हो जायेगा और यह बिस्मार्क कभी भी नहीं चाहेगा । अत: बिस्मार्क ने भी रूस पर इस संधि पर पुनर्विचार के लिए एक कांग्रेस बुलाने की मांग मान लेने के लिए दबाव डाला । इस प्रकार सभी तरफ से दबाव पड़ने पर रूस सैनस्टीफेनों की संधि पर पुनर्विचार करने को तैयार हो गया । बर्लिन में इस हेतु एक कांग्रेस बुलाने का निर्णय लिया गया जिसमें बिस्मार्क ने एक ईमानदार, दलाल की भूमिका निभाई । 13 जून 1878 ई. को बिस्मार्क ने सैनस्टीफेनों की संधि पर पुनर्विचार करने के लिए सभी पक्षों को बर्लिन कांग्रेस का निमन्त्रण भेजा जिसको सभी राष्ट्रों ने स्वीकार कर लिया और इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कांग्रेस प्रारम्भ हुई ।

6.7 बर्लिन कांग्रेस (सन् 1878 ई.)

बिस्मार्क ने यह प्रस्ताव रखा कि यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन जर्मनी में होना चाहिये । उसी के प्रस्ताव पर इस सम्मेलन का आयोजन जर्मनी की राजधानी बर्लिन में किया गया । इसकी अध्यक्षता भी बिस्मार्क ने ही की । इतिहासकार लैंगर ने उसके कार्य को पूर्णत: निष्पक्ष मानते हुए यह तर्क दिया है कि "कांग्रेस के बाद सभी पक्षों ने उस पर: यह आरोप लगाया कि उसने दूसरे का पक्ष लिया था । इससे बिस्मार्क की निष्पक्षता सिद्ध हो जाती है । "(विलियम, एल. लैंगर यूरोपियन एलाईन्सेज एंड एलाईनमैन्ट) इस सम्मेलन में रूस, इंग्लैण्ड़, फ्रांस, आस्ट्रिया, इटली, टर्की, जर्मनी व ग्रीस ने भाग लिया ।

ब्रिटिश प्रतिनिधि मंडल में डिजरैली, सेलिसबरी, तथा ओडो रसल थे । रूसी प्रतिनिधि मंडल का नेता तो गोरचेकोव था किन्तु, वास्तविक शक्ति इगनेटीव के पास थी । आस्ट्रिया का

मुख्य प्रतिनिधि जुल्स एंड्रेसी था जबकि फ्रांस का एम० वाडिंगटन एवं इटली का कोर्टी । सबसे खराब स्थिति टर्की के प्रतिनिधि कार्थोडराय पाशा की थी जो हारे हुए व निर्बल देश का प्रतिनिधित्व कर रहा था ।

कई इतिहासकार जिनमें विलियम लैंगर तथा डब्ल्यू. एन. मैंडलीकोट प्रमुख है, यह मानते हैं कि यह सम्मेलन एक दिखावा मात्र था । समस्त महत्वपूर्ण मुद्दों पर पहले ही डिजरैली ने तुर्की के सुल्तान, रूस तथा आस्ट्रिया-हंगरी से गुप्त समझौते कर लिए थे । बर्लिन कांग्रेस ने तो मात्र इन पर अनुमोदन की मोहर लगाने का कार्य ही किया । जबकि दूसरी ओर कुछ ऐसे इतिहासकार भी हैं जो ऐसा नहीं मानते व यह धारणा रखते हैं कि निर्णय पहले ही नहीं ले लिए गए थे । उदाहरणार्थ इतिहासकार समनर की यह मान्यता है कि सम्मेलन में कई बार महान गतिरोध उत्पन्न हुआ और यह गतिरोध सिद्ध करता है कि कोई पूर्व नियोजित योजना नहीं थी अन्यथा गतिरोध उत्पन्न न होता । एजे.पी. टेलर ने बर्लिन कांग्रेस को छीना झपटी का एक अखाड़ा कहा है । बड़ी शक्तियों की इस भावना ने बिस्मार्क का कार्य और अधिक कठिन कर दिया ।

बर्लिन कांग्रेस के समक्ष सबसे प्रमुख समस्या बुल्गेरिया की थी । वृहत् बुल्गेरिया के निर्माण से उस सम्पूर्ण क्षेत्र में शक्ति सन्तुलन बिगड़ गया था । इससे इटली व आस्ट्रिया की सुरक्षा को खतरा पैदा हो सकता था द्वितीय समस्या बोसेनिया व हर्जेगोविना की थी । गोरचैकोव का प्रथम प्रयास तो सैनस्टीफैनों संधि द्वारा स्थापित वृहत् बुल्गेरिया को बचाना था। यदि यह सम्भव नहीं हो सके तो इसे अधिक से अधिक दो भागों में विभक्त करवाना था जिनमें से कम से कम एक तो रूसी प्रभाव क्षेत्र में आ जाए । परन्तु, सेलिसबरी व डिजरैली बुल्गेरिया को ईजियन सागर से दूर रखकर उसे तीन भागों में बांटना चाहते थे और अंततोगत्वा वे ऐसा करने में सफल हो गए । इसी प्रकार आस्ट्रिया इन क्षेत्रों को एक प्रकार से हथियाने में सफल हो गया । निःसन्देह इस कांग्रेस में डिजरैली पूरी तरह सफल रहा, और उसकी सफलता एक प्रकार से रूस की हार थी ।

बर्लिन की संधि के अनुसार निम्नलिखित निर्णय लिए गए:-

(1) वृहत् बुल्गेरिया को तीन भागों में बांट दिया गया ।(क) डैन्यूब नदी और बल्कान पर्वत श्रेणी के बीच के प्रदेश को बुल्गेरिया का स्वशासित राज्य बना दिया गया । इसे टर्की सुल्तान को वार्षिक कर देना था । (ख) बल्कान पर्वत श्रेणी के दक्षिण पूर्वी भाग को "ईस्टर्न रूमेलिया" कहा गया व इसे अर्द्ध स्वशासित प्रदेश बना कर यह शर्त लगा दी कि वहां टर्की की सेना रहा करेगी और उसका शासक एक ईसाई होगा जिसे टर्की मनोनीत करेगा । (ग) तीसरा भाग मैसीडोनिया था जिसे टर्की के अधीन रखा गया जिससे बल्कान में उसका प्रभाव बना रहे ।

आस्ट्रिया हंगरी को बेसेनिया व हर्जेगोविना पर प्रशासन करने का अधिकार दिया गया तथा नोवी बाजार (जो सर्बिया-मौणिनिग्रो को अलग करता था) भी आस्ट्रिया हंगरी के अधिकार में दे दिया गया ।

(2) सर्बिया, मौण्टिनिग्रो, और रूमानिया सभी को स्वतन्त्र राज्य घोषित किया गया ।

(3) रूस को यूरोप में बसेरेबिया तथा एशिया में बतूम दे दिए गए ।

(4) इंग्लैण्ड को इस क्षेत्र में नौसेन्य अड्डा बनाने के लिए साइप्रस दिया गया । वस्तुत: इस द्वीप पर कुछ समय पूर्व ही इंग्लैण्ड का कब्जा हो गया था जिसे कांग्रेस ने पुष्ट कर दिया ।

(5) रूमानिया की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिए जाने के साथ ही दोब्रुजा का प्रदेश जो पहले रूस के पास था अब रूमानिया को प्रदान कर दिया गया ।

(6) टर्की सरकार की अधीनता में जो यूरोपियन प्रदेश अब रह गये थे और जिनकी आबादी ईसाई थी वे थे सेसिजेनिया, आर्मीनिया, मकदूनिया, और कीट । तुर्की सरकार ने इन प्रदेशों में शीघ्र ही प्रशासनिक सुधार लागू किए जाने का वचन दिया ।

6.7.1 बर्लिन कांग्रेस की आलोचना:-

इसमें कोई सन्देह नहीं कि रूस सन् 1876 में जो कुछ चाहता था वह तो बर्लिन कांग्रेस ने मान लिया परन्तु, सैनस्टीफेनों की संधि में उसने जो कुछ पाया था बह डिजरैली रचित एक षड्यन्त्र द्वारा बर्लिन कांग्रेस में उससे छीन लिया गया । इतिहासकार मैडलीकोट का मत है कि रूस बहुत कुछ खो बैठा परन्तु, उसने पाया भी बहुत कुछ । इसमें कोई सन्देह नहीं कि जितना एक विजयी दश का मिलना चाहिये था उतना रूस को नहीं मिला परन्तु, फिर भी काफी कुछ मिला । रूस में खलबली इसलिए नहीं मची कि बुल्गेरिया बंट गया बल्कि इसलिए मची कि रूस को एक यूरोपियन सम्मेलन में एक अपराधी मान कर खड़ा किया गया तथा यह अपमान प्रदेश खोने की हानि से अधिक दुखदायी था । प्रोफेसर स्टेवरी आनोस के अनुसार न केवल रूस इस कांग्रेस में भार खा गया अपितु तुर्की को भी भारी निराशा हुई चूंकि उसे दिए गये सभी वचन भंग कर दिए गए । यही हाल इटली का हुआ चूंकि उसका प्रतिनिधि मंडल भी खाली हाथ रोम लौटा । यद्यपि बिस्मार्क ने इस सम्मेलन में स्वयं को एक "ईमानदार दलाल" कहा था किन्तु, रूस ने उस पर इंग्लैण्ड का पक्ष लेने का आक्षेप लगाया तथा यूरोप में सर्वस्लाववादियों के पतन के साथ ही वहां के कुछ विशेहा तत्वों ने जिन्हें "निहिलिस्ट" कहा गया, जार के विरूद्ध संघर्ष आरम्भ कर दिया । प्रोफेसर लैंगर के अनुसार, अपनी कूटनीति की असफलता का कारण रूस स्वयं था जिसने सैन स्टीफेनों जैसी महान भूल की थी । वस्तुत: बर्लिन के अखाड़े में हुई छीना झपटी में रूस का मार खा लेना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी। तुर्की के साथ हुए अन्याय के सम्बन्ध में लिखते हुए अंग्रेजी लेखक सर चार्ल्स डिल्क ने इटली के विदेश मंत्री का एक वाक्य लिखा है जो इस प्रकार है, “ बर्लिन में हर आदमी एक दूसरे को कुछ न कुछ दे रहा था जो वास्तव में किसी तीसरे की जायदाद थी ।"

बर्लिन की संधि यूरोप के कूटनीतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी । यह निकट पूर्व की जटिल समस्या को सुलझाने की दिशा में एक उत्साहवर्धक कदम था हालांकि इसमें कूटनीतिज्ञों को आंशिक व अस्थाई सफलता ही मिल पाई । यदि यह कहा जाये तो अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं होगा कि "यह संधि एक प्रकार का समझौता मात्र थी और प्रत्येक समझौते के समान इसमें भी कई कठिनाईयों के बीज विद्यमान थे । "वास्तव में इस सन्धि ने पूर्व की समस्या को और अधिक उलझा दिया । टर्की के सुल्तान का कुशासन वैसे ही जारी रहा, बुल्गेरिया, मैक्डोनिया तथा अन्य बाल्कन राज्यों की राष्ट्रीय भावनाओं को बड़ी ठेस पहुंची, रूस

के मनसूबों पर पानी फिर गया । आस्ट्रिया व सर्बिया की शत्रुता का जन्म हुआ, तुर्की साम्राज्य का विघटन रूक सका और साइप्रस द्वीप की प्राप्ति से ब्रिटेन को कोई विशेष सैनिक लाभ भी प्राप्त नहीं हुआ ।

इस सम्मेलन में लिए गये निर्णयों का विश्लेषण करते समय निम्नलिखित बिन्दुओं को दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता :-

(क) यद्यपि डिजरैली ने बड़े ही गर्व से यह शेखी भर दी की "मुझे प्रसन्नता है कि यूरोप में पुन: टर्की विद्यमान है । "तथापि वास्तविक स्थिति यह थी कि टर्की का पतन रुक नहीं सका था । इस लूट में स्वयं इंग्लैण्ड ने भी साइप्रस हड़प लिया था ।

(ख) रूस जर्मनी से नाराज हो गया । उसने महसूस किया कि "बिस्मार्क नें आस्ट्रिया व ब्रिटेन का अधिक साथ दिया और बर्लिन का सम्मेलन बिस्मार्क का रुस के प्रति विश्वासघात था । रूस धीरे-धीरे जर्मनी से दूर हटने लगा । तीन सम्राटों का संघ भी इसी के फलस्वरूप टूटने लगा क्योंकि रूसी सर्वस्लाववादियों ने बिस्मार्क को धोखेबाज कहना शुरू कर दिया ।

(ग) बर्लिन सम्मेलन ने यूरोप में जर्मनी व बिस्मार्क की लोकप्रियता को बढ़ा दिया तथा यूरोपिय कूटनीति बर्लिन व बिस्मार्क के व्यक्तित्व के चारों और घूमने लगी ।

(घ) इस सन्धि ने बुल्गेरिया की राष्ट्रीयता को गहरा धक्का पहुंचाया । पूर्वी रूमेलिया को इससे पृथक कर दिया जाना कोई बुद्धिमता का कार्य नहीं था चूंकि दोनों भागों में बल्गर ही निवास करते थे । यही कारण था कि यह विभाजन अस्थाई सिद्ध हुआ था व कालान्तर में इन दोनों में बल्गर ही निवास करते थे ।

(ङ) रूमानिया इस संधि से इसलिये असन्तुष्ट था कि उससे बसेरेबिया का उपजाऊ इलाका छीन कर उसे दोब्रुजा का बंजर इलाका दे दिया गया था ।

(च) बोसेनिया, हर्जेगोविना तथा नोवी बाजार आस्ट्रिया को मिलने से एक नवीन समस्या उत्पन्न हो गई । बोसेनिया व हर्जेगोविना में स्लाव जाति के लोग रहते थे व इनके द्वारा समुद्र तक पहुंचा जा सकता था । अत: सर्बिया की दृष्टि इन पर गड़ी हुइ थी । वोसेनिया, हर्जेगोविना को आस्ट्रिया-हंगरी द्वारा ले लिया जाना सर्बिया को सहन नहीं हुआ । इसी समय से सर्बिया आस्ट्रिया-हंगरी का विरोधी बन गया । सर्बिया का आकर्षण धीरे-धीरे रूस की ओर बढ़ने लगा और इस प्रकार एक नवीन बल्कान समस्या आ खड़ी हुई जो कालान्तर में प्रथम विश्वयुद्ध का प्रत्यक्ष कारण बनी ।

(छ) मैक्डोनिया (मैसीडोनिया) के साथ भी अन्याय किया गया । इसे टर्की के अत्याचारों पर फिर से छोड़ दिया गया ।

(ज) बर्लिन की संधि से जर्मनी को एक नया मित्र मिला और वह था टर्की । बर्लिन कांग्रेस में टर्की सुल्तान नें यह भलीभांति समझ लिया कि उसका सच्चा शुभाकांक्षी तो जर्मनी ही है । आस्ट्रिया व रूस तो उसके परम्परागत शत्रु थे यहां तक कि इंग्लैण्ड ने भी अपनी सेवाओं के लिए साइप्रस का द्वीप से लिया था । फ्रांस व इटली भी क्रमश: टयूनिस और त्रिपोली उससे मांग रहे थे । किन्तु बिस्मार्क ने तुर्की सै कुछ भी नहीं किया । उसने सचमुच टर्की की दृष्टि में

एक ईमानदार दलाल का काम किया था । अत: टर्की सुल्तान नें जर्मनी के प्रति कृतज्ञता का अनुभव किया । इसी समझ से जर्मनी का प्रभाव टर्की सुल्तान पर स्थापित होना प्रारम्भ हुआ और कालान्तर में इस मैत्री के कारण निकट पूर्व में अनेक समस्याएं पैदा हुई ।

(झ) "सम्मान सहित शान्ति" - डिजरैली जब बर्लिन कांग्रेस के सम्मेलन से लौटा तो उसने लन्दन में यह घोषणा की कि मैं सम्मान के साथ शान्ति लाया हूं । रानी विक्टोरिया में डिजरैली को डयूक की उपाधि देकर सम्मानित किया ।

इतिहासकारों ने इसके पक्ष व विपक्ष में अनेक तर्क देकर डिजरैली के इस कथन को विवादग्रस्त बना दिया है । इसे सम्मानजनक शान्ति कहे जाने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं:-

(अ) सम्मान सहित इसलिये कि डिजरैली इस सन्धि में ब्रिटिश हितों की पूर्ण सुरक्षा कर सका तथा शान्ति इसलिये कि इस सन्धि के उपरान्त सन् 1912 ई. तक यूरोप में कोई बड़ा युद्ध नहीं हुआ ।

(आ) बाल्कन प्रायद्वीप में रूसी भालू के बढ़ते हुए प्रभाव को अंकुशित व नियन्त्रित किया गया । यही नहीं सैनस्टीफेनों की संधि द्वारा रूस ने कालासागर में जिस प्रकार अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास किया था उसे समाप्त कर दिया गया।

(इ) डिजरैली ने अपनी दृष्टि में टर्की के विघटन को रोक दिया था व पुन: नष्टप्राय टर्की को पुनर्जीवन प्रदान करने में बर्लिन कांग्रेस एक सीमा तक सफल दिखाई दी।

परन्तु कतिपय इतिहासकार इसे डिजरैली द्वारा तथाकथित ' 'सम्मानजनक शान्ति' ' मानने के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते है:-

(अ) बर्लिन कांग्रेस द्वारा स्थापित शान्ति एक भंयकर तूफान आने से पूर्व की शान्ति थी । वास्तव में इस कांग्रेस के निर्णयों ने यूरोपीय पंक्तियों में पारस्परिक वैमनस्य को बढ़ा दिया था । ऊपर से दिखाई दे रही इस शान्ति के मूल में प्रथम विश्वयुद्ध के अंकुर प्रस्फुटित हो रहे थे ।

(आ) इंग्लैण्ड व आस्ट्रिया के अतिरिक्त अन्य कोई भी राष्ट्र इस सम्मेलन में सन्तुष्ट नहीं हुआ। अस्तु निश्चय ही यह यूरोप की शान्ति के लिये अपशकुन था ।

(इ) पूर्वी समस्या का कोई स्थाई व सर्वमान्य हल नहीं निकल पाया । बल्कान प्रदेश के ईसाई राज्यों की राष्ट्रीय भावनाओं को किसी ने भी गम्भीरता से नहीं लिया ।

(ई) डिजरैली का यह कहना कि उसने टर्की को समाप्त होने से बचा लिया, गलत व भ्रामक सिद्ध हुआ। टर्नर की मान्यता है कि "उसने टर्की के विघटन को लम्बा व पीड़ादायक बना दिया । सन्धि से पूर्व टर्की के अधीन 18000000 यूरोपियन थे और अब इनकी संख्या केवल मात्र 6000000 रह गई । रूमानिया, बुल्गेरिया, युनान, सर्बिया, मौण्टिनिग्रो पूर्ण स्वतन्त्र हो गये । बोसेनिया व हर्जेगोविना भी उससे छिन गये ।

(उ) डिजरैली का यह कथन कि इंग्लैण्ड को गौरवपूर्ण सफलता मिली भी पूर्णत: सत्य नहीं कहा जा सकता । साईप्रस की खराब जलवायु के कारण उसका कोई सैनिक लाभ नहीं उठाया जा सका । वह न तो सेनास्थल बन सका और न ही नौसेन्य अड्डा ।

(ऊ) रूस के प्रभाव का विस्तार जब बल्कान में अवरूद्ध हो गया तब रूस ने अपना ध्यान मध्य एशिया में अपना प्रभुत्व क्षेत्र विस्तृत करने में लगाना शुरू कर दिया । धीरे-धीरे उसका साम्राज्य विस्तार फारस व अफगानिस्तान की सीमा तक पहुंच गया इससे ब्रिटेन के भारतीय साम्राज्य को खतरा पैदा हो गया ।

(ए) बुल्गेरिया के विभाजन के पश्चात इंग्लैण्ड को अपनी नीति बदलनी पड़ी । जब बुल्गेरिया व पूर्वी रुमेलिया के एकीकरण का प्रश्न उठा तो इंग्लैण्ड ने इसका समर्थन किया ।

अत: डिजरैली की यह डींग कि "मैं सम्मानजनक शान्ति लाया हूँ में आंशिक सत्य ही था ।

प्रो. ए. जे. पी. टेलर ने इस सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त किया है कि 'बर्लिन सम्मेलन ने यूरोप के इतिहास में एक विभाजक रेखा खींच दी । सम्मेलन से पूर्व के तीस वर्ष पूर्व तक संघर्ष व विद्रोह हुए परन्तु उसके बाद के चालीस वर्षो तक शान्ति रही । " प्रो. टेलर ने आगे लिखा है कि 1913 ई. तक यूरोप की सीमा में न तो कोई परिवर्तन हुआ और न ही 1912 ई. तक गोली चली । जो दो युद्ध सर्बिया और बुल्गेरिया में 1885 ई. में तथा टर्की व यूनान में 1897 ई. में लड़े गये थे वे दुर्घटनाएं मात्र थी । बर्लिन सम्मेलन उसी प्रकार के समझौते का प्रतिनिधित्व कर रहा था जो कि पहले वियना में हुआ था । 1815 व 1878 ई. में मैटरनिख व फिर बिस्मार्क ने नई प्रणाली को जन्म दिया और दोनों की प्रणालियों को चुनौती का सामना करना पड़ा । एक ओर पराजय का प्रतिशोध लेने के लिये फ्रान्सिसी प्रयत्न और दूसरी ओर रूस व आस्ट्रिया के बीच बल्कान युद्ध । (ए.जी.पी. टेलर : स्ट्रगल फॉर मास्ट्री इन यूरोप, पृ. 252)

6.8 सन् 1878 ई. के बाद बल्कान की घटनाएं

सन् 1878 ई. के पश्चात सन् 1885 ई. तक यूरोप के इस पूर्वी भाग (बल्कॉन प्रदेश) में कोई विशेष रूप से महत्वपूर्ण घटनायें घटित नहीं हुई । रूमानिया व सर्बिया प्रगति पर अग्रसर हुए । ग्रीस' ने भी उनका अनुसरण किया । कैटल्बी के शब्दों में, "अगले 20 वर्षो में पूर्वी प्रश्न मुख्य रूप से बुल्गेरिया के रूप में जागृत रहा । यद्यपि मिस्त्र, आरमीनिया में किसी सीमा तक व यूनान कीट व सर्बिया नें भी पूर्वी समस्या को जीवित रखा । सी.डी.एम कैटल्बी: ए हिस्ट्री ऑफ माडर्न टाइम्स, पृ 323, बर्लिन कांग्रेस का विरोध सर्वप्रथम बुल्गेरिया में हुआ । वास्तव में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम बीस वर्षो का इतिहास बर्लिन सन्धि की धाराओं को भंग किये जाने तथा उससे उत्पन्न अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का इतिहास था । बुल्गेरियन पूर्वी रूमेलिया को बुल्गेरिया से पृथक किये जाने से क्षुब्ध थे अस्तु, उनके एकीकरण प्रयास जोरों से प्रारम्भ हो गए । सन् 1885 ई. मैं पूर्वी रूमेलिया व बुल्गेरिया पूर्वी रूमेलिया को बुल्गेरिया से पृथक किये जाने से क्षुब्ध थे अस्तु, उनके एकीकरण प्रयास जोरों से प्रारम्भ हो गए । सन् 1885 ई. में पूर्वी रूमेलिया व बुल्गेरिया का एकीकरण पूरा हो गया । प्रिंस अलैक्जैण्डर ने संगठित बुल्गेरिया के प्रिंस की उपाधि धारण की । टर्की व रूस ने इसका भारी विरोध किया । आश्चर्यजनक बात थी कि जिस वृहत् बुल्गेरिया के निर्माण का सेनस्टीफैनों की संधि में रूस

जबरदस्त हिमायती रहा था वहीं अब बुल्गेरिया के एकीकरण का विरोध कर रहा था । वस्तुत: इसका कारण यह था कि वहाँ का शासक अब रूस के जार की कठपुतली न बना रहा । इंग्लैण्ड के बल देने पर टर्की के सुल्तान अब्दुल हमीद ने 1886 ई. में संगठित बुल्गेरिया को मान्यता दे दी ।

इसके पश्चात भी पूर्वी समस्या की जटिल व्याधि किसी न किसी रूप में यूरोपीय राजनीति व अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उथल-पुथल मचाती रही । सर्बिया द्वारा बुल्गेरिया पर आक्रमण, बुडापेस्ट की सन्धि, आर्मीनिया हत्याकाण्ड, कीट-बर्की युद्ध, बर्लिन बगदाद रेल्वे निर्माण, तरूण तुर्की क्रान्ति, इटली-टर्की युद्ध, बोसेनिया संकट, और फिर बल्कान युद्धों तक का इतिहास पूर्वी समस्या को किसी न किसी रूप में जीवन प्रदान करता रहा व इन समग्र घटनाओं ने सन् 1914 में होने वाले प्रथम विश्व-युद्ध की भूमिका का निर्माण करने में परोक्ष-अपरोक्ष भूमिका निभाई ।

6.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 1856 से 1870 ई. के बीच पूर्व की समस्या की मुख्य घटनाओं का विवेचन करें।
2. सन् 1870 से 1878 ई. तक बल्कान प्रायद्वीप में घटित राष्ट्रवादी संघर्ष का आलोचनात्मक परीक्षण करें ।
3. सैनस्टीफेनो की सन्धि की पृष्ठभूमि का विवेचन करते हुए बताये कि यह रूस के लिये किस प्रकार अत्यन्त लाभकारी सन्धि थी?
4. सैनस्टीफैनों की सन्धि क्या थी? बर्लिन की सन्धि ने इसका स्थान क्यों ले लिया?
5. 1878 ई. की बर्लिन कांग्रेस के निर्णयों का आलोचनात्मक परीक्षण करें ।
6. "मैं सम्मान सहित शान्ति लाया हूं" डिजरैली के इस कथन के संदर्भ में 1878 की बर्लिन कांग्रेस का विश्लेषणात्मक विवेचन करें ।

6.10 प्रासंगिक पठनीय पुस्तकें

सी.डी.एम कैटल्बी : ए हिस्ट्री ऑफ माडर्न टाईम्स

हेजन : माडर्न यूरोपीय हिस्ट्री

मैरियट : यूरोप एण्ड बियॉण्ड

विलियम. एल. लैंगर : यूरोपियन एलाईन्सेस एण्ड एलाईनमैंट

एजे.पी. टेलर : स्ट्रगल फॉर दी मास्ट्री इन यूरोप

इकाई सं. 7

ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी और फ्रांस के संवैधानिक सुधारों और समाजवादी आंदोलनों का तुलनात्मक अध्ययन

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 ग्रेट ब्रिटेन में संवैधानिक सुधारों का युग

7.2.1 1800 ई. के आस-पास ग्रेट ब्रिटेन में लोकतन्त्रीय

7.2.2 19 वीं सदी के आरंभ में ग्रेट ब्रिटेन में अलोकतंत्रीय व्यवस्थाएं

7.3 सुधारों के लिए संघर्ष

7.4 1832 ई. का संवैधानिक सुधार

7.4.1 निर्वाचन क्षेत्रों से संबंधित धाराऐं

7.4.2 मताधिकार सम्बन्धी धाराऐं

7.4.3 सुधार अधिनियम का महत्त्व

7.5 चार्टिस्ट आन्दोलन

7.5.1 चार्टिस्ट आन्दोलन से तात्पर्य

7.5.2 चार्टिस्ट आन्दोलन के कारण

7.5.3 आंदोलन का आरंभ

7.5.4 मताधिकार की पात्रता

7.5.5 आंदोलन की असफलता के कारण

7.6 1867 का सुधार अधिनियम

7.6.1 सुधार अधिनियम की धाराऐं

7.6.2 1867 के सुधार अधिनियम की कमियां

7.6.3 सुधार अधिनियम की समीक्षा

7.7 ग्लैडस्टेन का मंत्रीकाल तथा सुधारों का युग

7.7.1 गुप्त मतदान विधेयक

7.7.2 1884 संवैधानिक सुधार अधिनियम

7.7.3 मताधिकार की पात्रता

7.7.4 सुधार अधिनियम की समीक्षा

7.8 1911 के संवैधानिक सुधार

7.8.1 1911 के संवैधानिक सुधार अधिनियम की धाराऐं

7.8.2 अधिनियम की समीक्षा

7.9 इंग्लैण्ड में समाजवाद का विकास तथा श्रमिक हितकारी अधिनियम

7.9.1 1833 के फैक्टरी अधिनियम की धाराऐं

7.9.2 अधिनियम का महत्त्व

7.10 इंग्लैण्ड में श्रमिकों के हित में सुधारों का युग प्रारम्भ

7.11 नवउदारवाद

7.12 इंग्लैण्ड में फेबियनवाद व श्रमिकों के लिए सुधार

7.12.1 फेबियनवाद की विशेषताऐं

7.12.2 उग्रश्रमसंघवाद का प्रबल होना

7.13 मजदूर दल का गठन

7.14 बीसवीं सदी के प्रारंभ में इंग्लैण्ड में श्रमिक सुधार

7.15 स्त्री मताधिकार

7.16 सारांश

7.2 बूर्बो वंश की पुनर्स्थापना

7.2.1 लुई 18 वें द्वारा संवैधानिक घोषणा पत्र

7.2.1.1 राजा

7.2.1.2 संसद

7.2.1.3 प्रतिनिधि सभा

7.2.1.4 धर्म

7.2.1.5 मौलिक अधिकार

7.2.1.6 समीक्षा

7.2.2 उदारवाद का पुन: आरंभ तथा निर्वाचन सुधार

7.2.2.1 देकाजे के नेतृत्व में चुनाव सम्बन्धी सुधार

7.2.3.0 चार्ल्स दशम तथा प्रतिनिधि सभा

7.2.4.0 फ्रांस में संसदीय सरकार की पुनरावृत्ति

7.2.4.1.0 लुई फिलिप के संवैधानिक सुधार

7.2.4.1.1 सामन्तों की सभा को उच्चाधिकारियों की सभा में बदलना

7.2.4.1.2 प्रतिनिधि सभा

7.2.4.1.3 मताधिकार को व्यापक बनाना

7.2.4.1.4 समीक्षा

7.2.5.0 फ्रान्स में समाजवाद का उदय

7.2.5.1 समाजवाद के विकास के कारण

7.2.5.2 समाजवाद के प्रवर्तक-सेंट साइमन

7.2.5.3 चार्ल्स फाउरिए

7.2.5.4 लुई ब्लां

7.2.6.0 द्वितीय गणतन्त्र

7.2.6.1 अस्थायी सरकार के कार्य

7.2.6.2 नवीन संविधान

7.2.6.3 समीक्षा

7.2.7.0 1852 का नवीन संविधान

7.2.7.1 संवैधानिक परिवर्तन

7.2.8.0 द्वितीय साम्राज्य

7.2.8.1 नेपोलियन तृतीय के सुधार

7.2.9.0 तृतीय गणतन्त्र

7.2.9.1.0 तृतीय गणतन्त्र का संविधान-राष्ट्रपति

7.2.9.2 मन्त्रीमण्डल

7.2.9.3.0 संसद

7.2.9.3.1 सिनेट

7.2.9.3.2 प्रतिनिधि सभा

7.2.9.3.3 राष्ट्रीय-सभा

7.2.9.3.4 समीक्षा

7.3.0 जर्मनी में संवैधानिक सरकार की स्थापना के प्रयास

7.3.1 निर्बल संसद की व्यवस्था

7.3.2.0 जर्मनी में राष्ट्रवाद का उदय

7.3.2.1 कार्ल्सबाड के आदेश

7.3.2.2 जर्मनी में बौद्धिक क्रान्ति तथा राष्ट्रीयता और उदारवाद का विकास

7.3.3.0 फ्रेंकफोर्ट संसद का अधिवेशन

7.3.3.1 फ्रेंकफोर्ट संसद की असफलता

7.3.3.2 असफलता के कारण

7.3.4.0 एर्फर्ट का अधिवेशन

7.3.5.0 फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ द्वारा दूसरा संविधान स्वीकृत करना

7.3.6.0 राष्ट्रीय उदारवाद का जन्म

7.3.7.0 विलियम प्रथम का गद्दी पर बैठना तथा बिस्मार्क का शक्ति में आना

7.3.7.1 बिस्मार्क के राजनीतिक विचार

7.3.8.0 जर्मनी का एकीकरण तथा नवीन संविधान

7.3.8.1 सम्राट

7.3.8.2.1 साम्राज्य परिषद्

7.3.8.2.2 लोक सभा

7.3.9.0 जर्मनी में समाजवादी आन्दोलन तथा श्रमिक सुधार

7.3.9.1 आन्दोलन के प्रबल होने के कारण

7.3.9.2 बिस्मार्क व समाजवादियों में संघर्ष के कारण

7.3.9.3 समाजवादी दल का दमन

7.3.9.4 समीक्षा

7.3.10.0 राज्य समाजवाद

7.3.10.1 श्रमिकों के लिए जीवन-बीमा कानून

7.3.10.2 समीक्षा

7.3.11.0 1890 के उपरान्त जर्मनी का संवैधानिक विकास

7.4 बोध प्रश्न

7.5 संदर्भ ग्रंथ

7.0 उद्देश्य-

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप ग्रेट ब्रिटेन, फ्रान्स और जर्मनी में 1815 से 1917 ई. के अन्तराल में हुए संवैधानिक विकास सुधारों से सम्बन्धित निम्नांकित तथ्यों से भली-भांति अवगत हो सकेंगे:-

1. ग्रेट-ब्रिटेन में संवैधानिक सुधार विकासवाद के रूप में क्रमिक गति से हुए।
2. फ्रान्स में संवैधानिक सुधारों का आरम्भ उसकी 1789 की क्रान्ति के फलस्वरूप उत्पन्न क्रान्तिकारी विचारों के परिणाम स्वरूप हुआ।
3. लोकतन्त्र में अधिक विश्वास न रखने वाले जर्मन बुद्धिजीवियों द्वारा अपने विभक्त जर्मनी को एकीकृत करा कर एक शक्तिशाली सार्वभौम सम्राट के नेतृत्व में संवैधानिक सुधारों का प्रयास किया गया।

7.1 प्रस्तावना-

1815 से 1848 तक के युग की प्रमुख ऐतिहासिक घटना उदारवादी व राष्ट्रवादी तत्वों का रूढ़ीवादी शक्तियों से संघर्ष है। उस समय यूरोप में परिवर्तन लाने वाले दो प्रमुख तत्व थे। प्रथम तत्व के रूप में फ्रान्स की राज्य क्रान्ति से उत्पन्न स्वतन्त्रता व समानता की भावनाएं थीं तथा दूसरे तत्व के रूप में यूरोप का तत्कालीन बढ़ता हुआ औद्योगिक विकास था। इसी पृष्ठभूमि में राष्ट्रवाद व उदारवाद का जन्म हुआ। वे दोनों रूढ़िवाद के लिए महान चुनौती बन गये। उदारवाद संसदीय शासन-प्रणाली (Parliamentary form of Government) तथा विधि के शासन (Rule of Law) के पक्ष में था जिससे वह संवैधानिक शासन सुधारों के माध्यम से तानाशाही शासन (Dictatorial Rukle) से अपने अस्तित्व की रक्षा कर सके। यद्यपि ग्रेट ब्रिटेन में संसदात्मक शासन-प्रणाली को स्थापना वहां की रक्त-हीन क्रान्ति (Bloodless Revolution) के फलस्वरूप हो गई थी तथापि वह संसद जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती थी। संसद के उच्च सदन लार्ड्स-सभा (House of lords) में राजा द्वारा मनोनीत कुलीन घराने के लोग बैठते थे और यही उच्च-सदन निम्न-सदन कॉमन-सभा (House of Commons) से अधिक शक्तिशाली बना हुआ था। यह उच्च सदन निम्न सदन द्वारा

प्रस्तावित विधेयकों (Bills) को अधिनियमों (Acts) में रूपान्तर नहीं होने देता था । 18 वीं सदी में इंग्लैण्ड में इस प्रकार के राजनीतिक विचारकों का आविर्भाव हुआ जो संसद के उन अभावों से अवगत थे । वे उच्च सदन की शक्तियों में कमी करके निम्न सदन को जनता का सही रूप में प्रतिनिधि सदन बनाना चाहते थे । उन राजनीतिक विचारकों में विल्कीस (Wilkes), ड्यूक ऑफ रिचमाण्ड व चार्ल्स फॉक्स अधिक उल्लेखनीय हैं । फ्रांस की क्रान्ति की समाप्ति पर इंग्लैण्ड के रूढ़िवादी (Conservatives) के विचारों में भी परिवर्तन आया । इसीलिए उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही इंग्लैण्ड में महत्वपूर्ण संवैधानिक सुधारों का प्रारम्भ हो गया और वे सुधार अपनी क्रमिक गति से प्रथम विश्व-युद्ध तक होते रहे ।

इंग्लैण्ड के वर्ड्सवर्थ तथा कॉलरिज जैसे विख्यात कवियों ने फ्रान्स की क्रान्ति में स्वतन्त्रता के नवीन युग का आभास किया था । परन्तु व्हिग दल (Whig Party) के नेता बर्क'ने 1790 में ही अपनी पुस्तक "फ्रान्स की क्रान्ति पर विचार" (Reflections on the French Revolution) में इस क्रान्ति को विधि सम्मत (Legal) न बताकर विनाशक (Destructive) बताया । वहीं व्हिग दल के अन्य नेता चार्ल्स फॉक्स ने इस क्रान्ति की सराहना की । वास्तव में फ्रान्स की क्रान्ति कोई साधारण व स्थानीय घटना नहीं थी । फ्रान्स का आधुनिक इतिहास वस्तुत: इस महान क्रान्ति से ही आरंभ होता है । इस क्रान्ति ने फ्रांस की राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था को पूर्णत: उद्वेलित कर दिया । इस क्रान्ति ने स्वतन्त्रता व समानता की भावना को सृजित कर फ्रांस के सामान्य लोगों में वहां के राजतन्त्र तथा सामन्तों के विरूद्ध क्रान्तिकारी भाव उत्पन्न कर दिया । इस प्रकार फ्रांस में मध्य-युगीन व्यवस्था समाप्त हो गई और उसका स्थान नवीन युग ने लिया । इस परिवर्तित वातावरण के संदर्भ में इतिहासकार सी.डी. हैजन ने लिखा है फ्रान्स की क्रान्ति ने राज्य के सम्बन्ध में एक नवीन धारणा को जन्म दिया, राजनीति तथा समाज के विषय में नवीन सिद्धान्त प्रतिपादित किये और जीवन का एक नया दृष्टिकोण सामने रखा।-- फ्रांस के लोग लुई चौदहवें के दैवी अधिकार के सिद्धान्त (Divine right of Kingship) को विस्मृत कर इस धारणा में विश्वास करने लगे कि जनता को अपने आप शासन करना चाहिए और शासन केवल जनता के लिए ही नहीं वरन जनता द्वारा भी होना चाहिए । अत: फ्रान्स के मध्यम वर्ग के लोग व किसान प्रमुख रूप से इस दिशा में जागरूक हुए । वे अपने इन विचारों का क्रियान्वयन करने में जुट गये । यह सत्य है कि नेपोलियन के पतन के उपरान्त (1815) भी फ्रान्स के क्रान्तिकारी राजतन्त्र (Monarchy) को समूल नष्ट नहीं कर सके; पर इस दिशा में वे सतत प्रयत्नशील अवश्य रहे। यही कारण था कि 1815 के उपरान्त ही फांस के लोग अपने देश को प्रजातन्त्रीय बनाने हेतु निरन्तर संवैधानिक सुधार करने का प्रयास करते रहे और अन्त में 1871 में उन्होंने तृतीय गणतन्त्र (The Third Republic) की स्थापना कर इस दिशा में सफलता प्राप्त की ।

फ्रान्स की क्रान्ति से पूर्व जर्मनी यूरोपीय देशों में राजनीतिक दृष्टि से सर्वाधिक विभक्त देश था । इसमें छोटे-छोटे 300 राज्य थे । उन राज्यों में प्रशा अधिक उल्लेखनीय था । जर्मनी राजनीतिक दृष्टि से विखण्डित होते हुए भी डाइट (Diet) के माध्यम से संयुक्त था । डाइट में 300 राज्यों के प्रतिनिधि एक ही मंच पर एकत्रित अवश्य होते थे; परन्तु वे सदस्य जनता

द्वारा निर्वाचित न होकर जर्मनी के राजवंशों एवं शासकों द्वारा मनोनीत होते थे । अत: यह स्वाभाविक ही था कि वे प्रतिनिधि राष्ट्रीय हितों की अवहेलना कर राजवंशों के संकीर्ण स्वार्थों की वकालत करते थे । परन्तु नेपोलियन ने 1806 में जर्मनी पर आक्रमण कर वहां आधुनिक युग का सूत्रपात किया । उसने जर्मन संघ राज्यों की संख्या 200 से घटाकर 31 कर दी जिसके कारण विभक्त जर्मनी स्वाभाविक रूप से कुछ संगठित हो गया । इस नवीन 'राइन-परिसंघ' ने जर्मनी में राष्ट्रवाद का बीजारोपण किया । पवित्र रोमन सम्राट के पद की समाप्ति हो गई । इससे जर्मन लोगों में अपनी मातृभूमि, अपनी संस्कृति के प्रति चेतना उत्पन्न हुई । इस राष्ट्रवाद के विकास में जर्मन विद्वानों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । उनमें 'स्टीन, हर्डर, काण्ट, हीगल व फिक्टे विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । जर्मनी की इस सांस्कृतिक दार्शनिक जाग्रति ने जर्मनी के लोगों में कौम के नाम पर देश-प्रेम (Racial Patriotism) को उग्र बनाया तो वियना-कांग्रेस के निर्णय ने जर्मनी के एकीकरण का मार्ग प्रशस्त कर दिया । इस एकीकरण के सन्दर्भ में तथा जर्मनी को एक सुदृढ़ राष्ट्र के रूप में गठित करने के उद्देश्य से इसमें उन्नीसवीं सदी में अनेक संवैधानिक सुधार हुए ।

7.2.0 ग्रेट ब्रिटेन में संवैधानिक सुधारों का युग

7.2.1 1800 ई. के आस-पास ग्रेट ब्रिटेन में लोकतन्त्रीय विशेषतायें:-

1800 ई. के आस-पास ग्रेट ब्रिटेन अन्य देशों की तुलना में अधिक लोकतन्त्रीय माना जाता था । उस समय वहां राजतन्त्र अवश्य विद्यमान था; परन्तु ब्रिटिश सम्राट संसद के अधिनियमों को निलम्बित करने या निषेध करने, न्यायाधीशों को पदच्युत करने और बिना अभियोग चलाये ग्रेट ब्रिटेन के नागरिकों को जेल भेजने के अपने अधिकार खो चुके थे । ब्रिटिश लोगों ने विचार-प्रकाशन और भाषण की पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त करली थी । ब्रिटेन का सम्राट अन्य राजाओं की भांति सार्वभौम एवं स्वेच्छाचारी नहीं रहा था । उसकी शक्तियां कानूनों द्वारा सीमित कर दी गई थीं । लोगों को धार्मिक स्वतन्त्रता भी प्राप्त हो गई थी । कैथोलिकों को टैस्ट अधिनियम (Test Act) की आड़ में अब अधिक नहीं सताया जाता था । राजनीतिक दलों का आविर्भाव हो चुका था और राजनीतिक दलों के बहुमत के आधार पर ही मन्त्रीमण्डल का गठन किया जाता था । संसद प्रणाली प्रचलित हो चुकी थी और ब्रिटेनवासी सगर्व अपनी संसद को अन्य देशों की संसदों की जननी समझते थे । इस प्रकार की वैध राजसत्ता की स्थापना ग्रेट ब्रिटेन में फ्रांस की राज्य-क्रान्ति से काफी पूर्व हो चुकी थी । इसीलिए उदार विचारों के लोग ग्रेट ब्रिटेन की शासन पद्धति को आदर्श समझते थे । फ्रान्स के राजनीतिक विचारक मान्टस्क्यू (Montesque) ने भी ब्रिटिश शासन पद्धति की बडी प्रशंसा की थी ।

7.2.2 19 वीं सदी के आरंभ में ग्रेट ब्रिटेन में अलोकतन्त्रीय व्यवस्थाएं:-

उपर्युक्त परिस्थितियाँ स्पष्ट करती हैं कि ग्रेट ब्रिटेन 19 वीं सदी के आरंभ से पूर्व ही लोकतन्त्र में काफी बढ़ चुका था । परन्तु इतिहासकार हेज (J.Hayes) व मून (P.T Moon) का कहना है कि निरंकुश शासन को समाप्त करने वाला इंग्लैण्ड ही प्रथम देश था; परन्तु

प्रजातन्त्र की देर से स्थापना करने वाले देशों में यह भी एक था।[1] 'इस कथन का यही तात्पर्य है कि उपर्युक्त परिस्थितियों के उत्पन्न हो जाने के उपरान्त भी ग्रेट ब्रिटेन में पूर्णत: लोकतन्त्रीय व्यवस्था की स्थापना नहीं हुई थी । जब हम संवैधानिक सुधारों के अधिनियम बन जाने के उपरान्त 1900 ई. के ग्रेट ब्रिटेन की तुलना 1800 ई. के ग्रेट ब्रिटेन से करते हैं तो हमें विदित होता है कि उस काल का ग्रेट ब्रिटेन अलोकतन्त्रीय ही था । कुछ उदारवादी व आमूल परिवर्तनवादियों का कथन था कि 1688 की 'रक्तहीन कांति' से केवल मालिक बदल गये हैं । उसकी सरकार अब भी एकतन्त्रीय कम और अल्पतन्त्रीय (Oligarchy) अधिक थी; किन्तु वह लोकतन्त्रीय बहुत नहीं थी । अपेक्षाकृत बहुत थोड़ी संख्या वाले धनी जमींदारों और व्यापारियों का यहां अल्पतन्त्र शासन चलता था । ब्रिटिश संसद का उच्च सदन (House of Lords) तो बहुत ही कम लोकतन्त्रीय था । इसके सदस्य इंग्लैण्ड के संस्थापित चर्च के उच्च पदाधिकारी और कुलीन सरदार होते थे । ये कुलीन सरदार (Lords) आजीवन हाउस ऑफ लार्ड्स के सदस्य बने रहते थे और उनकी मृत्यु के उपरान्त उनके ज्येष्ठ पुत्र उनकी कुर्सी संभाल लिया करते थे । अत: इनके निर्वाचन का कोई प्रश्न ही नहीं था जो कि लोकतन्त्र में परम आवश्यक होता है । धार्मिक उच्चाधिकारियों की इस उच्च सदन में नियुक्ति सम्राट स्वयं करता था । इसी प्रकार ब्रिटिश संसद का निम्न सदन (House of Commons) भी अधिक लोकतन्त्रीय नहीं था । इस सदन का कलेवर अलोकतन्त्रीय होने के साथ-साथ सीमित भी था । वोट देने का अधिकार बहुत कम लोगों को था । औद्योगिक विकास के कारण देश के निर्वाचन क्षेत्रों की आबादी में निरन्तर परिवर्तन हो रहे थे । अनेक नगर उजड़े गये थे तो कई ग्रामों ने विशाल नगरों का रूप धारण कर लिया था । औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व आबाद नगर जो अब उजड़ गये थे- उन्हें 'उजड़े नगर' (Rottel Boroughs) की संज्ञा दी गई थी । इन उजड़े नगरों' से आबादी का कोई ध्यान न रखते हुए प्रतिनिधि कामन-सभा में निर्वाचित होकर आते थे । इसके विपरीत बर्मिंघम, मैनचेस्टर और लीड्स जैसे महान औद्यौगिक नगरों से वहां की जनसंख्या के अनुपात मैं बहुत ही कम प्रतिनिधि आते थे । निर्वाचन क्षेत्रों के 'पुनर्विभाजन' की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था । सांसदों को कोई वेतन तथा भला नहीं मिलता था । अत: वे भ्रष्ट हो जाते थे । मताधिकार प्राप्त करने के लिए बड़ी सम्पत्ति का स्वामी होना आवश्यक था । प्रतिनिधियों के चयन में मालिक जमींदारों व उद्योगपतियों का प्रमुख हाथ होता था । मजदूर संगठनों पर प्रतिबन्ध थे । मताधिकार का प्रयोग गुप्त-मतदान प्रणाली से नहीं होता था । अत: रिश्वत व भ्रष्टाचार के माध्यम से वोटों का खुले आम क्रय-विक्रय होता था । स्त्रियों को तो उस समय मताधिकार का प्रश्न ही नहीं था । यही कारण था कि उस समय बालिंग पुरूषों में से भी केवल पांच फी सदी पुरूषों को ही मताधिकार प्राप्त था । इसीलिये पिट ने कहा था कि “18 वीं सदी में संसद जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती थी वरन् उजड़े हुये नगर तथा धनी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती थी।”

1 “England was the first country to destroy autocracy but it was one of the established democracy Hayes & Moon.

7.3.0 सुधारों के लिए संघर्ष-

ग्रेट ब्रिटेन मैं संवैधानिक सुधारों के लिये आवाज अमेरिका के स्वतन्त्र हो जाने व फ्रांस की राज्य क्रान्ति के आरम्भ होते ही प्रबल रूप से उठने लगी थी । परन्तु नेपोलियन के आक्रमण की आशंका से सहारे टोरी दल की सरकार सुधारों की मांग को दबाती रही । 1815 में वियना-कांग्रेस के उपरान्त यूरोप में प्रतिक्रियावाद पुन: प्रबल हो गया । इंग्लैण्ड के टोरी दल के लोग भी अनुदार थे । कि वे शासन-सुधारों के प्रबल विरोधी थे और प्रशासन में नेपोलियन के पतन के उपरान्त भी उन्हीं का प्रभुत्व बना हुआ था । 1830 में ड्यूक ऑफ वेलिंगटन ने प्रधानमन्त्री की हैसियत से कॉमन-सभा में कहा कि "ब्रिटिश शासन प्रणाली सर्वश्रेष्ठ है जो कि मानव-बुद्धि से सृजित की जा सकी है और जिसे समस्त देश का विश्वास प्राप्त है ।" परन्तु फ्रांस की 1830 की क्रान्ति के फलस्वरूप इंग्लैण्ड का लोकमत सुधारों के पक्ष में इतना प्रबल हो गया था कि ड्यूक ऑफ वेलिंगटन सुधारों को नहीं रोक सका । इसके विपरीत 1830 में उसे प्रधान-मन्त्री पद से त्याग-पत्र देना पड़ा । उसका स्थान विग-दल के नेता (Grey) ने लिया ।

7.4.0 1832 ई. का संवैधानिक सुधार-

जैसाकि हम इससे पूर्व स्पष्ट कर आये हैं कि ग्रेट-ब्रिटेन में संवैधानिक सुधार क्रान्ति के रूप में शीघ्रता से नहीं हुये वरन क्रमिक गति से हुये हैं । अत: 1831 के मार्च मास में जब रसल ने कामन-सभा में सुधार की शर्तो को पढ़ा तो सदस्यों ने उत्साहवर्धक जवाब नहीं दिया । रसल ने 32 उजड़े नगरों (Rotten Boroughs) के नाम गिनाये जिनका कि प्रतिनिधित्व समाप्त करना था । हाउस ऑफ कामन्स के सदस्यों ने इसका घोर विरोध किया और यह अपने तीसरे वाचन में बहुत कम मतों से गिर गया । इस अवसर पर लार्ड मैकाले (Macaulay) ने कहा कि देश के संतप्त विचार सुधार चाहते हैं और यदि इसे पूरा नहीं किया जावेगा तो क्रान्ति हो जावेगी । विधेयक के गिर जाने पर ग्रे (Grey) ने सम्राट विलियम चतुर्थ ने सदन को भंग करने का अनुरोध किया । चुनाव में हिग-दल ने 100 सदस्यों का बहुमत प्राप्त किया । 23 जून 1831 को जान रसल ने वहीं सुधार विधेयक कामन-सभा में पुन: प्रस्तुत किया । सदन में वह 109 मतों से पारित हो गया परन्तु उच्च सदन (House of Lords) में वह 41 मतों से अस्वीकृत हो गया । विधेयक के अस्वीकृत होने पर ग्रे के मन्त्री-मण्ड़ल ने त्याग-पत्र नहीं दिया। इसके विपरीत सम्राट को उच्च सदन में विग दल के पिअर्स (Peers) इतनी संख्या मनोनीत करने को कहा जिससे की टोरी (Tory) दल का बहुमत समाप्त हो जावे । सम्राट ने इन्कार करने पर ग्र ने त्याग-पत्र दे दिया । इस पर विलियम चतुर्थ ने वेलिंगटन को सरकार बनाने को आमन्त्रित किया । वैंलिगटन के सरकार बनाने में असफल रहने तथा जनता में भारी आक्रोश का आभास कर विलियम चतुर्थ के लार्ड्स सभा में हिगदल के सदस्य मनोनीत करने को सहमत

1 "That the English system of government was the best that could be devised by the wit of man and had the entire confidence of the country." - Duke of Wellington

हो गया । ग्रे ने पुन: मन्त्री-मण्डल का गठन किया । वेंलिगटन की दूरदर्शिता से विधेयक उच्च सदन में पारित हो गया और सम्राट ने 7 जून 1832 को विधेयक के अपनी सहमति प्रदान कर उसके अधिनियम में पारित कर दिया । जब विधेयक उच्च सदन में प्रस्तुत हुआ तो वेलिंग्टन अपने दल के 100 सदस्यों (Peers) के साथ सदन से बाहर चला गया । वेलिंग्टन के इस चतुर-कार्य से विधेयक भी पारित हो गया और सम्राट को लार्ड्स सदन में हिग दल के पियेरस भी मनोनीत नहीं करने पड़े ।

7.4 1832 के संवैधानिक सुधार की धाराएं-

यह सुधार अधिनियम दो भागों में विभक्त था- इसका प्रथम भाग तो निर्वाचन क्षेत्रों से सम्बन्धित था तथा दूसरा मताधिकार से सम्बन्धित था ।

7.4.1 (अ) निर्वाचन क्षेत्रों से सम्बन्धित धाराएं-

1. 200022 से कम आबादी वाले निर्वाचन क्षेत्रों से प्रतिनिधि निर्वाचन अधिकार ले लिया और उन्हें पड़ौसी काउण्टी से मिला दिया ।

2. 2000 से 4000 तक की आबादी वाले निर्वाचन क्षेत्रों को एक प्रतिनिधि के निर्वाचन का अधिकार दिया गया ।

3. उक्त व्यवस्था से 143 स्थान कामन-सभा में रिक्त हो गये । उन रिक्त स्थानों को नवीन निर्वाचन क्षेत्रों (काउण्टी तथा बेरा) में बांट दिया गया ।

7.4.2 (ब) मताधिकार सम्बन्धी धाराएं-

1. बरो में मताधिकार प्रणाली में व्याप्त असमानताएं समाप्त कर दी गई । 10 पौण्ड वार्षिक लगान देने वाले व किराया देने वालों को मताधिकार दे दिया गया ।

2. काउण्टियों में 40 शिलिंग वार्षिक लगान देने की भूमि रखने वाले फ्री होल्डर को मत देने का अधिकार बना रहा । इसके अलावा 10 पौण्ड वार्षिक लगान देने वाले कापी होल्डर को मताधिकार मिल गया ।

3. 50 पौण्ड वार्षिक लगान देने वाले लीज होल्डर तथा 50 पौण्ड वार्षिक लगान देने वाले साधारण किसान को भी मताधिकार मिल गया ।

उपर्युक्त धाराओं के अतिरिक्त इस सुधार अधिनियम में यह भी व्यवस्था की गई थी कि प्रत्येक चुनाव से पूर्व मतदाता सूची तैयार की जावे और मत देने का अधिकार उन्हीं को दिया जावे जिनका नाम उस मतदाता सूची में अंकित हो ।

7.4.3 सुधार अधिनियम का महत्व-

इस सुधार अधिनियम का ग्रेट-ब्रिटेन के संवैधानिक इतिहास में महान् महत्व है । कुछ इतिहासकारों ने तो इसे दूसरी 'रक्तहीन' क्रांति बताया है । इस सुधार अधिनियम के पारित हो जाने से सरकार पर मध्यम वर्ग व भू-स्वामी अभिजात वर्ग का सम्मिलित नियन्त्रण हो गया । इस सुधार अधिनियम के उपरान्त मध्यम वर्ग का ग्रेट ब्रिटेन की राजनीति में प्रभाव बढ़ता ही चला गया जिससे भविष्य में संवैधानिक सुधारों का मार्ग सरल हो गया । इस अधिनियम से

मत प्रदान करने के लिये सम्पति सम्बन्धी योग्यताएं कम कर दी गई । इसके फलस्वरूप मताधिकार का क्षेत्र बढ़ गया । उजड़े नगर का प्रतिनिधित्व समाप्त कर दिया । इससे लोकतन्त्रीय व्यवस्था में सुधार हुआ और इस प्रकार यह भविष्य में होने वाले परिवर्तनों से पहले ही अवगत कराने में सफल हुआ। 1867, 1884 व 1911 में जो संवैधानिक सुधार हुये उनका श्रेय इसी सुधार अधिनियम को जाता है । इन्हीं परिवर्तनों के कारण प्रोफेसर ग्राण्ट एवं टम्परले ने इस अधिनियम को 1688 की क्रान्ति का पूरक बताया है । कुछ इतिहासकारों ने इसे'नवीन मेगना कार्टा' (New Magna Carta) बताया। रेमजे म्यूर (Ramasay Muir) का कहना है कि इसने समस्त राष्ट्र की श्रेष्ठता को दृढ़ता पूर्वक स्थापित कर दिया क्योंकि इसने लार्डस-सदन के सदस्यों की इच्छा के विरूद्ध मताधिकार को विस्तृत भी किया तो साथ में ही निर्वाचन-क्षेत्रों को मताधिकार से वंचित भी किया। यह अधिनियम इस बात की स्पष्ट पुष्टि करने वाला सिद्ध हुआ कि संप्रभुता अन्तिम रूप से कामन-रूप से कामन-सभा में सन्निहित रहती है जो कि जनता का प्रतिनिधित्व करती है न कि लार्ड्स-सदन में ।

परन्तु हमारा यह समझ लेना कि यह अधिनियम ग्रेट-ब्रिटेन में पूर्ण रूप से लोकतन्त्र की स्थापना में सफल रहा-तथ्य से परे होगा । इतिहासकार हैजन (C.D.Hazen) का मानना है कि 1832 का सुधार विधेयक प्रजातन्त्रीय मान नहीं था परन्तु इसने हाउस ऑफ कॉमन्स के सच्चे रूप में प्रतिनिधि-सदन अवश्य बना दिया।[1]

7.5.0 चार्टिस्ट आन्दोलन

7.5.1 चार्टिस्ट आन्दोलन से तात्पर्य-

1832 के सुधार अधिनियम का जनसाधारण का कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। मजदूर वर्ग को इस अधिनियम ने कोई लाभ नहीं पहुंचाया। पूंजीपति वर्ग, जिनके हाथ में 1832 के सुधार अधिनियम के फलस्वरूप और राजनीतिक शक्ति आ गई थी, ने मजदूरों की दशा सुधारने के लिये कुछ भी नहीं किया । खानों में कार्य करने वाले पुरूष स्त्री व बच्चों की अति दयनीय अवस्था थी ।[2] अत: मजदूरों ने यह सोचना आरम्भ कर दिया कि जब तक शासन हमारे हाथों में नहीं आता हमारा उद्धार नहीं हो सकता । समाजवादी भावनाओं का विकास फ्रान्स की क्रान्ति के फलस्वरूप हो गया था। भाग्यवश रोबर्ट ओवन जैसा ओजस्वी वक्ता मजदूरों को प्राप्त हो गया । अत: रोबर्ट ओवन की प्रेरणा से मजदूरों ने सभाएं करना आरम्भ किया । 1834 में मजदूरों ने हडतालें भी कीं । ह्गि दल की सरकार इन हड़तालों से परेशान अवश्य हुई परन्तु वह सुधार करने को उद्यत नहीं हुई। इस पर मजदूरों ने 1838 ई. में एक याचिका (अधिकार-पत्र) तैयार की जिसमें दस लाख हस्ताक्षर थे । अत: जब मजदूरों ने अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिये सरकार के पास इस प्रकार हस्ताक्षर कराकर चार्टर (याचिका) भेजना आरम्भ किया तो वह चार्टिस्ट आन्दोलन (Chartist Movement) कहलाया ।

7.5.2 चार्टिस्ट आन्दोलन के कारण

1. औद्योगिक क्रान्ति का विकास- इस क्रान्ति के फलस्वरूप इंग्लैण्ड में मजदूरों की संख्या दिनों दिन बढ़ रही थी और उनकी आर्थिक अवस्था उत्तरोत्तर दयनीय हो रही थी ।

2. मजदूरों की दयनीय अवस्था- मजदूरों के निवास के लिये न तो स्वस्थ मकान थे और न उनके बच्चों की शिक्षा के लिये स्कूल । दिन में उन्हें 12 से 14 घंटे काम करना पड़ता था । खानों में अधिकतर बच्चे नियुक्त किये जाते थे क्योंकि उन्हें पुरूषों व स्त्रियों के अनुपात में कम पैसा देना पड़ता था ।

3. समाजवादी विचारधारा का प्रसार- रोबर्ट ओवन को इंग्लैण्ड के समाजवाद का जनक कहा जाता है । उसकी प्रेरणा से मजदूरों में समाजवादी भावना प्रखर हुई । अत: उन्होंने अपने पूंजीपति मालिकों के शोषण से बचने के लिये सरकार में अपना प्रतिनिधित्व अधिकार प्राप्त करने हेतु प्रोत्साहित किया ।

4. फ्रान्स की 1830 की क्रान्ति- फ्रान्स की दूसरी क्रान्ति (1830) ने भी इंग्लैण्ड के मजदूरों को अपने राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने हेतु प्रोत्साहित किया ।

7.5.3 आन्दोलन का आरम्भ-

वैसे तो इंग्लैण्ड के मजदूर अपने जीवन सम्बन्धी सुविधाओं के लिये संघर्ष 19 वीं सदी के आरम्भ से ही कर रहे थे, परन्तु उनका आन्दोलन 1832 के सुधार अधिनियम के उपरान्त अधिक प्रखर हुआ । 1833 में फैक्टरी अधिनियम पारित कर सरकार ने उन्हें सन्तुष्ट करना चाहा- पर वे तुष्ट नहीं हुये । 1834 में रोबर्ट ओवन के प्रयासों से 'ग्राण्ड नेशनल कन्सोलिडेटेड ट्रेड यूनियन' की स्थापना की गई । इस संगठन के नेतृत्व में अनेक हड़ताल हुइ - पर उन्हें सफलता नहीं मिली । 1836 में विलियम लावेट (William Lovett) के नेतृत्व में एक श्रमिक संगठन स्थापित किया गया । इस संगठन का उद्देश्य उद्योग-धन्धों की अवस्था में परिवर्तन करना नहीं वरन अपने मालिकों के समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त करना था । अत: लावेट ने एक 'अधिकार-पत्र' (Charter) तैयार करवाया । उस अधिकार-पत्र में निम्नलिखित मांगे उल्लिखित थीं:-

7.5.4 मताधिकार की पात्रता:-

(1) प्रत्येक वयस्क को मताधिकार प्राप्त हो । वयस्क की आयु 21 वर्ष रखी गई ।

1 "The Reform Bill of 1832 Was not a democratic measure. But it made the House of Commons a truly representative body." -C.D. Hazen

2 "The terrible conditions in which men, women and children then worked underground. Surpassed even the worst scenes in the early factories" -Spencer Walpole "History of England" V. IV

(2) निर्वाचन गुप्त-मतदान प्रणाली से हो ।

(3) संसद के निर्वाचन प्रतिवर्ष होने चाहिये ।

(4) कामन-सभा की सदस्यता प्राप्ति के लिये सम्मति की शर्त नहीं होनी चाहिये ।

(5) निर्वाचन क्षेत्रों का पुनर्विभाजन होना चाहिये और उनकी आबादी के अनुपात से प्रतिनिधि चुने जाने चाहिये ।

(6) सांसदों को निश्चित वेतन दिया जाना चाहिये ।

1839 में उपर्युक्त मांगों का एक 'अधिकार-पत्र' संसद में भेजा गया । गंभीर विचार करने के उपरान्त वह अस्वीकृत कर दिया गया । 1840 में 'नेशनल चार्टर एसोसियेशन' की स्थापना की गई। उसकी शाखाएं इंग्लैण्ड के प्राय: सभी नगरों में स्थापित की गई । विलियम लावेट के नेतृत्व में तो यह संघ अहिंसावादी ही बना रहा, परन्तु आयरलैंड निवासी फीयरगस ओ कोनर (Feargas O'Connor) के नेतृत्व में चार्टिस्ट्स हिंसा में विश्वास करने लग गये थे । दूसरा 'अधिकार पत्र' संसद के समक्ष 3 मई 1842 को प्रस्तुत किया गया । वह भी अस्वीकृत कर दिया गया । इसके प्रतिकार में मजदूरों ने आम हड़ताल की घोषणा कर दी । रोबर्ट पील ने इस आन्दोलन को भी सख्ती से दबा दिया । चार्टिस्ट-आन्दोलन शिथिल पड़ गया । परन्तु फ्रांस की 1848 की क्रान्ति ने इसे पुन: प्रबल बना दिया । अत: इस बार चार्टिस्टों ने 50 लाख व्यक्तियों के हस्ताक्षर कराकर 'अधिकार पत्र' संसद के सम्मुख भेजा । परन्तु जांच-पड़ताल करने पर उनमें बहुत से हस्ताक्षर जाली पाये गये । इससे चार्टिस्ट आन्दोलन अपयश का भाजन हो गया और स्वत: ही समाप्त हो गया ।

7.5.5 आन्दोलन की असफलता के कारण-

(1) योग्य नेताओं के अभाव के कारण आन्दोलन जोर नहीं पकड़ सका ।

(2) नेताओं के विचारों में मतभेद भी इस आन्दोलन की असफलता का एक कारण बना । रोबर्ट ओवन अहिंसात्मक नीति से मजदूरों की मांगें स्वीकार कराना चाहता था जबकि फीयरगस ओ कोनर हिंसात्मक साधनों से ।

(3) अनाज कानून (Corn Law) को हटा देने के उपरान्त इंग्लैण्ड में खाद्य सामग्री सस्ती हो गई । नरम विचारों के लोग इस कारण तुष्ट हो गये ।

(4) चार्टिस्टों की मांगे आर्थिक व सामाजिक न होकर राजनीतिक थीं । जबकि प्रथम उन्हें अपनी आर्थिक कठिनाईयों के निवारण के लिये प्रयास करना था ।

7.6 1867 का सुधार अधिनियम

चार्टिस्ट-आन्दोलन समाप्त हो गया था तथापि इसके द्वारा सृजित सुधारों की भावना नष्ट नहीं हुई थी । परिणाम यह हुआ कि 1848 के उपरान्त संसद में शासन सम्बन्धी सुधारों के मसविदे प्रस्तुत होते रहे । इसका परिणाम यह हुआ कि सुधार विरोधी सांसद धीरे-धीरे सुधारों के पक्ष में होने लगे । उधर 1837 में इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया बन गई थी । वह स्वयं उदारवादी विचारों की थी और निरंकुश होने का उसका कोई इरादा नहीं था । अत: संसद के

माध्यम से सुधारों की जो भी मांग उसके पास जाती थी वह ध्यान से सुनती थी । इस प्रकार के सुखद वातावरण में 1865 में उदार दल का संसद में बहुमत आ गया और लार्ड रसल देश का प्रधानमंत्री बना । उसके मंत्रिमंडल में सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति ग्लैडस्टन था । प्रारम्भ में ग्लैडस्टन (Gladston) अनुदार विचारों का था । परन्तु इस समय (1866) तक वह उदारवादी बन गया था । 1832 के उपरान्त अब (1865) संसद में निर्वाचित हुआ था । 1866 में ग्लेडस्टन ने सुधार विधेयक प्रस्तुत किया । अनुदारदल के सदस्यों ने तो इसका विरोध किया ही पर साथ में ही रोबर्ट लोव (Robbert Lowe) ने नेतृत्व में उदार दल के भी बहुत से सांसदों ने इसका विरोध किया । इसका परिणाम यह हुआ कि यह विधेयक अस्वीकृत हो गया और लार्ड रसल को प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र देना पड़ा ।

जून 1866 में रसल के त्याग पत्र देने पर इंग्लैण्ड में चुनाव हुये और लार्ड डर्बी (Lord Derby) ने प्रधानमंत्री पद संभाला । इसके मंत्रिमंडल का उल्लेखनीय व्यक्ति डिजरैली (Disraeli) था । डिजरैली एक यहूदी मन्त्री था । वह कट्टर अनुदारवादी था । महारानी विक्टोरिया उससे बहुत प्रसन्न थी । अत: डर्बी के अनुदार मन्त्रिमंडल में डिजरैली के नेतृत्व में कुछ सुधारों की आशा इंग्लैण्ड के उदारवादियों को नहीं रही थी । अत: सुधारों के लिये इंग्लैण्ड में पुन: आन्दोलन उग्र हो गया । अनुदारवादी होते हुये भी डिजरैली एक महान दूरदर्शी तथा कूटनीतिज्ञ था । 1867 में उसने स्वयं ने शासन-सुधारों का विधेयक संसद में प्रस्तुत किया । ग्लेडस्टन के कुछ संशोधनों के साथ यह विधेयक पारित हो गया ।

7.6.1 सुधार अधिनियम की धाराएँ-

(1) बारो में सभी मकान मालिकों और दस पौण्ड वार्षिक किराया देने वालों को वोट देने का अधिकार दिया गया ।

(2) 2 पौण्ड वार्षिक लगान देने वालों को भी मताधिकार दिया गया । इस श्रेणी में वे किसान आते थे जो कि भूमि के स्वामी नहीं होते थे जो कि भूमि के स्वामी नहीं होते थे वरन भूमि को जोतने वाले होते थे ।

(3) शहरों में रहने वाले उन लोगों को मताधिकार दिया गया जो या तो उस शहर मैं अपना मकान रखते हों या 10 पौण्ड वार्षिक मकान किराया देते हों ।

(4) 10,000 से कम आबादी वाले बोरों को प्रतिनिधि भेजने के अधिकार से वंचित कर दिया गया।

(5) बर्मिंघम, मैनचैस्टर, लीड्स, लीवरपूल व ग्लासगो जैसे औद्योगिक नगरों को अब तीन-तीन प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया ।

(6) निर्वाचन क्षेत्रों के पुनर्विभाजन के फलस्वरूप 12 नये बनाये गये तथा 25 काउण्टियों को नई सीटें प्रदान की गई ।

7.6.2 1867 के सुधार अधिनियम की कमियां-

(1) स्त्रियों, खेतिहर मजदूरों व खानों में काम करने वाले श्रमिकों को अब भी मताधिकार से वंचित रखा गया ।

(2) गुप्त-मतदान प्रणाली प्रचलित नहीं की गई । अत: उद्योगपति अब भी अपने श्रमिकों को अपने प्रभाव में बनाये रहे ।

(3) मताधिकार दर अब भी सम्पत्ति की शर्त बनी रही ।

(4) सांसदों को वेतन तथा भत्तों की व्यवस्था नहीं की गई । अत: भ्रष्टाचार का उन्मूलन नहीं हो सका ।

(5) इस अधिनियम के पारित हो जाने के उपरान्त व्यक्ति विशेष का महत्व घट गया और राजनीतिक दलों का महत्व बढ़ गया ।

7.6.3 सुधार अधिनियम की समीक्षा-

उपर्युक्त कमियों से स्पष्ट होता है कि 1867 का संवैधानिक सुधार अधिनियम इंग्लैण्ड में पूर्ण रूप से लोकतन्त्रीय व्यवस्था स्थापित नहीं कर सका । स्त्रियों को मताधिकार से वंचित रखा गया । उच्च सदन (House of Lords) अब भी शक्तिशाली बना रहा । डिजरैली जैसे अनुदारवादी व्यक्ति द्वारा यह विधेयक पारित कराया गया । अत: उदार राजनीतिज्ञों ने इसमें डिजरैली की कुछ चाल समझी । ग्लेडस्टन ने इसे डिजरैली की "शैतान चालाकी" बताया क्योंकि स्वयं डिजरैली ने 1866 में इसी विधेयक का विरोध किया था । सैलिसबरी के शब्दों में डिजरैली द्वारा यह एक राजनीतिक विश्वासघात था जिसकी समता का उदाहरण इंग्लैण्ड के इतिहास में नहीं मिलता।[1] कार्ले ने इस विधेयक के पारित होने पर दुःखद भविष्य की भविष्यवाणी की । परन्तु यह संवैधानिक सुधार लोकतन्त्र के मार्ग का अगला कदम था । इसके पारित हो जाने पर मतदाताओं की संख्या पहले की अपेक्षा प्राय: दुगुनी हो गई । निर्वाचन-क्षेत्र भी बहुत विस्तृत हो गया । पूंजीपतियों का भी प्रभाव कम हुआ । औद्योगिक नगरों में प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ने पर मजदूरों का महत्व और बढ़ गया । बोरों में व्यवसायियों तथा कारीगरों को मताधिकार प्राप्त हो गया । मध्यम वर्ग का महत्व और बढ़ गया । राजनीतिक दल लोकमत तैयार करने के साधन बन गये । इस अधिनियम ने भी 1832 के सुधार अधिनियम की भांति भविष्य में अन्य सुधारों के. लिये मार्ग प्रशस्त ही किया । इसीलिये इस संवैधानिक सुधार अधिनियम को ग्रेट-ब्रिटेन के लोकतन्त्रीय शासन में एक महत्वपूर्ण कदम बताया है । हालाँकि ग्लेडस्टन ने इस विधेयक के पारित होने पर डिजरैली की नियत में शंका व्यक्त की थी । स्वयं प्रधानमंत्री लार्ड डर्बी (Lord Derby) ने सुधार अधिनियम का उपहास करते हुये कहा था कि उसकी पार्टी ने दल के सदस्यों को तो ठग लिया है परन्तु यह विधेयक अंधेरे में एक छलांग लगाने के समान ही है।[1] परन्तु वास्तविक बात यह थी कि डिजरैली ने इस बात को समझ लिया था कि मताधिकार से वंचित वर्ग अधिकाधिक अधीर होते जा रहे हैं । इतना ही नहीं, उसका कहना था "श्रमिकों के अधिकार भी उतने ही पवित्र हैं, जितने कि सम्पत्ति के अधिकार ।" इसके अलावा उसे यह भी आशा थी कि मताधिकार को विस्तृत करने से नये मतदाता अनुदार दल के पक्ष में

आ जावेगें । इसीलिये उसने मताधिकार के विस्तार के लिये यह विधेयक प्रस्तुत किया और विधेयक के पारित हो जाने पर उसने सगर्व कहा था- "सुधार अधिनियम में स्वीकृति की विजय प्राप्त कर उसने अपने दल को शिक्षित बना दिया है ।

7.7 ग्लेडस्टन का मन्त्रि-काल तथा सुधारों का युग-

1867 के विधेयक पारित हो जाने पर रोबर्ट लोव ने कहा था कि अब हमें हमारे नवीन मालिकों को शिक्षित करना पड़ेगा । परिणाम यही हुआ कि डिजरैली 1868 के चुनाव में अपनी अनुदार पार्टी को विजयी नहीं बना सका । डर्बी के पद-मुक्त होने पर वह कुछ मास ही प्रधानमंत्री पद पर कार्य कर सका । 1868 में उसका स्थान विलियम ग्लेडस्टन (1809-1898) ने लिया । वह उदारदल का नेता था । अत: यह स्वाभाविक ही था कि वह उदार सुधारों को प्रोत्साहन ही देता ।

7.7.1 (i) गुप्त-मतदान विधेयक (1872) का पारित होना-

अब तक इंग्लैण्ड में गुप्त-मतदान (Secret ballot) प्रणाली प्रचलित नही हुई थी । इस कारण श्रमिक लोग स्वतन्त्रता से अपना मत-प्रदान नहीं कर सकते थे । इसके अलावा चुनाव में मतों का क्रय विक्रय भी हो जाता था । परन्तु ग्लेडस्टन के मन्त्रिकाल में 1872 ई. में गुप्त मतदान पद्धति भी प्रचलित हो गई । यह प्रणाली प्रथम आस्ट्रेलिया में प्रचलित हुई थी। अत: इसे 'आस्ट्रेलिया मत-दान प्रणाली' भी कहते हैं ।

7.7.2 (i) 1884 का संवैधानिक सुधार अधिनियम-

1867 का सुधार अधिनियम के पारित होने के सन्दर्भ में मेरियट ने लिखा है कि "इंग्लैण्ड के लोगों की राजनीतिक मांगों की यह (1867 का सुधार अधिनियम) पूर्ण रूप से अन्तिम व्यवस्था नहीं थी ।" उसमें कई खामियाँ रह गई थीं । दूसरे अधिनियम से बोरों में तो मताधिकार विस्तृत हो गया था पर काउण्टियों में नहीं हुआ था । मजदूरों को मताधिकार मिल गया था, परन्तु खेतिहर श्रमिकों व खानों में काम करने वाले व्यक्तियों को नहीं मिला था । इस असमानता को दूर करने के उद्देश्य से ही ग्लेडस्टन ने 1884 में यह संवैधानिक सुधार अधिनियम पारित कराया था । इस बार भी इस सुधार अधिनियम को पारित होने में लार्ड्स सदन ने भारी बाधा प्रस्तुत की । परन्तु ग्लेडस्टन की "समझौते की नीति' ' तथा महारानी विक्टोरिया की सूझ-बूझ से 1884 में यह सुधार विधेयक पारित हो गया । इस सुधार अधिनियम की धाराएं निम्नलिखित थीं:-

1. The future Lord Salisbury called it a political betrayal which no parallel in our annals.
2. Lord derby in his cynical way, remarked that his party had dished the Whigs, but described the Bill as a 'leap in the dark'.

7.7.3 मताधिकार की पात्रता

(1) बरो के समान काउण्टी में भी सभी मकान मालिकों को और 10 पौण्ड वार्षिक किराया देने वालों को मताधिकार प्रदान कर दिया गया ।

(2) 21 वर्ष के पुरूषों को मताधिकार स्वीकार कर लिया गया ।

(3) 15,000 से कम जनसंख्या वाले बरो से प्रतिनिधि भेजने का अधिकार छीन लिया गया तथा इस प्रकार के बरों को समीप की काउण्टियों के साथ मिला दिया गया ।

(4) यथासम्भव एक सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र गठित किये गये ।

(5) इस अधिनियम के अन्तर्गत 'कामन-सभा' की सदस्य संख्या 670 हो गई ।

7.7.4 सुधार अधिनियम की समीक्षा-

इस सुधार अधिनियम की समीक्षा करते हुये प्रसिद्ध एडम्स ने लिखा है कि "यदि 1867 के सुधार अधिनियम ने इंग्लैण्ड को जनतन्त्र के द्वार पर पहुंचा दिया तो 1884 ई. के तीसरे सुधार अधिनियम ने जनतन्त्र के द्वार खोल दिये ।" इस अधिनियम से मतदाताओं की संख्या में 20 लाख की और वृद्धि हो गई । सी.डी. हैजन का कहना है कि "इसके उपरान्त 1918 तक मताधिकार में कोई विस्तार नहीं हुआ ।"[2]

(iii) 1885 का सुधार अधिनियम- 1844 का संवैधानिक सुधार विधेयक पारित कराने के लिये ग्लेडस्टन को लार्डस सदन के सदस्यों से यह वादा करना पड़ा था कि वह निर्वाचन क्षेत्रों का पुनर्गठन करेगा । उस वचन को पूरा करने हेतु ही उसे 1885 में यह अधिनियम पारित कराया ।

7.8 1911 का संवैधानिक सुधार-

19 वीं सदी के अन्त तक इस प्रकार ग्लेडस्टन के नेतृत्व में इंग्लैण्ड ने संवैधानिक सुधारों की दशा में काफी प्रगति कर ली थी । कॉमन-सभा अब जनता के प्रतिनिधियों का सदन बन गया था । इस सदन के सदस्य अब सीधे पुरूष नागरिकों द्वारा निर्वाचित होते थे । परिणामस्वरूप कामन-सभा के सदस्यों में यह भावना घर कर गई कि वास्तविक और व्यावहारिक रूप से उनका सदन ही विधि निर्माण में सर्वोच्च होना चाहिये क्योंकि जनता के प्रति अब वही उत्तरदायी सदन है । परन्तु लार्ड्स सदन इसके विपरीत सोचता था । जब बीसवीं सदी के प्रारम्भ में एडवर्ड सप्तम के समय 'कामन-सभा' ने उच्च सदन 'लार्ड्स-सभा' के अधिकारों की सीमित करना चाहा तो इसके सदस्य कहने लगे कि निचला सदन तो देश के संविधान को ही नष्ट करने पर तुला हुआ है । लार्ड्स-सदन अभिजात्य वर्ग के लोगों का सदन था। वे सहस्रों वर्षों से देश का शासन चलाते आ रहे थे । अत: वे अपनी सत्ता छोड़ने को तैयार नहीं थे ।

1 .1 Disraeli boasted that by winning acceptance for Reform he had 'educated his party….."

2 .2 C.D. Hazeen: "Modern Europe since 1718" p 303

1909 में कॉमन सभा में पुन: उदार दल बहुमत में आ गया । उसने दीन लोगों के हित में बजट पास किया, परन्तु वह उच्च सदन के सदस्यों द्वारा स्वीकृत कर दिया गया । इस बजट-प्रस्ताव के अस्वीकृत हो जाने पर लॉयड जार्ज ने ऑक्सफोर्ड विश्व-विद्यालय में कहा- "अब इस सन्दर्भ में संघर्ष होगा कि देश का शासन राजा और लार्ड्स सदन चलाये अथवा राजा और कॉमन सभा।" कामन-सभा ने लार्ड्स सदन की शक्तियों को घटाने का निश्चय किया । कैम्पबैल ने प्रधानमंत्री पद से त्याग दिया । जनवरी 1910 में पुन: चुनाव हुये और उदारवादी पुन: बहुमत में आ गये- पर अधिक संख्या में नहीं । एडवर्ड सप्तम ने दोनों सदनों में समझौता कराना चाहा, पर 7 मई 1910 को उसकी मृत्यु हो गई । उसके उत्तराधिकारी जार्ज पंचम ने एक संवैधानिक सम्मेलन आयोजित कर संसद के दोनों सदनों में समझौता कराना चाहा, पर 7 मई 1910 को उसकी मृत्यु हो गई । उसके उत्तराधिकारी जार्ज पंचम ने एक संवैधानिक सम्मेलन आयोजित कर संसद के दोनों सदनों में समझौता कराना चाहा । वह भी असफल रहा। 1911 का संवैधानिक विधेयक बहुत ही उत्साहवर्धक वातावरण ये पारित हुआ । इतिहासकार ई. एच. कार्टर ने लिखा है कि राष्ट्रीय इच्छा को दमन करने की उच्च सदन की शक्ति सर्वदा के लिये चली गई ।[1]

7.8.1 1911 के संवैधानिक सुधार अधिनियम की धाराएं-

(i) अर्थ विधेयक की परिभाषा देने का प्रयास किया गया । यह कामन-सभा के अध्यक्ष पर छोड़ दिया गया । वह अपना निर्णय दे कि अमुक विधेयक अर्थ-विधेयक

(ii) लार्ड्स सदन को अब अर्थ विधेयक अपने पास 30 दिन तक रखने की अनुमति दी गई । यदि इस अवधि में उच्च सदन उसे पारित कर नहीं भेजता है तो निचला सदन उसे राजा के हस्ताक्षर कराकर अधिनियम मान लेगा । इस प्रकार अर्थ-विधेयक पर से उच्च सदन का वीटो (Veto) सदा के लिये समाप्त हो गया ।

(iii) कामन-सभा का कार्य-काल 7 वर्ष से घटाकर 5 वर्ष कर दिया गया तथा सदन के सदस्यों को 400 पौण्ड वार्षिक वेतन स्वीकार किया गया ।

(iv) साधारण विधेयक को इस अधिनियम के उपरान्त 2 वर्ष के लिये रोक सकता था, परन्तु यदि कॉमन सदन उसे उसके मूलरूप में लगातार तीन सत्रों में पारित कर दे तो वह उच्च सदन की बिना अनुमति के सीधा राजा के पास हस्ताक्षरों के लिये भेज कर, अधिनियम में पारित किया जा सकेगा ।

7.8.2 अधिनियम की समीक्षा-

1911 का सुधार अधिनियम ग्रेट-ब्रिटेन के संवैधानिक विकास में अति महत्वपूर्ण है । इस अधिनियम के फलस्वरूप यह तथ्य स्वीकार कर लिया गया कि इंग्लैण्ड की सार्वभौमिकता

1 E.H. Carter: 'History of England' P. 945.
"The power of the Upper House of thwart the national will was gone forever...."

जनता के प्रतिनिधि सदन 'कामन-सदन' में ही है । इस अधिनियम के महत्व पर प्रकाश डालते हुये ऑग व जिंक (Ogg and Zink)ने लिखा है कि इसके द्‌वारा ब्रिटिश संविधान में सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन किया गया है । हालांकि अर्थ-विधेयक का अर्थ यह अधिनियम पूर्णत: स्पष्ट नहीं कर सका तथापि उसके पारित होने में 'लार्ड्स-सदन' अब बाधा उत्पन्न नहीं कर सकता था। इसके अलावा इस अधिनियम ने 'लार्ड्स-सदन' के सामन्त सदस्यों के विचारों में भी परिवर्तन ला दिया । शनै: शनै: वे भी इस धारणा के व्यक्ति हो गये कि हमें जनता के प्रतिनिधि सदन के संवैधानिक कार्यो में व्यर्थ की अड़चनें उत्पन्न नहीं करनी चाहिये ।

7.9 इंग्लैण्ड में समाजवाद का विकास तथा श्रमिक हितकारी अधिनियम

अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इंग्लैण्ड में वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई । इस औद्‌योगिकरण से एक ओर पूंजीवाद दिनोंदिन प्रबल होता गया तो दूसरी ओर कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की दशा दिनोंदिन दयनीय होती चली गई । विलियम गोडविन ने अपनी पुस्तक "पॉलिटिकल जस्टिस" में व्यक्तिगत सम्पत्ति की निन्दा की। 1818 में स्विस इतिहासकार सिसमौंडी ने इंग्लैण्ड के निर्धन वर्ग की दयनीय अवस्था पर दुःख व्यक्त किया । इन विचारों का राबर्ट ओवन पर भारी प्रभाव पड़ा । हालांकि वह स्वयं एक मिल मालिक था तथा व्यापार के क्षेत्र में विलक्षण क्षमता रखता था, तथापि पूंजीपति होते हुये भी उसमें मानवीय सद्भाव था । उसने अपने श्रमिकों के लिये निवास की स्वास्थ्यप्रद व्यवस्था करके तथा बच्चों को मजदूरी करने से रोक कर अन्य मिल मालिकों के समक्ष आदरणीय आदर्श प्रस्तुत किया । उसके तथा सर राबर्ट पील के प्रयासों से 1819 ई. में एक फैक्ट्री अधिनियम पारित हुआ । इस अधिनियम के अन्तर्गत केवल वस्त्र मिलों के मालिकों को आगाह किया गया कि वे 9 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों को अपने यहां नौकरी न दें तथा इससे अधिक आयु के बच्चों से 12 घंटे से अधिक कार्य न लें ।

'समाजवाद ' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम राबर्ट ओवन ने 1827 में किया । उसने अपने समाजवादी विचार 'ए न्यू व्यू ऑफ सोसाइटी' नामक पुस्तक में प्रकाशित किये । उसका समाजवादी आन्दोलन हिंसा के विरूद्ध तथा संवैधानिक तरीकों से श्रमिकों की दशा में सुधार लाने के पक्ष में था । संसद में सुधार के लिये किये गये आन्दोलनों में श्रमिकों ने मध्यम वर्ग का साथ दिया तथा अनुदार विचारों के सामन्तों के विरूद्ध संघर्ष किया । इन आन्दोलनों के परिणामस्वरूप 1832 का संसद संशोधन अधिनियम तो पारित हो गया परन्तु उससे श्रमिकों का कुछ भी लाभ नहीं हुआ । इससे श्रमिकों में आक्रोश उत्पन्न हुआ और उन्होंने बड़े पैमाने पर हड़ताल आदि करना आरम्भ किया ।

7.9.1 1783 के फैक्टरी अधिनियम की धाराएं-

इसके परिणामस्वरूप 1833 में एक फैक्टरी अधिनियम और पारित हुआ ।

(i) सरकारी कानूनों का पालन कराने हेतु इन्सपेक्टर नियुक्त किये गये ।

(ii) 9 वर्ष की आयु के बच्चों की कारखानों में नियुक्ति प्रतिबन्धित कर दी गई ।

(iii) 18 वर्ष तक की आयु वाले बच्चों के लिये काम करने के घंटे तय कर दिये गये । 13 वर्ष तक की आयु वाले बच्चों को 9 घंटे तथा इससे ऊपर (13- 18) 12 घंटे निर्धारित किये गये ।

7.9.2 अधिनियम का महत्व-

इस फैक्टरी अधिनियम का सर्वाधिक महत्वपूर्ण महत्व यह था कि अब सरकार को मालिक व श्रमिकों के बीच हस्तक्षेप करने का अधिकार मिल गया ।

इससे श्रमिक सन्तुष्ट नहीं हुये । उन्होंने चार्टिस्ट आन्दोलन के अन्तर्गत अपनी मांगे मनवाने के लिये कई आन्दोलन किये । इसका उल्लेख हम कर आये हैं । चार्टिस्ट आन्दोलन की असफलता का एक कारण राबर्ट ओवन तथा इसके पूर्वज राजनीतिक विचारक जर्मी बैन्थम व जेम्स मिल का उदारवादी होना भी था।

वे इस उदारवाद के सिद्धान्तों पर ही राज्य के अधिकारों को सीमित करने तथा आर्थिक हितों और प्रक्रियाओं को स्वच्छन्द रूप से विकसित होने देने के पक्ष में थे । उन लोगों ने ऐसी आदर्श समाज की स्थापना का स्वप्न लिया, जहां सब कामगार (Artisians) लोग मिल-जुल कर पारस्परिक सहयोग द्वारा अपनी आवश्यकताओं की सब वस्तुओं का उत्पादन करें । इन आदर्श समाजों से लोगों को उस काल्पनिक आदर्श-राज्य का स्मरण हो आता था, जिसका वर्णन सर थामस मोर ने अपनी पुस्तक 'यूटोपिया' (Utopia) में किया है । इसी कारण ये लोग यूटोपियाई (Utopians) कह लाये । रोबर्ट ओवन इसी विचार धारा का था । उसने स्कॉटलैण्ड के न्यू लैनार्क (New Lanarak) नगर को अपने श्रमिकों को सब प्रकार की दैनिक जीवन की आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था कर उसे एक आदर्श बस्ती के रूप में बसाया था । पर अन्य पूंजीपति मालिकों ने इस पर आचरण नहीं किया । इसके अलावा वह स्वयं भी अमेरिका में इंडियाना राज्य के न्यू हार्मनी नगर में इस प्रकार की आदर्श बस्ती के बसाने में असफल रहा । वर्तमान सहकारी संस्थाओं का मूल भी ओवन के विचारों में देखा जा सकता है । 1834 में उसने मजदूरों का एक बड़ा ट्रेड यूनियन (Grand Trade Union) भी स्थापित किया । परन्तु वह पूंजीपतियों की स्वार्थ पूर्ण भावना के कारण श्रमिक वर्ग को वांछित लाभ न पहुंचा सका । अत: श्रमिक तत्कालीन सरकार से क्षुब्ध ही रहे ।

रोबर्ट ओवन के अलावा विलियम टामसन, टामस हाडस्किन, जान ग्रे आदि अन्य समाजवादी लेखक और हुये । उन्होंने आन्दोलन में श्रम के महत्व को दर्शाते हुये मालिक और मजदूरों के मध्य लाभ के विभाजन का सुझाव दिया । ये सब सुधारक उपयोगितावादी (Utilitarian) थे । उन्नीसवीं सदी के पूर्वाद्ध में ग्रेट ब्रिटेन इसी विचारधारा से प्रभावित रहा । यह धारा मुख्यत: अंग्रेजी विचारधारा ही है । मुख्यत: यह एक नैतिक सिद्धान्त है और इसका आधार मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त 'सुखवाद' (Hedonism) है । चार्ल्स किग्सले और डेनीसन मारिस 'किश्चियन सोशलिस्ट' कहे जाते हैं । वे भी मजदूरों की दशा सुधारने के लिये शान्तिपूर्ण आन्दोलन चलाने के ही पक्षधर थे ।

7.10 इंग्लैण्ड़ में श्रमिकों के हित में सुधारों का युग प्रारम्भ-

उन्नीसवीं सदी के पूर्वाद्ध में उदारवादियों (Liberals) द्वारा मजदूर वर्ग की दयनीय दशा में सुधार लाने हेतु जो कार्यक्रम तैयार किया व आन्दोलन किये- वे सब विफल रहे । यहां तक कि चार्टिस्ट आन्दोलन भी समाप्त हो गया । परन्तु 'समाजवाद' श्रमिक वर्ग व मध्यम वर्ग के दिलों में बैठ चुका था । 1848 की क्रान्ति भी फ्रांस में विशेष सफल नहीं रही थी । उसके परिणामस्वरूप मजदूरों की दशा में कोई सुधार नहीं हुआ था । इंग्लैण्ड के कारखानों व खानों में काम करने वाले स्त्री-पुरूषों व बच्चों की दशा अधिक विचारणीय बनी हुई थी । भाग्यवश 1830 के उपरान्त इंग्लैण्ड में उदार दल सत्ता में आ गया था । लार्ड ग्रे (Lord grey) ने प्रधानमंत्री का पद संभालते (1830) ही एक 'रायल कमीशन' का गठन किया । उस कमीशन को पूअर कानून (Poor Laws), कारखानों व नगरों के निगमों की दशा का अध्ययन करने का काम सौंपा गया था । उसकी रिपोर्ट ने लोगों के दिल दहला दिये और उसके उपरान्त ग्रेट ब्रिटेन की सरकार ने श्रमिकों व खानों में काम करने वालों के हित में कई कानून बनाये । लार्ड एस्ले (Ashley) तथा शैफ्टस बरी (Earl of Shaftesbury) ने भी फैक्टरी कानून बनवाने में बड़ी भूमिका निभाई । 1842 में ब्रिटेन की सरकार ने खानों के सन्दर्भ में एक कानून (Mines Act,1842) बनाया । इसके अन्तर्गत 13 वर्ष से कम आयु के बच्चों का तथा स्त्रियों का काम करना निषेध कर दिया इस कानून के बन जाने से एस्ले उत्साहित हुआ और उसने 1844 में एक फैक्टरी कानून ओर पास करवाया । इस कानून के अन्तर्गत स्त्रियों को और सुविधाएं प्रदान की गई । 1847 में एक फैक्टरी कानून बना कर स्त्रियों व बच्चों का कारखानों में कार्य करने का समय 10 घण्टे निर्धारित कर दिये गये । सरकार के इस हस्तक्षेप का मिल-मालिकों ने घोर विरोध किया । यहां तक कि लार्ड जॉन रसैल ने भी इसके विरोध में मत दिया । पर यह उदारवादी समाजवादियों की मजदूरों के हित में भारी विजय सिद्ध हुई । इसी प्रकार एडविन चाडविक ने 1848 में श्रमिकों के स्वास्थ्य-सुधार के लिये (Chadwick's Public Health Act, 1848) कानून बनवाया। इ. एच. कार्टर का कहना है कि चाडविक का कानून स्वास्थ्य सम्बन्धी कानूनों की लम्बी श्रेणी में एक प्रस्तावना स्वरूप था ।[1] इस कानून के बन जाने से श्रमिकों की गन्दी बस्तियों में काफी सुधार हुआ। 1835 में नगरपालिका नगर-निगम सम्बन्धी (Muncipal Corporations Act, 1835) कानून पास करके इंग्लैण्ड के गन्दे एवं दुःखी कस्बों की दशा में सुधार कर दिया ।

7.11 नव-उदारवाद

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 1847 के कानून के उपरान्त श्रमिक सुधारकों के लिये मार्ग खुल गया था और निःसन्देह उन्नीसवीं सदी के मध्य भाग तक इंग्लैण्ड शासन-सुधारों के-मार्ग पर बहुत अग्रसर हो चुका था ग्रेट ब्रिटेन ने न केवल शासन के क्षेत्र में ही अपने यहां लोकतन्त्र की स्थापना की थी वरन् व्यवसाय व उद्योग क्षेत्र में भी तत्कालीन समाज की

1 E.H. Carter: A History of Britain P.811

"Chadwick's Act was the prelude to a long of health reform."

प्रवृत्तियों के अनुसार सुधार करके लोकतान्त्रिक भावनाओं को साकार किया जा रहा था । परन्तु इतना कुछ करने पर भी इंग्लैण्ड का मजदूर वर्ग सन्तुष्ट नहीं था । वे अपने यूनियनों के माध्यम से अधिक मजदूरी व पहले से बेहतर कार्य परिस्थितियों के लिये प्रयास कर रहे थे । इंग्लैंड की सरकार ने 1824 में तो इस प्रकार के यूनियनों को अवैध व अपराधी संस्थाएं घोषित कर दी थीं, किन्तु मजदूरों की बढ़ती शक्ति को देखकर 1871 में उनके यूनियनों को उसने वैद्य मान्यता प्रदान कर दी । 1860 में जब मजदूरों ने हड़ताल की और कार्य के 9 घंटे निर्धारित करने की मांग रखी तो सारे कारखानों के स्वामी एक हो गये और अपने श्रमिकों को उन्होंने यूनियन के सदस्य बनने से रोका । इस प्रकार के वातावरण में जेम्स स्टुअर्ट मिल (James Stuart Mill, 1836-82) ने अपने नवीन विचारों से मजदूर-वर्ग को प्रेरित किया ।

जे.एस.मिल ने बैन्थम की कठोर नैतिक मान्यताओं को नरम बनाया । ऐसा करके उसने उपयोगितावाद को अधिक मानवी पर साथ ही साथ कम संगत (Consistent) बना डाला। जेम्स स्टुअर्ट मिल राजनीति में वह आमूल-परिवर्तनवादी (Radical) था । वह स्त्रियों के अधिकारों का प्रबल समर्थक था । उसने 1866-68 तक संसद में एक आमूल परिवर्तन वादी के रूप में मजदूरों के हितों, स्त्रियों के मताधिकार तथा -राष्ट्रीय ऋण के कम किये जाने का जोरदार समर्थन किया। पर इसके साथ ही वह संसद सदस्यों को वेतन दिये जाने के पक्ष में नहीं था । गुप्त-मतदान प्रणाली का भी इस आधार पर वह विरोध करता था कि इससे अपने स्वार्थ में और गैर-जिम्मेदारी को एक से अधिक वोट देने के अधिकार (Plurality of Votes) का वह पक्षधर था । 'कामन सदन' को कानून बनाने के क्षेत्र में उच्चतर विधायी मानते हुये भी वह लार्ड-सभा के अस्तित्व को बनाये रखना चाहता था । उसकी धारणा थी कि उच्च सदन में वैधिक क्षमता वाले लोग होते हैं ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जे. एस. मिल के साथ ही उदारवाद ने सामाजिक व राजनीतिक सिद्धान्त रूप में अपनी दूसरी परिवर्तन की स्थिति में प्रवेश किया[1] । 'अब तक इंग्लैण्ड में प्रचलित व्यापार में अहस्तक्षेप (Laissez-faire) की नीति से सरकारी हस्तक्षेप उचित नहीं माना जाता था, परन्तु जे.एस. मिल ने अधिकाधिक लोगों के अधिकाधिक सुख के लिये राज्य का हस्तक्षेप उचित बताया । उसकी मान्यता थी आर्थिक क्षेत्र में राज्य को अवश्य कार्य करना चाहिये । उदाहरणार्थ श्रमिकों के कार्य करने के घण्टे निर्धारित करना, उनकी दशा में सुधार करना, एकाधिकार के क्षेत्र में नियन्त्रण करना आदि । अत: स्पष्ट है कि आर्थिक क्षेत्र में मिल कट्टर व्यक्तिवादी न होकर उससे दूर रहा । समाज कल्याण के लिये किये जाने वाले व्यापक राजकीय कार्यो का उसने समर्थन किया । अपनी पुस्तक (Principles of Political Economy) में प्रारम्भिक उदारवाद के इस सिद्धान्त को हटा दिया कि मानव की स्वतन्त्रता विधि-व्यवस्था की अनुपस्थिति में ही सुरक्षित रहती है । मजदूर संघों के गठन व उनके

1 R.C. Vermani: ‘Political Theory’. P. 421
“With J.S. Mill, liberalism as a social and political theory entered its second phase.”

राष्ट्रीयकरण के सन्दर्भ मेंभी जे. एस. मिल के विचार उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध से मेल नहीं खाते थे । अपने जीवन के अन्तिम वर्षो में वह ऐसे समाजवादी आदर्श की ओर आकर्षित हुआ जिसमें - संसार के कच्चे माल पर सार्वजनिक प्रभुत्व होगा और सभी लोग सामूहिक श्रम से होने वाले फलों के समान भागीदार होंगे । अत: स्पष्ट है कि उन्होंने राजनीतिक उदारवाद के साथ आर्थिक समाजवाद को जोड़ दिया था । इस प्रकार वह आर्थिक उदारवाद का अग्रदूत (Herald) माना गया । परन्तु अपने सिद्धान्तों के क्रियान्वयन के लिये उसने क्रमश: एक-एक कदम आगे बढ़ाया । इस प्रकार जे.एस. मिल ने उदारवाद की जो व्याख्या प्रस्तुत की उससे वह पहले के उदारवाद की भांति संकीर्ण नहीं रहा और टी.एच. ग्रीन (1836-82)ए ने अपने आदर्शवाद (Idealism) से इसे और भी उदार बना दिया ।

टी. एच. ग्रीन राज्य को प्राकृतिक अवश्य मानता था पर परम-पूर्ण (absolute) तथा सर्वशक्तिमान (Omnipotent) नहीं मानता था । प्रतिनिधि सरकार में उसकी पूर्ण आस्था थी तथा वयस्क मताधिकार का वह पूर्ण समर्थक था । 1850 के उपरान्त की ब्रिटेन की राजनीति को इन दोनों राजनीतिक विचारकों के विचारों ने प्रभावित किया और जो श्रमिकों के लिये सुधार कानून पारित हुये वे इनके राजनीतिक संघर्ष के फलस्वरूप ही थे । भाग्यवश 1868 में ग्लेडस्टन इंग्लैण्ड का प्रथम बार प्रधानमंत्री बना । उसने पील समर्थक कार्डवैल, हिग पार्टी के लोव तथा आमूल परिवर्तनवादी जॉन ब्राइट के सहयोग से जो मन्त्री मण्डल निर्मित किया वह उदार पार्टी (Liberal Party_) का मन्त्री-मण्डल कहलाया । इस प्रकार आधुनिक उदारवाद अस्तित्व में आया जो ब्रिटिश जीवन में कम से कम विश्व-युद्ध के आरम्भ तक प्रमुख तत्वों में एक सिद्ध हुआ[1]' उदारवादी ग्लेडस्टन ने 1869 में आयरलैण्ड चर्च अधिनियम, 1870 में शिक्षा अधिनियम तथा 1871 में ट्रेड यूनियन अधिनियम पारित किये । 1871 के ट्रेड अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिकों की सभाओं तथा उनकी हड़तालों को वैद्य करार दे दिया । इसी वर्हा ग्लेडस्टन ने 'स्थानीय शासन बोर्ड' (Local government Boar) की स्थापना की । इस बोर्ड की स्थापना से जनसाधारण के स्वास्थ्य का ध्यान रखा जाने लगा जो अब तक 'राज्य की अहस्तक्षेप' (Laissez faire) नीति के कारण अवहेलना की दृष्टि से देखा जाता था ।

1874 के चुनाव में ग्लेडस्टन की उदारवादी सरकार परास्त हो गई और अनुदारवादी डिजरैली के नेतृत्व में सरकार गठित हुई । परन्तु अब उदारवाद इतना प्रबल हो गया था कि श्रमिकों के पक्ष में सुधार होते ही चले गये । 1875 में डिजरैली ने श्रमिकों द्वारा धरना दिया जाना वैद्य करार दिया तथा इसी वर्ष अनुदारवादी डिजरैली ने 'द आरटिसियन डवलिंग (The Artisians ' Dwelling Act) अधिनियम पारित कर श्रमिकों के निवास के लिये स्वस्थ मकानों

1 'E.H. Carter: 'A History okf Britain' P 871
"Modern Liberalism, thus brought into being, proved to be one of the man factors in Britain life upto, at least, the beginning of the Great War.

की भूमिका तैयार की । इसी वर्ष 'पब्लिक हैल्थ' अधिनियम पारित किया गया । बर्मिंगघम के मेयर चैम्बरलेन की सहायता से म्यूनिसिपल कन्ट्रोल बोर्ड की स्थापना की गई । इन कन्ट्रोल बोर्डस की सहायता से बर्मिंगघम, लन्दन लिवरपुल, मैनचेस्टर के नारकीय मकानों को ध्वस्त कर उनके स्थान पर स्वास्थ्यप्रद मकान बनाये गये ।

7.12 इंग्लैण्ड में फेबियनवाद (Fabianism) व श्रमिकों के लिये सुधार

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इंग्लैण्ड की सरकार श्रमिकों के हित की ओर जागरूक हो गई थी परन्तु वहां औद्योगिक विकास बड़े पैमाने पर हुआ था । अत: इन सुधारों से भी इंग्लैण्ड का मजदूर-वर्ग तुष्ट नहीं हुआ । अत: उनका' संघर्ष जारी रहा । मार्क्स के विचार भी इंग्लैण्ड को प्रभावित कर चुके थे । अत: 1881 में विलियम मोरिस (William Moris) ने 'सोशल डेमोक्रेटिक फैड्रेशन' (Social Democratic Federation) की स्थापना की । इसका उद्देश्य मार्क्सवादी समाजवाद का इंग्लैण्ड में प्रचार करना था जो हिंसा के सहारे पूंजीवाद को समाप्त कर श्रमिकों को उत्पादन के लाभ में उनका हिस्सा दिलाना चाहता था । इसके विरोध में 1883 में जार्ज बर्नाड शाह (George Bernard Shaw) तथा सिडनी बेब (Sydney Web) के सहयोग से फेबियन सोसायटी की स्थापना हुई ।

'फेबियनवाद' भी समाजवाद की ही एक धारा हैं । यह अंग्रेज विद्वानों के मस्तिष्क की उपज माना जाता है । इसका नामकरण रोम के एक जनरल 'फेबियस क्विन्टस' (Quintas Fabieas) के नाम पर हुआ था । उसने अपने विरोधी हैनीबल के वध के लिये उचित अवसर की धैयपूर्वक प्रतीक्षा की । एच.जी. वेल्स भी फेबियन सोसायटी के सदस्य थे । उन्होंने लिखा है कि फेबियस ने कभी भी कठोर प्रहार नहीं किया । इसी के आधार पर 'फेबियन दल' ने सिद्धान्त बनाया कि उचित अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिये । अवसर आ जाने पर पूरी ताकत से प्रहार करना चाहिये । इसके सिद्धान्त 1887 मे निश्चित किये गये।

7.12.1 फेबियनवाद की विशेषताएँ:

(I) फेबियनवाद व्यक्तिगत भूमि पर स्वामित्व स्वीकार नहीं करता ।

(II) यह उन उद्योगों को समाज के नियन्त्रण में लाना चाहता है जिनका संचालन सामाजिक रीति से किया जा सकता है ।

(III)उत्पादन, वितरण और सेवा के नियमन में व्यक्तिगत लाभ के स्थान पर सार्वजनिक हित चाहता है ।

परन्तु फेबियनवादी मार्क्स की भांति पूंजी को श्रमिकों के श्रम की चोरी नहीं मानते । उनका कहना है कि समाज के निर्माण में पूंजीपतियों की महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है । लेडलर ने अपनी' पुस्तक (Social-Economics Movement) में फेबियनवाद पर प्रकाश डालते लिखा है कि फेबियनवाद पूंजीवाद के स्थान पर समाजवाद की स्थापना क्रमश: ही करना चाहता है । उसका विश्वास है कि मौजूदा शान्तिपूर्ण आर्थिक एवं तरीकों से उद्योगों का समाजीकरण किया जा सकता है । वह मध्य वर्ग को एक ऐसा समुदाय मानता है जिसका उपयोग नयी सामाजिक व्यवस्था व प्रशासन कला के विकास में किया जा सकता है । अत: स्पष्ट है कि फेबियनवाद

कार्ल मार्क्स के विचारों के अनुसार क्रान्ति से सरकार के ढांचे में आमूलचूल परिवर्तन कर शीघ्रता से समाजवाद को प्रबल नहीं बनाना चाहता । यह संसदीय प्रणाली के माध्यम से अपने लक्ष्य को पूरा करने में विश्वास करता है । हैलोवेल के शब्दों में फेबियन समाजवाद का लक्ष्य भूमि और औद्योगिक पूंजी को वैयक्तिक स्वामित्व से मुक्त करके सार्वजनिक हित के लिये समाज के अधिकार में लाकर समाज का पुनर्गठन करना है । फेबियनवाद की एक विशेषता है 'समाजवाद की अनिवार्यता' (The inevitability of socialism) जिसका नारा भी इसी ने दिया ।

7.12.2 उग्र-श्रम संघवाद का प्रबल होना-

फेबियनवाद अंग्रेज विद्वानों की उपज था । इसके सदस्य अपनी छोटी-छोटी पुस्तिकाएं प्रकाशित करा कर तथा लेख लिख कर जनता में सामाजिक चेतना उन्नत करने का प्रयास करते रहे । अत: अधिकांश श्रमिकों को परंपरागत राजनीतिक दलों से सुधार की आशा थी । डिजरैली की सरकार के पतन (1880) के उपरान्त श्रमिकों की दशा और दयनीय हो गई । 1850 से पूर्व तो अशिक्षित पूंजीपति भी अपने कारखानों का संचालन कम्पनियों के नेतृत्व में चलने लगे। अत: संचालकों ने अपना अधिक लाभ कमाने की दृष्टि से श्रमिकों का शोषण पुन: आरम्भ कर दिया । इस काल में इस्पात के कारखाने तो फलीभूत हो रहे थे तथा अन्य कारखाने घाटे में चल रहे थे । अमेरिका से अनाज का आयात होने के कारण किसान बेरोजगार हो रहे थे । इन कारणों से उग्र श्रमसंघवाद प्रबल हो गया और 1889 में उसके प्रभाव में श्रमिकों ने लन्दन बन्दरगाह में एक बड़ी हड़ताल कर दी । इस हड़ताल में इंग्लैण्ड की सरकार को श्रमिकों के वेतन-वृद्धि की ओर ध्यान देना पड़ा । लेकिन सरकार मुक्त व्यापार (Free trade) और व्यापार में अहस्तक्षेप की नीति (Laissez faire) पर आचरण करने के कारण श्रमिकों का अधिक भला करने में असमर्थ थी ।

7.13 मजदूर दल का गठन-

उन्नीसवीं सदी के नवें दशक में इंग्लैण्ड में ट्रेड यूनियन्स की संख्या 490 हो गई और इनकी सदस्य संख्या 6,50,000 हो गई जबकि घोषित समाजवादियों की संख्या उन ट्रेड यूनियन्स में बहुत कम रही । इसी कारण उग्र श्रमसंघवादी उन पर हावी हो गये । इन परिस्थितियों में स्कॉटलैण्ड वासी कीयर हार्डी (Keir Hardie) ने एक 'स्वतन्त्र श्रमिक दल' (Independent Labour Party) की स्थापना की । इसके सिद्धान्त 'ईसाई समाजवादी तथा क्रान्तिकारी गणतन्त्रात्मक परम्पराओं पर आधारित थे । इस दल ने उदारवादियों तथा अनुदारवादियों के विपक्ष में अपने प्रतिनिधि संसद में भेजना चाहा । स्वयं कीयर हार्डी तो संसद में निर्वाचित हो गया परन्तु 1901 में ग्रेट ब्रिटेन के उच्च सदन (House of Lords) ने एक उच्च न्यायालय की हैसियत से यह निर्णय दे दिया कि हड़ताल के श्रमिकों द्वारा जो भी कारखानों को क्षति पहुंचाई जावेगी उसका हर्जाना उन्हें देना पड़ेगा । इस निर्णय के उपरान्त श्रमिकों में जाग्रति और प्रबल हुई और इस समय तक विभिन्न मजदूर संगठन भी एक हो गये थे । 1899 में ट्रेड यूनियन कांग्रेस (Trade Union Congress) ने एक प्रस्ताव पारित

किया। इसके फलस्वरूप 1900 में तीनों पार्टियों (Independent Labour Party, Social Democratic Party and the Fabial Society) का विलय 'मजदूर दल' (Labour Party) में कर दिया गया ।

7.14 बीसवीं सदी के प्रारम्भ में इंग्लैण्ड में श्रमिक सुधार-

ग्रेट ब्रिटेन के संवैधानिक एवं सामाजिक सुधारों में मजदूर दल की भूमिका अति महत्वपूर्ण रही है । यह 1905 में सत्ता में आई व 1915 तक बनी रही । इस दस वर्ष के अन्तराल में इंग्लैण्ड के श्रमिकों के हित में अनेक कानून बनाये गये । मजदूर दल की सरकार बनने पर लायड जार्ज ने कहा था कि सत्ता के साथ-साथ वृद्धावस्था, दुर्घटना, बीमारी व बेरोजगारी के चार भूत घूमते हैं । अत: हमें इनके भय को भगाने में सक्षम सामाजिक सुधार करने चाहिये । उसकी इस नीति पर आधारित निम्नलिखित कानून बनाये गये ।

(I) 1906 में ट्रेड डिसप्यूट अधिनियम पारित किया गया । इसने 1901 में इंग्लैण्ड के उच्च सदन (House of Lords) द्वारा पारित अधिनियम को अवैध कर दिया । अब श्रमिक हड़ताल के समय कारखानों में हुई क्षति का हर्जाना देने को बाध्य नहीं किये जा सकते थे ।

(II) इसी वर्ष वर्क मैन्स कम्पनसेशन अधिनियम पास हुआ । इसके अन्तर्गत मिल मालिकों को प्रतिबन्धित किया गया कि कारखानों में कार्य करते हुये, यदि कोई मजदूर दुर्घटना ग्रसित हो जाये या मृत्यु को प्राप्त हो जावे तो उसकी क्षति पूर्ण करें ।

(III) 1908 में ओल्ड एज पेन्शन एक्ट पास हुआ । इसके अनुसार 70 वर्ष की आयु प्राप्त होने पर श्रमिक सरकार पेन्शन देगी ।

(IV) 1911 में नेशनल स्वास्थ्य बीमा कानून पास हुआ । इसके अन्तर्गत मजदूरों को बीमा कराना आवश्यक हो गया । बीमे के लिये दी जाने वाली किस्त श्रमिक, मालिक व सरकार तीनों के द्वारा दी जाने की व्यवस्था की गई थी ।

(V) 1911 में संसद सदस्यों को वेतन देने का भी अधिनियम पारित कर दिया गया ।

उपर्युक्त अधिनियमों को पारित कराने में लायड जार्ज को बहुत जोर लगाना पड़ा था । 1909 का बजट तो इंग्लैण्ड की संसद में अब तक प्रस्तुत किये गये आर्थिक प्रस्तावों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है । इस बजट ने यह सिद्ध कर दिया कि इंग्लैण्ड की मजदूर सरकार मजदूरों के हितों का पूरा ध्यान रखती है । वह उनके ट्रेड यूनियन्स के विकास से कोई वैमनस्य नहीं रखती । इसी कारण बीसवीं सदी के प्रारम्भ में मजदूर अब अशिक्षित एवं असहाय नहीं रहा । देश की राजनीति में उनका महत्व दिनों दिन बढ़ता ही गया ।

7.15 स्त्री मताधिकार-

इंग्लैण्ड में बीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही उदारवादी सत्ता में आ गये । उन्होंने श्रमिकों, किसानों व कारीगरों के भले के लिये बहुत कुछ किया, परन्तु स्त्री समाज की अब भी अवहेलना की जा रही थी । ग्लेडस्टन द्वारा पारित शिक्षा अधिनियम से इंग्लैण्ड की नारी समाज में पर्याप्त चेतना उत्पन्न हो गई थी । जेम्स स्टुअर्ट मिल ने 1867 में नारी मताधिकार के लिये संसद में प्रस्ताव प्रस्तुत किया था पर वह हंसी में उड़ा दिया गया था । इसके उपरान्त इंग्लैण्ड

की स्त्रियों ने एम्मैलाइन पंकहर्स्ट (Emmeline Pamkhurst) के नेतृत्व में एक संगठन गठित किया । महिला मताधिकार वादिनी 'सफ्रेजैटस' कहलाती थी । हालांकि प्रथम उन्होंने भी प्रदर्शन व हड़ताल करके सरकार का ध्यान अपनी हीन राजनीतिक अवस्था की ओर आकर्षित करने का प्रयास किया । अपने प्रयासों में असफल रहने पर उन्होंने हिंसा का भी आश्रय लिया । 1913 में उनके लिये मताधिकार का प्रस्ताव संसद में प्रस्तुत किया गया परन्तु वह अस्वीकृत हो गया। प्रथम विश्व-युद्ध के समय उन्होंने सरकार को अच्छा प्रभावित किया । इसीलिये युद्ध समाप्ति के लगभग उन्हें भी मताधिकार मिल गया । इससे स्त्रियों का आन्दोलन भी समाप्त हो गया ।

7.16 सारांश-

हालांकि फ्रांस की राज्य क्रांति 1815 में समाप्त हो गई थी और भविष्य में यूरोप में शान्ति स्थापित बनाये रखने हेतु वियना कांग्रेस ने पर्याप्त व्यवस्था कर दी तथापि 1830 व 1848 में वहां पुन: क्रान्तियां हुई । उन क्रान्तियों और क्रान्तियों की प्रतिक्रियाओं का प्रभाव यूरोप के अन्य देशों की भांति इंग्लैण्ड पर भी पड़ना स्वाभाविक था । परन्तु उन क्रान्तियों ने इंग्लैण्ड के शासन विकास पर विशेष व तीव्र प्रभाव नहीं डाला । वहां लोकतन्त्र का विकास शनै: शनै: व क्रमिक रूप से ही हुआ ।

फ्रांस की राज्य क्रान्ति से पूर्व भी इंग्लैण्ड लोकतन्त्र में सर्वाधिक अग्रसर माना जाता था । उदार विचारों के लोग उसकी शासन पद्धति को आदर्श समझते थे । संसद व स्वतन्त्र न्यायालय के अस्तित्व के कारण राजा निरंकुश नहीं रहा था । पर यह सब होते हुये भी उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में इंग्लैण्ड की शासन पद्धति लोकतन्त्रीय व जनता की इच्छा पर आश्रित नहीं थी । 1832 के सुधार अधिनियम ने अलोकतन्त्रीय व्यवस्थाओं को दूर करने का प्रयास किया । 1867 के सुधार अधिनियम ने मताधिकार के क्षेत्र को विस्तृत किया । संवैधानिक सुधारों के साथ-साथ इस काल में इंग्लैण्ड में कई मजदूर आन्दोलन भी हुये । उनके परिणामस्वरूप श्रमिकों के लिये भी कई कानून बनाये गये । उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में 1872 व 1884 के संवैधानिक सुधारों ने इंग्लैण्ड को पर्याप्त रूप से लोकतन्त्रीय बना दिया । 1918 के संवैधानिक सुधार अधिनियमों ने इस देश को पूर्ण एवं वास्तविक लोकतन्त्रीय बना दिया ।

फ्रान्स लोकतन्त्र के पथ पर बूर्वो वंश की पुन: स्थापना:-

7.2.0 बूर्वो वंश की पुन: स्थापना-

31 मार्च, 1814 को चार राष्ट्रों की संयुक्त सेना ने पेरिस में प्रवेश किया । नेपोलियन ने स्वेच्छा से राज त्यागने का निर्णय लिया । मित्र राष्ट्रों के समक्ष अब प्रश्न प्रस्तुत हुआ कि फ्रांस की गद्दी पर किसे बिठाया जावे? फ्रांस की क्रान्ति का प्रारंभ तो राजतन्त्र की समाप्ति तथा देश में लोकतन्त्र की स्थापना के उद्देश्य से हुआ था । परन्तु वियना कांग्रेस में उपस्थित विभिन्न देशों के प्रतिनिधि इस बात पर सहमत थे कि फ्रांसीसी क्रांति और नेपोलियन का युग एक भयानक अनुभव रहा था । अत: इन लोगों के लिए लोकतन्त्र एक खतरनाक विचार था । उनके मन पुरानी व्यवस्था को फिर से लाने के लिए दृढ़ संकल्प थे । परंतु नेपोलियन के

सैनिकों ने यूरोप के देशों में क्रान्ति के क्रान्तिकारी विचारों को गहरा बिठा दिया था । अत: जनसाधारण की राष्ट्रीय भावना की सर्वथा अवहेलना न करते हुए वियना कांग्रेस में उपस्थित, प्रतिनिधियों ने फ्रांस के लिए एक ऐसा संविधान बनाया जिसमें संसदीय सरकार और व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं को स्थापित करने की बात पर बल दिया गया था । लुई सोलहवें के भाई लुई अठारहवें को फ्रांस का राजा घोषित किया गया । लुई अठारहवें को राजा बनाने में फ्रांस के प्रतिनिधि तेलेरां ने बड़ी भूमिका निभाई थी।

फ्रांस की जनता द्वारा लुई अठारहवें का विरोध न किया जाना-अपने मत की पुष्टि में तेलेरां ने न्यायोचित राजत्व के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था और कहा कि, " थोपी गयी सरकार निर्बल होगी । सिद्धान्त से हम शक्तिशाली हैं । लुई अठारहवां एक सिद्धान्त है, वह फ्रांस का न्यायोचित (Legitimate) राजा है । " यथार्थ में फ्रांस की जनता भी बूर्वो राजवंश के शासन के अधीन रहने की अभ्यस्त हो गई थी । क्रांति के समय जैकोबिन दल की सहायता, से लोकतन्त्र (रिपब्लिक) की स्थापना हो गई थी, पर अधिकांश जनता उसमें अभिरुचि नहीं लेती थी । लोकतंत्र रहते हुए जब नेपोलियन स्वयं सम्राट बन बैठा तो फ्रांस वालों को कोई आश्चर्य नहीं हुआ । इसी प्रकार 1815 में जब 60 वर्षीय गठिया रोग से ग्रसित लुई अठारहवां उनका सम्राट बन गया तो उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ । उन्हें यह सामान्य घटना लगी । अत: स्पष्ट है कि फ्रांस की जनता राजसत्ता की ही पक्षपाती थी । परन्तु फ्रांस की राज्य क्रान्ति भी अपने उद्देश्यों में सर्वथा असफल नहीं रही थी । आखिर क्रान्ति एक ध्रुव सत्य घटना थी । बूर्वो वंश की पुर्नस्थापना से पुराना जमाना नहीं लौटा था । समस्त पद्धति अब भूतकाल की वस्तु बन चुकी थी । चर्च का प्रशासन पर प्रभाव नहीं रहा था । कुलीन व पुरोहित वर्ग को अब विशेषाधिकार स्वीकृत नहीं किये जा सकते थे । वस्तुस्थिति यह थी कि लुई अठारहवां राजा बना नहीं वरन् बनाया गया था । वह फ्रांस का शासक न होकर फ्रांसवासियों का शासक था ।[1] वह इस बार दो सदनों वाली संसद के साथ एक संवैधानिक राजा के रूप में फ्रांस की गद्दी पर बैठा था ।

7.2.1 लुई अठारहवें द्वारा संवैधानिक घोषणा-पत्र (Constitutional Charter) की घोषणा:-

लुई अठारहवां शासक बनने से पूर्व प्रावेन्स के काउन्ट (Count of Province) के नाम से जाना जाता था । क्रान्ति के समय वह फ्रांस से बाहर चला गया था । वह 23 वर्ष के उपरान्त अपने देश लौटा था । इसीलिए वह फ्रांस के रीति-रिवाजों से भी अनभिज्ञ था । फिर भी वह बुद्धिमान था । समय के बदलाव से वह परिचित था । वह अपनी स्थिति से भी भली भांति परिचित था । इन बातों को ध्यान में रखते हुए ही उसने 2 जून 1814 को एक "संवैधानिक आज्ञा-पत्र" जारी किया । यह "घोषणा-पत्र" 1948 तक प्रभाव में रहा । इसके अन्तर्गत फ्रांस की शासन-व्यवस्था निम्नलिखित प्रकार से व्यवस्थित की गई-

(I) सामन्तों की सभा:- इस सदन की सदस्य संख्या ग्रेट ब्रिटेन के ऊपरी सदन (House of Lords) की भांति अनिश्चित थी । इसमें सामन्तों (Peers) को सदस्य रूप में राजा ही मनोनीत करता था । ये दो प्रकार के होते थे-

(अ) वंशानुगत:- पिता की मृत्यु के उपरान्त यह अधिकार पुत्र को मिल जाता था ।

(ब) व्यक्तिगत:- एक सामन्त को उसके जीवन-काल तक इस सदन का सदस्य रहने का अधिकार प्राप्त होता था । परन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त यह अधिकार उसके पुत्र को नहीं दिया जाता था इस सदन के सम्मुख भी विधेयक (Bill) प्रस्तुत किये जाते थे । इंग्लैण्ड के लार्ड्स सभा की प्रिवी कौंसिल (Privy Council) की भांति यह सदन उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) का भी कार्य करता था ।

7.2.1.3. (2) प्रतिनिधि सभा (The Chamber of Deputies)

इसके सदस्य 5 वर्ष के लिए निर्वाचित किये जाते थे । इसका सदस्य 40 वर्ष की आयु प्राप्त करने तथा 1000 फ्रेंक प्रतिवर्ष कर देने की हैसियत का होने पर ही बन सकता था । मतदाता की आयु 30 वर्ष निर्धारित की गई थी तथा उसे 300 फ्रेंक वार्षिक कर देना आवश्यक था । अत: स्पष्ट है कि इंग्लैण्ड के निम्न सदन (House of Commons) की भांति इसके मतदाताओं की योग्यता भी धन के आधार पर ही रखी गई थी । इस आर्थिक प्रतिबन्ध के कारण फ्रांस के कुल लोगों 2,90,000 में से मताधिकार केवल एक लाख व्यक्तियों को ही प्राप्त था । इससे स्पष्ट है कि निम्न सदन को धनी पुरूषों का सदन (Plutocratic Body) बनाने का प्रयास किया गया था।

7.2.1.4. धर्म:-

राजधर्म 'के रूप में कैथोलिक धर्म ही स्वीकार किया गया, परन्तु अन्य धर्मो को भी स्वतन्त्रता प्रदान की गई ।

7.2.1.5. मौलिक अधिकार:-

इस घोषणा-पत्र के अन्तर्गत फ्रांस के लोगों को कुछ मौलिक अधिकार भी प्रदान किये गये । उदाहरणार्थ:-

(1) प्रेस की स्वतन्त्रता ।

(2) न्याय की स्वतन्त्रता । अब बिना अभियोग चलाये किसी व्यक्ति को जेल में नहीं डाला जा सकता था ।

(3) कर लगाने का अधिकार केवल संसद को ही दिया गया ।

(4) क्रान्ति के समय सामन्तों की खरीदी गयी जमीन उनसे वापिस नहीं छीनी जा सकती थी ।

(5) योग्यता अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को राजकीय नौकरी प्राप्त करने का अधिकार दिया गया ।

1 Andre Maurquis : ' A History of France .p. 368, “There Was no King of France, there was a king of the French.”

7.2.1.6. समीक्षा:-

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि कानून की दृष्टि में सबको समान रखा गया । धर्म के क्षेत्रों में सभी सम्प्रदायों को पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता भी दी गई । इससे स्पष्ट है कि क्रान्ति के प्रमुख सिद्धान्तों की घोषणा-पत्र के द्वारा रक्षा की गयी । परन्तु फिर भी यह घोषणा-पत्र पूर्ण रूप से लोकतंत्रीय नहीं माना जा सकता है । मतदाताओं को आर्थिक प्रतिबन्ध से प्रतिबन्धित कर फ्रांस का मताधिकार अति सीमित कर दिया । संसद के निम्न सदन को भी जनता के सच्चे रूप में प्रतिनिधि सदन न बना कर उसे धनी पुरूषों का सदन बना दिया । राजा को भी वंशानुगत रखते हुए अधिकार क्षेत्र में काफी प्रभावशाली रखा गया । मैरियट (J.A.R.Marriot). का कहना है कि, "इन कमियों के रहते हुए भी यह घोषणा-पत्र समस्त तत्कालीन संविधानों में अधिक उदार तथा जनसत्तात्मक था और वैधानिक शासन का अच्छा आधार बन सकता था ।" यही कारण था कि यह संविधान प्रतिक्रिया काल (1815-48) में भी यूरोप के अन्य संविधानों में अधिक विकसित रहा ।

7.2.2 उदारवाद का पुन: आरंभ (1816-20) तथा निर्वाचन सुधार:-

लुई अठारहवें के शासन काल के प्रथम चुनावों में कट्टर राजसत्तावादी अधिक मत में आ गये । ये लोग राजतन्त्र तथा पुरानी व्यवस्था के समर्थक थे । अत: उन्होंने प्रतिनिधि सभा द्वारा ऐसे कानून बनवाने का प्रयास किया जो 1814 के संवैधानिक घोषणा पत्र द्वारा स्वीकृत जन-साधारण के अधिकारों पर कुठाराघात करते थे । उन कानूनों से स्वयं लुई अठारहवां विचलित हो गया और नवीन क्रान्ति की आशंका करने लगा । घबरा कर उसने प्रतिनिधि सभा को भंग कर दिया । नये चुनावों में वैध राजसत्तावादी तथा उदार लोगों को बहुमत मिला ।लफायत (Lafayette) के नेतृत्व में उन्होंने लोकतंत्रीय सुधारों की मांग की। वे चाहते थे कि मताधिकार को विस्तृत किया जावे तथा राजा को मंत्रियों की सलाह से कार्य करना चाहिए । मंत्रियों को जनता के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए । अत: इस काल (1816-20) में उदारवादी देकाजे (Decazes) के नेतृत्व में कुछ चुनाव संबंधी सुधार हुए ।

7.2.2.1 देकाने के नेतृत्व में चुनाव सम्बन्धी सुधार:-

1814 के घोषणा-पत्र में सुधार केवल सिद्धान्त रूप में उल्लेखित थे । उनका स्पष्टीकरण विशेष कानूनों के माध्यम से संसद द्वारा किया जाना था । अत: 1817 में एक चुनाव संबंधी कानून बनाया गया । इस कानून में उदार राजसत्तावादियों के विचारों की अभिव्यक्ति थी । इस कानून के अंतर्गत (Scrutin de liste) हर निर्वाचन क्षेत्र को मताधिकारी निर्वाचन क्षेत्रों के समीप के नगर में एकत्रित हो उन निर्वाचन क्षेत्रों के प्रतिनिधियों (Deputies) का चुनाव कर सकते थे । यह निर्वाचन कानून उदार राजसत्तावादियों व उदार दल के लोगों को अच्छा लगा । परन्तु कट्टर राजसत्तावादियों (Ultra-Royalists) ने इस निर्वाचन कानून का विरोध किया । वे मताधिकार की योग्यता आर्थिक ही रखना चाहते थे । मताधिकार को विस्तृत करने के स्थान पर वे आर्थिक योग्यता को और अधिक ऊंची बनाकर उसे सीमित करना चाहते

थे । परन्तु उदारवादी देकाजे ने उच्च सदन में सामन्तों की संख्या बढ़ा कर कट्टर राजसत्तावादियों की इच्छाओं पर पानी फेर दिया।

प्रेस की स्वतन्त्रता:- 1819 में एक कानून बनाकर प्रेस की स्वतन्त्रता को और वास्तविक बना दिया । समाचार पत्रों पर से सेन्सरशिप समाप्त कर दी और प्रेस सम्बन्धी अभियोग भी अब न्यायालयों में जाने लगे ।

इन सुधारों से वामपंथी (Leftist) दल में पर्याप्त सुधार हुआ ।1819 के चुनाव में 258 में से उन्होंने 90 स्थान प्राप्त किये । परन्तु ये लोग बहुत स्पष्टवादी थे । उनमें प्रमुख ग्रीगोर (Gregoire) था । उसकी स्पष्टवादिता से खोज कर बहुत से उदारवादी राजसत्तावादियों में जा मिले । इसके परिणामस्वरूप 1820 में राजसत्तावादी पुन: प्रबल हो गये । और 1819 में बनाये गये उदार कानून समाप्त कर दिये गये ।

7.2.3.0 चार्ल्स दशम तथा प्रतिनिधि सभा (Chamber of Deputies) में संघर्ष:-

लुई अठारहवें ने तो इंग्लैण्ड के शासक चार्ल्स द्वितीय (Charles II) की भांति संसद से बिना झगड़ा मोल लिए काम चला लिया । परन्तु 1824 में जब वह इस लोक से चल बता तो उसका भ्राता आर्तुआका काउंट (Counts of Artois) चार्ल्स दशम के नाम से फ्रान्स का शासक बना । वह कट्टर राजसत्तावादी तथा इंग्लैण्ड के शासक जेम्स द्वितीय (James II) की भांति अनुदार था । उसके क्रांति के महत्व को नहीं समझा । वह कहा करता था कि "इंग्लैण्ड के राजा की तरह शासन करने की अपेक्षा मैं लकड़ी चीरना अधिक पसन्द करूंगा।"[1] वह फ्रांस में पुन: पुरानी व्यवस्था स्थापित करना चाहता था । उसने सामन्तवाद को पुन: प्रभाव में ला दिया । उसने संसद को क्रान्ति के समय देश से भागे हुए सामन्तों की जब्त सम्पत्ति का भुगतान करने हेतु 988 मिलियन फ्रान्क का ऋण स्वीकार करने को बाध्य किया । उसने कैथोलिक धर्म की प्रधानता स्थापित कर दी । वेलिंगटन के शब्दों में "उसने धर्माचार्यों की सरकार धर्माचार्यों के लिए स्थापित की थी ।"फ्रांस में सर्वप्रथम संन्यासिनियों (नन्स) के लिए उसने मठों की स्थापना की । प्रेस की स्वतन्त्रता समाप्त कर दी गई तथा समाचार-पत्रों पर कठोर सेन्सर लगा दिया । प्रतिनिधि सभा का कार्य-काल 5 वर्ष से बढ़ाकर 7 वर्ष कर दिया । इन प्रतिक्रियावादी कार्यो का परिणाम वही हुआ जो इंग्लैण्ड में जेम्स द्वितीय की नीति के कारण 1688 में हुआ था । चार्ल्स दशम व प्रतिनिधि सभा में संघर्ष छिड़ गया । जब संसद सदस्यों ने पोलिगनेक मंत्रिमण्डल से त्याग-पत्र की मांग की तो प्रथम उसने नवीन चुनाव कराये । अपना बहुमत न आने पर उसने 26 जुलाई को अध्यादेश (The July ordinance) जारी कर दिये । इसके परिणामस्वरूप जुलाई क्रांति (July Revolution) प्रारंभ हो गई । क्रांति में मजदूरों की विजय हुई । चार्ल्स दशम को देश छोड़ना पड़ा और 7 अगस्त 1830 को लुई फिलिप (Louis Philippe) फ्रांस का शासक बना।[1]

7.2.4.0 फ्रांस में संसदीय सरकार की पुनरावृत्ति:-

चार्ल्स दशम के गद्दी छोड़ते ही फ्रांस के क्रान्तिकारी तथा राजनीतिज्ञों के समक्ष पुन: प्रश्न प्रस्तुत हु आ कि देश में अब किस प्रकार की सरकार स्थापित की जावे । वियना कांग्रेस के निर्णय के उपरांत फ्रांस के निवासी दो शासकों से शासित हो चुके थे । क्रांतिकारियों ने प्रजातंत्र के पक्ष में अपना मत व्यक्त किया, परन्तु लफायते ने उन्हें देश की सुरक्षा की दृष्टि से उस समय वैद्य राजसत्ता (Constitutional Monarchy) की स्थापना ही उचित बताई । इस पर उदारवादियों के समर्थन से चार्ल्स दशम के पौत्र लुई फिलिप को फ्रांस का शासक बना दिया गया ।

7.2.4.1.0. लुई फिलिप के संवैधानिक सुधार:-

लुई फिलिप समझदार था । सिंहासन स्वीकार करते समय उसने उदारता का परिचय दिया । उसने "नागरिक राजा" (King of the French) की उपाधि से स्वयं को अलंकृत किया। उसकी इस धारणा ने स्पष्ट किया कि वह अपने को राजवंश से संबंधित न मान कर एक सामान्य नागरिक ही मानता है । उसने कुछ परिवर्तनों के साथ 1814 का संवैधानिक घोषणा पत्र स्वीकार कर लिया । उसने अपना राज्याभिषेक भी तड़क-भड़क के साथ नहीं कराया था । उसने राजा बनने पर न तो ताज ही धारण किया और न राजदण्ड ही धारण किया । अपने बच्चों को उसने साधारण स्कूलों में शिक्षा दिलवाई । अपने इन कार्यों से उसने उदारवादियों के 'दिलों में अच्छी तरह साख जमा ली और उन्हें विश्वास दिलाने हेतु उसने निम्न संवैधानिक सुधार किये ।

7.2.4.1.1. सामन्तों की सभा को उच्चाधिकारियों की सभा में बदल दिया गया:-

अब तक सामन्तों की सभा (Chamber of Peers) में राजा फ्रांस के सामन्तों को ही मनोनीत करता था और वे वंशानुगत होते थे । परंतु लुई फिलिप ने यह अधिकार वंशानुगत नहीं रखा और उसे आजीवन में परिवर्तित कर दिया । इसके अलावा इसके सदस्य भी अब फ्रांस के सामन्त न हो कर राज्य के उच्च अधिकारियों में से मनोनीत होने सगे ।

7.2.4.1.2 (2) प्रतिनिधि सभा (The Chamber of Deputies) को अधिक लोकतन्त्रीय बनाया गया:-

इंग्लैण्ड की भांति फ्रांस में भी निचले सदन के प्रतिनिधियों के लिए निर्वाचन योग्यता आर्थिक रखी हुई थी । लुई फिलिप ने उसे 1000 फ्रेंक से घटा कर 500 फैंक कर दी तथा उनकी आयु भी 40 वर्ष से घटा कर 30 वर्ष कर दी । इसका परिणाम यह निकला कि प्रतिनिधि सभा में अब धनी सांसदों के स्थान पर मध्यम वर्ग के प्रतिनिधि अधिक निर्वाचित होने लगे ।

1 “I would rather chop wood” he said. “Than to reign after the fashion of the King of England”.

7.2.4.1.3 (3) मताधिकार को व्यापक बनाया गया:-

मताधिकार को अधिक व्यापक बनाने की दृष्टि से मतदाताओं की आर्थिक योग्यता तथा उनकी आयु में कमी कर दी गयी । अब वह व्यक्ति मत दे सकता था जिसकी आयु 25 वर्ष हो तथा 200 फैंक वार्षिक कर देता हो ।

(4) संसद में विधेयक भेजने का अधिकार अब राजा के पास न हो कर संसद को दे दिया गया ।

(5) धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की गयी:- चार्ल्स दशम द्वारा बनाया गया कैथोलिक धर्म अब राजधर्म नहीं रहा । शिक्षण संस्थाओं में से भी कैथोलिक धर्म का हस्तक्षेप समाप्त कर दिया गया।

(6) पुस्तकों एवं समाचार पत्रों पर सरकारी सेंसर स्थायी रूप से हटा लिया गया।

7.2.4.1.4. समीक्षा:-

उपर्युक्त संसदीय सुधारों से स्पष्ट है कि लुई फिलिप के शासन में संसद अधिक शक्तिशाली बनी । निर्वाचन क्षेत्र के विस्तृत होने से मध्यम वर्ग और लोक-संप्रभुता (Popular Sovereignty) के सिद्धान्त को भारी सफलता मिली । सामन्तों की सभा में वंशानुगत अधिकार समाप्त करने से राजभक्त सामन्त वर्ग को बड़ा धक्का लगा । राजा के अधिकारों में कमी कर संसद को अधिक लोकतंत्रीय बनाया गया । अभिजात तंत्र (Aristocracy) की इस असफलता से मध्यम वर्ग (Bourgeoisie) का लंबे समय के लिए प्रभाव स्थापित हो गया । ले होम ने कहा है, "आश्चर्य की बात है कि सामन्त वर्ग ने अपने आप को इतनी आसानी से हटा लिया ।"

राजा के निरंकुश एकतन्त्र के स्थान पर जनता की संप्रभुता का सिद्धान्त प्रतिपादित हो गया । आर्थिक प्रतिबन्धों में ढील देने से मतदाताओं की संख्या दुगुनी अवश्य हो गई । परन्तु इससे किसान व मजदूर वर्ग को कोई लाभ नहीं हुआ । केवल प्रवर व्यक्ति (Elites) ही लाभान्वित हुए।

फ्रांस में समाजवाद का उदय

7.2.5.0. समाजवाद का उदय:-

समाजवाद औद्योगिक क्रांति का एक परिणाम है । इस क्रांति का सर्वप्रथम आरंभ इंग्लैण्ड में हुआ । अत: मजदूर वर्ग का आविर्भाव भी सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में ही हुआ । वहां के मजदूर वर्ग ने धनी मिल मालिकों के शोषण से बचने हेतु संघर्ष किया जिसका उल्लेख हम पीछे कर आये हैं । उस इंग्लैण्ड के समाजवादी आन्दोलन की प्रगति के साथ-साथ ही फ्रांस में समाजवाद का विकास हुआ । 1789 की महान क्रांति के फलस्वरूप व्यावसायिक वर्ग तथा कृषक वर्ग को तो लाभ पहुंचा परंतु श्रमिक लोग पूर्णत: निराश ही रहे । सन् 1795 में बेब्यू (Babeuf) ने साम्यवादी राज्य स्थापित करने का प्रयास किया परन्तु वह मृत्युदण्ड से दण्डित किया गया । 1815 में शांति स्थापित हो जाने पर फ्रांस का औद्योगिक विकास बढ़ने लगा । इंग्लैण्ड से भारी मशीनों का आयात किया गया । इस विकास के साथ ही फ्रांस में श्रमिक वर्ग

बढ़ने लगा । उनकी गिरती हुई दशा ने इंग्लैण्ड के श्रमिकों की भांति अपने कुछ समाज सुधारकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया । 1819 में सिस्मौंडी (Sismondie) ने सरकार से श्रमिकों के कार्य करने के समय का निर्धारण करने तथा उनकी दशा में सुधार करने का अनुरोध किया । उसका समाजवाद भी इंग्लैण्ड के समाजवाद की भांति "अहस्तक्षेप की नीति" पर आधारित था ।

7.2.5.1 समाजवाद के विकास के कारण:-

(1) फ्रांस की राज्य क्रांति

(2) 1815 के उपरान्त फ्रांस का बढ़ता हुआ औद्योगिक विकास

(3) उत्पादन की वृद्धि के साथ श्रमिकों की बढ़ती हुई दयनीय अवस्था

(4) 1835 का कानून:- इस कानून के अन्तर्गत फ्रांस के. मजदूर अपना संगठन नहीं बना सकते थे ।

(5) गणतन्त्रवादियों का निर्बल हो जाना ।

(6) ग्विजो (Guizot) का दस वर्षीय प्रशासन:- ग्विजो के राजनीतिक सिद्धान्त लुई फिलिप से मेल खाते थे । इसी कारण वह लुई फिलिप के पतन तक मंत्रीमण्डल का अध्यक्ष बना रहा । वह समानता के विचार को भ्रामक मानता था । मताधिकार को विस्तृत नहीं करना चाहता था । मजदूरों की दशा सुधारने के लिए कानून बनाना वह राज्य का कर्तव्य नहीं मानता था । कहने का तात्पर्य यह है कि वह किसी भी प्रकार के सुधार अथवा परिवर्तन के पक्ष में नहीं था । इसीलिए 1842 में लामार्तिन (Lamestine) ने कहा था, "उसका (ग्पिजो) कार्य तो एक पत्थर-स्तम्भ भी कर सकता था ।"

(7) इंग्लैण्ड के समाजवाद का प्रभाव ।

7.2.5.2. समाजवाद के प्रवर्तक:-

फ्रांसिसी समाजवाद का वास्तविक संस्थापक कुलीन वंशीय सेंट साइमन (Saint Simon, 1760-1825)था। राज्य क्रान्ति के समय वह गणतन्त्रीयवादी दल का सदस्य हो गया था । 1817 में कुछ ऐसी पुस्तकें प्रकाशित हुई जिनमें आर्थिक समस्याओं पर विचार किया गया था । उन विचारों से प्रभावित हो कर सेंटसाइमन ने "द न्यू क्रिश्चियनिटि" में अपने समाजवादी विचार व्यक्त किये । वह रूढ़िवादी धर्म तथा विज्ञान का प्रबल समर्थक था । उसका विचार था कि समाज का वैज्ञानिक ढंग से पुनर्गठन हो तथा उद्योगपतियों द्वारा उसका नियंत्रण होना चाहिए । वह प्रतियोगिता की भावना को समाप्त कर श्रमिकों के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाना चाहता था । उसका कहना था कि उत्पादन गैर-जिम्मेदार धनी वर्ग के हाथों में नहीं छोड़ना चाहिए । इस प्रकार स्पष्ट है कि इंग्लैण्ड के रोबर्ट ओवन की भांति उसके विचार भी काल्पनिक (Uptopian)थे, परन्तु काल्पनिक होते हुए आधुनिक समाजवाद के विचारों से पूर्ण सन्निहित थे। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके समर्थकों ने एक समाजवादी संस्था स्थापित की । उन्होंने

समाजवादी विचारों का प्रसार किया । उन प्रसारकों में बजार्ड (Bazard) तथा एनफेंन्सिटन (Enfantin) के नाम उल्लेखनीय हैं ।

7.2.5.3.

सेंट साइमन का समकालीन चार्ल्स फाउएरिए (Charles Fourier, 1772-1837) दूसरा समाजवादी नेता था । वह लियोस का एक व्यापारी था । वह तत्कालीन आर्थिक विषमताओं से अति उत्पीड़ित हुआ और उनके निवारणार्थ वह अपने विचार व्यक्त करने लगा । उसने असंख्य निर्धन श्रमिकों की स्थिति में सुधार लाने के लिए एक योजना बनाई और उस योजना को उसने 1600 व्यक्तियों के छोटे-छोटे समूहों (Communes) से लागू करनी चाही । वह इस योजना से श्रमिकों में सहयोग की भावना उत्पन्न करना चाहता था । समूहों में रहते हुए व्यक्ति एक दूसरे की वस्तुओं का प्रयोग कर सकें । श्रमिकों को उनकी आवश्यकता के अनुसार एक निश्चित राशि प्रतिमास दी जाए । शेष राशि को उसने श्रमिकों व विशेष योग्यता प्रदर्शित करने वाले व्यक्तियों में बांटने का सुझाव दिया और बांटे जाने वाली राशि का अनुपात भी बताया । हालांकि उसकी यह योजना साम्यवादी विचारों से अधिक प्रभावित थी, तथापि लोगों को उसकी यह योजना बहुत पसंद आयी । रोबर्ट ओवन की भांति उसने भी 1832 में वर्साय (Versallies) के समीप इस प्रकार के समाज की स्थापना की परन्तु सफलता नहीं मिली । इस प्रकार फाउरिये के ये साम्यवादी समूह (Communes) कहलाते थे । उसके विचारों का प्रभाव फ्रांस में सीमित रहा क्यों कि वह अपने अनुयायी अधिक नहीं बना सका ।

7.2.5.4

सन् 1832 के उपरांत सेंट साइमन तथा फाउरिए की काल्पनिक योजनाओं की विफलता के उपरांत व्यावहारिक योजनाएं प्रस्तुत करने वालों में लुई ब्लां (Louis Blanc 1913-1882) का नाम अधिक उल्लेखनीय है । उसने उदारवादी विचारधारा की आलोचना की क्योंकि उसके राज्य के श्रमिकों को अधिकार न मिलने के बराबर थे । उसने फ्रांस के मजदूरों की तत्कालीन आर्थिक विषमताओं पर अच्छा प्रकाश डाला । उसने आर्थिक क्षेत्र में वैयक्तिक स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का विरोध किया और राज्य के बेरोजगार मजदूरों की रोजी के लिए "राष्ट्रीय कारखानों" (National Workshops) की मांग की । उसका विश्वास था कि क्रांतिकारी षड्यन्त्र के माध्यम से सत्ता पर अधिकार कर समाजवाद लाया जा सकता है । उसने अपने भाषणों व लेखों से फ्रांस के श्रमिकों के दिलों में यह बात भली-भांति बिठा दी कि वर्तमान सरकार धनिकों की, धनिकों द्वारा, धनिकों के लिए है ।[1] अत: वह व्यापक पूंजीवाद का समापन करना चाहता था । इस पूंजीवाद के समापन के लिए औद्योगिक संगठनों का संचालन व नियंत्रण राज्य द्वारा होना आवश्यक बताया । उधर उसने मजदूरों के संगठनों पर भी बल दिया । अपने इन विचारों को उसने 1839 में प्रकाशित अपनी पुस्तक "आर्गेनाइजेशन ऑफ लेबर" (Organisation of labour) में व्यस्क किये।

1 " Government of the rich for the rich and by the rich." Louis Blanc

लुई ब्लां 1882 तक अपने विचारों का प्रसार करता रहा । हालांकि मध्यम वर्ग के लोगों ने उसके समाजवादी विचारों में कोई रूचि नहीं प्रदर्शित की, तथापि लुई फिलिप के शासनकाल में उसके विचार तेजी से विकसित हुए । इसका कारण यह था कि एक तरफ तो पेरिस व लियोंस नगरों में कारखानों की संख्या बढ़ रही थी और उनकी वृद्धि से श्रमिकों की संख्या बढ़ रही थी । और वे सब मजदूर इसके विचारों से प्रभावित हो रहे थे । उसके विचारों से प्रभावित मजदूर सरकार से "काम के अधिकार" की मांग करने लगे । इस प्रकार लुई ब्लां के नेतृत्व में एक समाजवादी दल स्थापित हो गया । यह दल फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना चाहता था । यही कारण था कि 1848 की क्रांति को इसके समाजवादी विचारों से महान प्रेरणा तथा क्रांति के उपरांत द्वितीय गणतन्त्र (The Second Republic) की स्थापना में महान सहयोग मिला ।

7.2.6.0 द्वितीय गणतन्त्र (The Second Republic)

1848 की क्रांति के फलस्वरूप लुई फिलिप को गद्दी छोड़नी पड़ी । वह अपने नाती को भी गद्दी का मालिक न बना सका क्योंकि अब फ्रांसवासियों को राजतन्त्र में सख्त घृणा हो गयी थी । अत: 25 फरवरी 1848 को फ्रांस में गणतन्त्र की घोषणा कर दी गयी । यह क्रांति भी अकस्मात् प्रादुर्भूत हुई थी । लोग इसके लिए तैयार न थे । अत: लुई फिलिप के इंग्लैण्ड पलायन के उपरांत फ्रांस के विभिन्न दलों के लोग भावी सरकार के विषय में विचार करने लगे। नवीन सरकार के गठन तक कार्य चलाने हेतु ' 'अस्थायी सरकार' ' का निर्माण किया गया और निश्चय हुआ कि स्थिर रूप से गणतन्त्रीय सरकार के गठन तथा नवीन शासन-विधान का निर्माण करने हेतु एक राष्ट्रीय सभा (National Assembly) का निर्वाचन कराया जावे । राष्ट्रीय सभा के निर्वाचन हेतु 5 मार्च 1848 का दिन निश्चित किया गया ।

7.2.6.1. अस्थायी सरकार के कार्य

अस्थायी सरकार में लामातीर्न लेहू-रोलीन, आरागो, लुई ब्लां और अलबर्ट जैसे समाजवादी नेता सम्मिलित थे । इन सदस्यों में भी आपसी मत-भेद अवश्य थे- पर वे इस बात पर अवश्य सहमत थे कि देश' में राजतन्त्र का प्रयोग अवश्य असफल हो गया है । अल्पमत में होते हुए भी पेरिस का गणतन्त्र दल इस समय प्रभाव में था । अत: उसने इस अस्थायी सरकार को निम्नलिखित कानून बनाने को बाध्य किया ।

1. समस्त पुरुषों को मताधिकार प्रदान करना ।
2. श्रमिकों के काम करने के घण्टों में कमी करना
3. संसद द्वारा राष्ट्रीय कारखानों को काम करने का अधिकार देना ।
4. लक्समबर्ग आयोग को सामाजिक सुधारों की संभावनाओं की खोज करने के निर्देश देना ।

स्पष्ट है उपर्युक्त चारों कार्यो पर समाजवादी आन्दोलन व इसके प्रचारकों के विचारों का प्रभाव था ।

राष्ट्रीय संविधान सभा-अस्थायी सरकार ने प्रथम कार्य पुरुष वर्ग को मताधिकार देने का किया । इस संवैधानिक सुधार के अन्तर्गत 21 वर्ष की आयु के पुरुष को मत देने का तथा 25 वर्ष की प्राप्त आयु के पुरूष को चुनाव में खड़े होने का अधिकार दे दिया गया । अस्थायी सरकार का यह कार्य आधुनिक लोकतन्त्र के इतिहास में एक महान घटना थी । इंग्लैण्ड में भी अभी मताधिकार की आयु 21 वर्ष नहीं की गयी थी । दूसरे इस वयस्क मताधिकार की घोषणा से फ्रांस में मतदाताओं की संख्या 2 लाख के बढ़कर 90 लाख हो गई । 23 अप्रैल को चुनाव कराये गये । 900 प्रतिनिधि चुने गये । इनमें 800 नरम गणतन्त्र-वादी थे । अत: स्पष्ट है कि समाजवादी संख्या में बहुत ही कम रह गये । 8 गई को अस्थायी सरकार ने अपनी शक्ति त्याग दी और संविधान पूर्ण होने तक संविधान सभा ने, अपने में से 5 सदस्यों का कार्यपालक आयोग (Executive Commission) गठित कर दिया।[1] लाभार्तीन इसका अध्यक्ष बनाया गया। समाजवादी कोई भी इसका सदस्य नहीं था ।

7.2.6.2. नवीन संविधान:

23 अक्टूबर, 1848 को संविधान संपूर्ण हुआ । इस संविधान के अंतर्गत संसदीय व्यवस्थापिका और एक राष्ट्रपति की व्यवस्था की गयी । दोनों का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष प्रणाली से रखा गया ।

राष्ट्रपति:- नवीन संविधान के अंतर्गत 10 दिसंबर 1848 को राष्ट्रपति के चुनाव संपन्न हुए । राष्ट्रपति पद के लिए 5 उम्मीदवार थे । उनमें लुई नेपोलियन विजयी हुआ । राष्ट्रपति का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष प्रणाली से हुआ । यह फ्रांस के संविधान की एक अपूर्व विशेषता सिद्ध हुई । उसका निर्वाचन 4 वर्ष के लिए होता था । चार वर्ष के अवकाश के उपरांत वह पुन: राष्ट्रपति पद के लिए कड़ा हो सकता था । राष्ट्रपति को इस संविधान के अंतर्गत सर्वशक्तिमान रखा गया । वह अपने मंत्रीमण्डल के गठन में पूर्ण स्वतंत्र रखा गया । वह अपने मंत्रियों को कभी भी पदच्युत कर सकता था । इसी प्रकार वह अन्य उच्चाधिकारियों को भी चाहे जब सेवामुक्त कर सकता था । उसे कानून बनाने का भी अधिकार दिया गया । वही सेना का प्रमुख होता था । संधि करने का अधिकार भी उसे दिया गया, परंतु इसके लिए उसे अपने एक सदनात्मक व्यवस्थापिका की अनुमति लेना आवश्यक था । 20 दिसम्बर, 1848 को लुई नेपोलियन ने राष्ट्रपति का पद संभाला और उसे गणतंत्र के प्रति वफादार रहने की शपथ गृहण की।

व्यवस्थापिका सभा:- इस संविधान के अंतर्गत एक संसदीय व्यवस्थापिका की व्यवस्था की गयी । उसकी सदस्य संख्या 750 निर्धारित की गयी और उसका कार्यकाल तीन वर्ष का रखा गया । तीन वर्ष के उपरांत सभी सदस्यों का निर्वाचन आवश्यक था ।

1 केम्ब्रिज मार्डन हिस्ट्री जिल्द 10 पृ-108

7.2.6.2. द्वितीय गणतन्त्र की समीक्षा:-

निःसंदेह 1848 की क्रांति ने फ्रांस को लोकतंत्र के मार्ग पर बहुत अधिक आगे बढ़ा दिया । राष्ट्रपति का चुनाव नागरिकों द्वारा प्रत्यक्ष प्रणाली द्वारा रखा गया । हालांकि इस बात पर संविधान सभा में बहुत विवाद छिड़ा । सदस्यों ने आशंका व्यक्त की कि जनता से सीधा संपर्क में होने से राष्ट्रपति कहीं देश का तानाशाह न बन जाए । काफी वाद-विवाद के उपरांत चुनाव तो प्रत्यक्ष नागरिकों द्वारा ही रखा और यह भी सही निकला कि चार वर्ष के उपरांत ही यह दूसरा गणतन्त्र भी समाप्त हो गया । इसके - अलावा फ्रांस इस दिशा में इंग्लैण्ड के संविधान का अनुयायी नहीं रहा । उसने संवैधानिक राजसत्ता को समाप्त कर अध्यक्ष प्रणाली को अपनाया ।

व्यवस्थापिका की स्थापना में भी फ्रांस इंग्लैण्ड से भिन्न मार्गी हो गया । इंग्लैण्ड में द्विसदनीय संसद की व्यवस्था थी और आज भी है । इंग्लैण्ड का उच्च लार्ड्स सदन (House of Lords) है । इस सदन के सदस्यों को वंशानुगत अधिकार प्राप्त था और फ्रांस वाले देख रहे थे कि इस सदन के सदस्य अनुदार विचारों के हैं और वे संवैधानिक विकास में बाधक ही सिद्ध हो रहे हैं । लुई फिलिप के समय फ्रांस की संसद भी द्वि सदनात्मक थी और फ्रांस का ऊपरी सदन (Chamber of Peers) इंग्लैण्ड के ऊपरी सदन (House of Lords) की भांति स्थायी व अनुदार विचारों का ही सदन रहा था। उससे भी फ्रांसवासी सन्तुष्ट नहीं रहे थे । इस कारण से फ्रांस की संविधान सभा ने इस बार सारी विधायिनी शक्तियां 750 सदस्यीय एक सदन को ही सौंप दी । इसके अलावा वे इंग्लैण्ड की भांति अनुदार सांसदों से ऊपरी सदन का गठन करके संवैधानिक सुधारों के मार्ग में अवरोध खड़ा करना नहीं चाहते थे । इन्हीं कारणों से फ्रांस के दूसरे गणतन्त्र के संविधान निर्माताओं ने एक सदनीय व्यवस्थापिका की व्यवस्था की । ये सब सावधानियां ध्यान में रखते हुए भी इस संविधान के अन्तर्गत व्यवस्थापिका के चुनाव सम्पन्न होते ही गणतन्त्रवादी आश्चर्य चकित हो गये । एक ही वर्ष पहले जिस जनमत ने गणतन्त्रवादियों को भारी बहुमत से विजयी बनाया था, उसी ने राजतन्त्र समर्थकों को बहुमत से प्रतिष्ठित कर दिया । इस चुनाव ने गणतन्त्रवादियों का भविष्य उसी दिन तय कर दिया । अगले चार वर्षो के उपरान्त ही नेपोलियन द्वितीय गणतन्त्र का गला घोंट कर द्वितीय साम्राज्य की स्थापना में सफल हो गया ।

7.2.7.0. 1852 का नवीन संविधान:

नेपोलियन ने राष्ट्रपति पद संभालते ही द्वितीय गणतन्त्र के संविधान के प्रति वफादारी की शपथ अवश्य ली थी, परन्तु वह बाल्यावस्था से ही महत्वाकांक्षी था । अपने चाचा नेपोलियन बोनापार्ट के समान महान् सम्राट बनने की सदा वह कल्पना किया करता था । अपनी कल्पना को साकार रूप प्रदान करने हेतु वह अपने मंत्रिमण्डल की चिन्ता न करते हुए जनता का प्रिय बनने का प्रयास करता रहा । जनवरी 1851 में उसने अपना मन्त्रिमण्डल पुन: बर्खास्त कर

"Empire is already in existence."

-Thiers.

दिया और नवीन मन्त्रियों की नियुक्ति कर दी । नेपोलियन की इस कार्यवाही पर थियरे (Thiers) ने व्यवस्थापिका में कहा था ' 'साम्राज्य स्थापित हो चुका हैं ।' 2 दिसम्बर 1851 को नेपोलियन ने घोषणा की कि प्रतिनिधि सभा को भंग किया जाता है । क्योंकि उसके सदस्य ही गणतन्त्र को नष्ट करने का प्रयास कर रहे हैं । अत: फ्रांस के नागरिक अपने मताधिकार से नवीन संविधान बनाने का अधिकार देश के राष्ट्रपति (लुई नेपोलियन) को ही सौंप दें । इस घोषणा के अनुसार 20 दिसम्बर को जनमत संग्रह हुआ । 6,40,000 के विरूद्ध 75 लाख नागरिकों ने नेपोलियन को संविधान में संशोधन करने के अधिकार के पक्ष में मत दिए । इस जनमत के उपरान्त 1 जनवरी 1852 को ही नवीन संविधान बन गया । उसके अन्तर्गत निम्न परिवर्तन किये गये ।

7.2.7.1.(1) राष्ट्रपति का कार्य-काल 4 वर्ष के स्थान पर 10 वर्ष कर दिया गया ।

(2) व्यवस्थापिका को तीन सदनों में विभक्त कर दिया गया ।

(अ) राज्य-परिषद-इसके सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा रखी गई ।

(ब) व्यवस्थापिका सभा- इसकी सदस्य संख्या 250 कर दो गई और सदस्यों का चुनाव वयस्क मताधिकार पर रखा गया ।

(स) सीनेट- इसके सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा जीवन भर के लिए की जानी थी । सिनेट को यह भी कार्य दिया गया कि वह देखे कि कोई कानून शासन-विधान के विरूद्ध न हो जाये ।

उपर्युक्त संवैधानिक सुधारों से राज्य की वास्तविक शक्ति राष्ट्रपति के हाथों में आ गई। व्यवस्थापिका के दो सदनों के सदस्यों की नियुक्ति तो राष्ट्रपति ही करता था । अत: उसे अपनी पूर्ण मनमानी करने का अवसर मिल गया । इसीलिए दि मापस (De Maupas) ने कहा- "फ्रांस में लुई नेपोलियन की निरंकुश सत्ता स्थापित हो गई है । "फ्रांस अब स्वतंत्रता की भूमि नहीं रह गया था । 1815 के उपरान्त जिन विभिन्न सरकारों ने देश में शासन संचालन किया था उनके अन्तर्गत संसद राष्ट्रीय जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गई थी और फ्रांसवासियों को राजनीतिक विषयों का प्रशिक्षण मिल गया था । किन्तु विकास की इस आशाजनक प्रगति को नेपोलियन ने अपने संविधान से अवरूद्ध कर दिया ।

7.2.8.0. द्वितीय साम्राज्य (Second Empire) में श्रमिकों के हित में कार्य:

जैसा कि इससे पूर्व स्पष्ट किया जा चुका है कि नेपोलियन एक बहुत ही महत्वाकांक्षी युवक था । नेपोलियन बोनापार्ट सदा उसके विचारों में छाया रहता था । तभी तो वह सम्राट बनना चाहता था । 1 दिसम्बर 1852 को उसने सीनेट के सम्मुख अपने भाषण में व्यक्त की कि जनता की वास्तविक इच्छा यह है कि मुझे सम्राट नियुक्त किया जावे । सीनेट ने शीघ्रता से इस संदर्भ में प्रस्ताव पारित कर दिया और जनता ने भी अपने 80 लाख मतों से इस प्रस्ताव का अनुमोदन कर दिया । 2 दिसम्बर 1852 को नेपोलियन फ्रांस का सम्राट बन बैठा और इतिहास में वह नेपोलियन तृतीय के नाम से विख्यात हुआ ।

साम्राज्य का शासन विधान 14 जनवरी 1852 के विधान पर ही आधारित था । सम्राट शासन का केन्द्र बन गया और राज्य की ओर से. उसे समस्त अधिकार प्राप्त हो गये ।[1] नेपोलियन अपने शासन के प्रारंभ में ही इस निष्कर्ष पर पहुंच गया था कि फ्रांस की जनता स्वतन्त्रता की अपेक्षा शान्ति व सुव्यवस्था की अधिक इच्छुक है । अत: उसने प्रेस पर कठोर नियन्त्रण लगा दिए । इसके अलावा पेरिस के लोगों की संभाषण-स्वतन्त्रता भी छीन ली । शिक्षा भी उसकी दमन नीति से नहीं बच सकी । परन्तु जब उसने आस्ट्रिया के विरूद्ध इटली की सहायता के लिए (1859) अपनी सेवाएं भेज दीं तो अल्पमत का गणतन्त्र-दल भी उसके पक्ष में आ गया । समाजवादी सैंट साइमन के विचारों से भी वह प्रभावित था । अत: 1860 में उसने उदार दल के लोगों को भी कई सुविधाएं प्रदान कीं । निःसन्देह औद्योगिक विकास से नेपोलियन के शासन में फ्रांस एक सम्पन्न देश हो गया । औद्योगिक विकास के साथ श्रमिकों की संख्या भी काफी बढ़ गई थी । नेपोलियन फ्रांस की समृद्धि व श्रमिकों का महत्व भली-भांति समझता था । अत: उसने श्रमिकों के साथ सम्पर्क बढ़ाया तथा उनके हित में निम्नलिखित सुधार किए ।[1]

7.2.8.1

(1) श्रमिकों को उनके श्रमिक संघ (Trade Unions) बनाने का अधिकार दे दिया ।

(2) श्रमिकों के निवास के लिए भी सुव्यवस्था की योजना बनाई ।

(3) कारखाने में दुर्घटना से मरने वाले श्रमिकों को स्वामी द्वारा मुआवजा दिलाने की व्यवस्था भी की गई ।

(4) बीमार मजदूर को अवकाश दिलाने तथा उसका उपचार कराने की भी व्यवस्था की।

(5) मजदूरों द्वारा की जाने वाली हड़तालों को वैद्य मान लिया गया ।

(6) मजदूरों के लिए उसने जीवन-बीमा की भी योजना बनाई ।

(7) नेपोलियन तृतीय के ये श्रमिक सुधार नियम ठीक वैसे ही थे जैसे कि 1875 में डिजरैली के प्रयासों से तथा 1905 में मजदूर दल की सरकार के प्रयासों से इंग्लैण्ड में पारित किये गये थे ।

7.2.9.0. तृतीय गणतन्त्र (The Third Republic)

2 सितम्बर 1870 को सेड़ान (Sedan) के युद्ध में महत्वाकांक्षी नेपोलियन परास्त हो गया । वह बन्दी बना लिया गया । कहते हैं कि इस प्रकार की पराजय फ्रांस को पहले कभी नहीं मिली थी ।[2] अत: अब यह प्रश्न पुन: उत्पन्न हो गया कि देश में किस प्रकार की सरकार

3 केम्ब्रिज माडर्न हिस्ट्री, जिल्द 11 पृ- 288

1 F.H. Hayes: History of Europe p. 241

2 J.P.T. Bury: Gambetta and the National degence'p. 45. “There had been no disaster in French History more complete or more humiliating.”

स्थापित की जाये । व्यवस्थापिका की बैठक चल रही थी । गेम्बेटा (Gambetta) के नेतृत्व में कुछ गणतन्त्र के समर्थक "सिटी हाल" में एकत्रित हुए और उन्होंने 4 सितम्बर को गणतन्त्र (Republic) की घोषणा कर दी । सैनिक गवर्नर जनरल (Trouchu) के नेतृत्व में अस्थायी सरकार का गठन किया गया । गेम्बेटा व जुलूस फेवर (Jules Favre) को भी उस अस्थायी सरकार का सदस्य बनाया गया । 1875 में तीसरे गणतन्त्र का संविधान तैयार हुआ ।

7.2.9.1 तृतीय गणतन्त्र का संविधान

राष्ट्रपति गणतन्त्र में फ्रांस के राष्ट्रपति का पद इंग्लैण्ड के शासक की भांति संवैधानिक रखा गया । उसका निर्वाचन अब विधान मण्डल ये दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा अप्रत्यक्ष विधि से कर दिया गया । राष्ट्रपति का कार्य-काल 10 वर्ष से घटाकर 7 वर्ष रख दिया गया । उसे विधेयक प्रस्तावित करने और उसे पारित कराने का अधिकार दिया गया । दोनों सदनों में पारित हो जाने पर विधेयक को अधिनियम बनाने हेतु उस पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होना आवश्यक था । जल व थल सेना के अधिकारियों की नियुक्ति वहीं करता था । उसे यह भी अधिकार प्राप्त था कि वह सिनेट (Senate) के परामर्श पर चेम्बर ऑफ डेप्युटीस (Chamber of Deputies) को भंग कर दे । देश-द्रोह के अतिरिक्त अन्य किसी अपराध के लिए उस पर अभियोग नहीं चलाया जा सकता था । वह निर्वाचन में पुन: खड़ा हो सकता था । अपराधियों को क्षमा करने का अधिकार भी उसे प्राप्त था । परन्तु वह अपने देश की संसद के प्रति उत्तरदायी नहीं होता था । उसके प्रत्येक आदेश पर किसी न किसी मन्त्री के हस्ताक्षर आवश्यक थे । इस प्रकार उसके आदेश के लिए उत्तरदायी राष्ट्रपति न होकर वह मन्त्री हो जाता था । अत: इस प्रकार उसके आदेश के लिए उत्तरदायी राष्ट्रपति न होकर वह मन्त्री हो जाता था । अत: वह नाम मात्र का ही अध्यक्ष रहा । अत: सी.डी. हैजन लिखता है कि राष्ट्रपति की स्थिति एक संवैधानिक शासक के सदृश्य ही रही ।[1] फ्रांस के संविधान के अन्तर्गत उपराष्ट्रपति की कोई व्यवस्था नहीं रखी गई ।

7.2.9.2. मंत्री-मण्डल

तीसरे गणतन्त्र की मुख्य विशेषता यह थी कि वह इंग्लैण्ड के संविधान की भांति संसदीय व्यवस्था पर आधारित था । प्रतिनिधि सभा (Chamber of Deputies) में बहुमत प्राप्त दल के नेता को प्रधान-मन्त्री बनाया जाता था । अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री करता था । मन्त्री सिनेट तथा प्रतिनिधि सभा दोनों में से नियुक्त किये जाते थे, परन्तु मतदान के समय वे अपना मत अपने सदन में ही दे सकते थे । फ्रांस में मन्त्री मण्डल का गठन इंग्लैण्ड की भांति सुगम नहीं था क्योंकि इंग्लैण्ड में तो प्रमुख रूप से दो ही राजनीतिक दल होते हैं । मन्त्रीगण सामूहिक रूप से तथा व्यक्तिगत रूप से सरकार की नीति तथा अपने व्यक्तिगत कार्यो के लिए प्रतिनिधि-सभा के प्रति उत्तरदायी होते थे ।

7.2.9.3.0 संसद:-

इंग्लैण्ड की भांति फ्रांस की संसद भी द्विसदनीय रखी गई । तीसरा सदन समाप्त कर दिया गया । इसके उच्च-सदन का नाम सिनेट (Senate) तथा निम्न सदन का प्रतिनिधि सभा (Chamber of Deputies) रखा गया ।

7.2.9.3.1. (1) सिनेट:-

इसकी सदस्य संख्या 300 रखी गई । इनमे 75 सदस्यों का चुनाव जीवन भर के लिए तथा 225 का निर्वाचन निर्वाचक मण्डलों द्वारा 9 वर्ष के लिए किया जाता था । इसके सदस्यों की आयु निर्वाचन के लिए कम से कम 40 वर्ष निर्धारित की गई । अत: स्पष्ट है कि सिनेट का गठन इंग्लैण्ड के उच्च सदन (House of Lords) से लगभग भिन्न ही था । इसके अधिकार उससे अधिक अवश्य थे ।

7.2.9.3.2. (2) प्रतिनिधि सभा:-

इसकी सदस्य संख्या 610 निर्धारित की गई । चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर 4 वर्ष के लिए होता था । बाहय रूप से तो इसके अधिकार सिनेट के तुल्य ही थे पर व्यवहार में यह सिनेट से अधिक प्रभावशाली थी । इस सदन को राष्ट्रपति के निर्वाचन तथा संविधान में संशोधन करने का अधिकार था । प्रधानमंत्री इसी दल का सदस्य, होता था । तथा उसे इस दल के प्रति उत्तरदायी होना पड़ता था ।

7.2.9.3.3. राष्ट्रीय सभा (National Assembly)

सिनेट तथा प्रतिनिधि सभा को संयुक्त रूप से राष्ट्रीय सभा कहा जाता था । राष्ट्रपति का चुनाव इसके सदस्यों द्वारा ही होता था । संविधान में संशोधन करने का अधिकार भी इसे ही प्राप्त था ।

7.2.9.3.4. संविधान की समीक्षा-

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है फ्रांस का 1875 का संविधान राजतन्त्रवादी तथा गणतन्त्रवादी नामक दो विचारधाराओं के बीच एक समझौता था । इसमें फ्रांस के ऐतिहासिक विकास के विभिन्न स्वरूपों का ध्यान रखा गया है । यह संविधान द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति तक अस्तित्व में रहा । अत: लिप्सन (Lipson) महोदय की मान्यता है कि इस समय फ्रांस में गणतन्त्र की जड़ें बहुत गहरी पहुंच गई थीं । 1789 से फ्रांस में क्रान्तियां होना आरंभ हुआ और 1870 के उपरान्त गद्दी के प्रश्न पर संघर्ष नहीं हुआ । इससे स्पष्ट है कि जब तक गणतन्त्रवादियों को अपने उद्देश्य में पूर्ण सफलता नहीं मिली फ्रांस में सरकार के स्वरूप को

1 “The President ‘s position resembles that of a constitutional monarch.” C.D. Hazen

लेकर उथल-पुथल मचती रही । हालांकि 1875 में भी फ्रांस में सीमित गणतन्त्र की ही स्थापना हुई, परन्तु फिर भी वह एकतन्त्र सरकार से कहीं उत्तम थी । फ्रांस के तृतीय गणतन्त्र का संविधान इंग्लैण्ड के संविधान के अनुरूप था जो इंग्लैण्ड में फ्रांस से पूर्व स्थापित हो चुका था । फ्रांस के इस गणतन्त्र में विलंब क्यों हुआ? इसका कारण यह था कि इंग्लैण्ड वासियों को राजा से प्रेम था । राजतन्त्र से नहीं जब कि फ्रांस वालों की राजतन्त्र में निष्ठा थी राजा में नहीं ।

7.3.0 जर्मनी में संवैधानिक सरकार की स्थापना के प्रयास:

जर्मनी व वियना कांग्रेस (1815): अठारहवीं सदी के अन्त में जर्मनी 200 से अधिक छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था । वे राज्य 1806 तक पवित्र रोमन साम्राज्य के अर्ग थे । महत्वाकांक्षी व साम्राज्यवादी नेपोलियन ने 1806 में पवित्र रोमन साम्राज्य (Holy Roman Empire) का अन्त कर दिया और उन 200 जर्मन राज्यों को 'राइन परिसंघ' (Confederation of the Rhine) के रूप में गठित कर दिया । इस 'राइन परिसंघ में राज्यों की संख्या 200 से घटकर 38 रह गई । वाल्तेयर (Voltaire) के शब्दों में "न यह पवित्र रह गया था न रोमन साम्राज्य ।"[1] यह एक मात्र अपने प्राचीन गौरव का स्मरण दिलाना था । इसीलिए जर्मन राज्यों के शासक व लोगों ने नेपोलियन द्वारा गठित इस नवीन 'परिसंघ' का विरोध नहीं किया । परन्तु यह 'राइन परिसंघ' भी इसके निर्माता नेपोलियन के पतन के साथ ही विलुप्त हो गया । 1815 में जब वियना कांग्रेस के कर्णधार यूरोप का पुनर्गठन करने लगे तो इस 'राइन परिसंघ' को 'जर्मन परिसंघ' (German Confederation) में परिणित कर दिया। इस संघ में भी राज्यों की संख्या 38 ही रही । इस परिसंघ का प्रधान आस्ट्रिया तथा उप प्रधान प्रशा रहा ।

7.3.1. निर्बल संसद की व्यवस्था-

जर्मनी इस परिसंघ से 1866 ई. तक शासित होता रहा । सरकार का केन्द्रीय अंग एक संसद (Diet) थी जिसकी राजधानी फ्रेंक फोर्ट (Frankfurt) निश्चित की गई । परन्तु इसके सदस्य निर्वाचित नहीं होते थे । वे अपने शासकों के इशारे पर कार्य करते थे । डायट भी कभी साधारण सभा के रूप में बैठती थी तो कभी सार्वजनिक सभा के रूप में । मताधिकार का ढंग भी लोकतन्त्रीय नहीं था । सम्पूर्ण जर्मनी का न तो कोई सम्राट था, न कोई झण्डा और न कोई नागरिक । आस्ट्रिया सदैव के लिए इस संसद का अध्यक्ष था । प्रथम तो यह संघ 'पवित्र रोमन साम्राज्य' के परिसंघ से भी ढ़ीला था । दूसरे वह जातियों का परिसंघ नहीं राजाओं का संघ था। इसीलिए यह संसद पर्याप्त अधिकारों से सुसज्जित होते हुए भी व्यवहारिक रूप से निर्बल सिद्ध हुई । प्रत्येक महत्वपूर्ण कानून बनाने के सन्दर्भ में प्रत्येक राज्य को निषेधाधिकार (Veto) प्राप्त था । इसके अलावा कार्यपालिका नाम की वास्तव में कोई संस्था नहीं थी और न्यायिक व्यवस्था नितान्त आदिम प्रणाली की थी । संसद के निर्णय को क्रियान्वित करने का उत्तरदायित्व शासकों पर छोड़ दिया गया था । हालांकि 'वियना कांग्रेस' में 'संघीय अधिनियम' (Federal Act) के अन्तर्गत 'जर्मन परिसंघ' के प्रत्येक सदस्य राज्य को एक वर्ष में अपने

यहां प्रतिनिधित्व करने वाला संविधान (Representative Constitution) स्वीकार करने को कहा गया था परन्तु प्रतिक्रियावादी मैटरनिक के विरोध ने इस अधिनियम को अशक्त बना दिया। अत: स्पष्ट है कि 'वियना कांग्रेस' ने जर्मनी में जिस प्रकार की संघीय शासन-व्यवस्था स्थापित की थी वह जनतन्त्रवादी सिद्धान्तों के विरूद्ध तथा यह नितान्त शिथिल थी ।

7.3.2.0 जर्मनी में राष्ट्रवाद का उदय-

फ्रांस की क्रान्ति का प्रभाव पड़ौसी राज्य जर्मनी पर पड़ना स्वाभाविक था । परन्तु यथार्थ में 1806 में नेपोलियन ने इसके 200 राज्यों को समाप्त कर राष्ट्रीय एकता का मार्ग प्रशस्त कर दिया था । नेपोलियन द्वारा गठित 'राइन-परिसंघ' से जर्मन समाज की प्राचीन धार्मिक रूढ़ियां क्षीण होती गई। इसके साथ ही इस परिवर्तन से जर्मन लोगों में अपनी भूमि व अपनी संस्कृति के प्रति चेतना भी प्रबल होती गई । भाग्यवश इसी संक्रमण काल, में स्टीन (1757-1839) हार्डेबर्ग (1750-1822) शार्न हार्स्ट (1755-1813) तथा हम्बोल्ट जैसे राष्ट्रवादी सुधारकों का आविर्भाव और हो गया । 1806 के उपरान्त जर्मन आन्दोलन की तह में जो राष्ट्रवादी भावना थी वह इन्हीं सुधारकों के उद्बोधन के फलस्वरूप थी । इसलिए नेपोलियन के विरूद्ध जर्मन जाति ने पूर्ण शक्ति से युद्ध किया था । उन्हें आशा थी कि नेपोलियन के पतन के उपरान्त उनके यहां राष्ट्रवादी सरकार की स्थापना होगी । उन्हें यह भी आशा थी कि उनके 38 राज्यों में से प्रत्येक में संविधान की स्थापना होगी । हर राज्य में संसद होगी और निरंकुश शासन प्रणाली का अन्त हो जावेगा । परन्तु वियना कांग्रेस के निर्णय ने उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया ।

7.3.2.1 कार्ल्सवाड के आदेश (Carlsbad Decrees)-

उदारवादी वियना कांग्रेस के निर्णय की आलोचना करने लगे । राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत लोग इस व्यवस्था के विरूद्ध आन्दोलन करने लगे । जर्मनी के विश्वविद्यालय इसके केन्द्र हो गये । 1817 में विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी-संघों के प्रतिनिधियों ने वार्टबुर्ग (Wartburg) में एक देश भक्तिपूर्ण समारोह का आयोजन किया । विद्यार्थियों का यह संघ 'बर्शेनशैफ्ट' (Burnshencheft) कहलाया और धीरे-धीरे इस संघ की शाखाएं 16 विश्वविद्यालयों में स्थापित हो गई । मैटरनिख विद्यार्थियों के इस आन्दोलन से घबरा गया । उसने 1818 में एलाशपल में होने वाले सम्मेलन में एकत्रित कूटनीतिज्ञों से इस दिशा में सचेत रहने को सचेत किया । भाग्यवश 23 मार्च, 1819 को कोत्सेब्यू (Chotezebue) की जर्मन विद्यार्थी कार्ल सैंड ने हत्या कर दी । इस पर अगस्त 1819 में प्रतिक्रियावादी मैटरनिख ने कार्ल्सबाड में एक सभा बुलाई । इस सभा में उसने जर्मनी के राष्ट्रवादी आन्दोलन को समाप्त करने हेतु निम्न आज्ञाएं प्रसारित कीं-

(I) इकाई-राज्यों के शासक कोई नवीन संविधान स्वीकार नहीं करेंगे ।

(II) विश्वविद्यालयों में विद्यार्थी 'बर्शेनशैफ्ट' संघ की स्थापना नहीं कर सकेंगे ।

3 'It was neither Holy nor Roman nor empire." - Volatile

(III) एक विश्वविद्यालयों से निकाला गया छात्र अन्य किसी विश्व-विद्यालय में भर्ती नहीं हो सकेगा ।

(IV) प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक सरकारी प्रतिनिधि रहेगा जो राष्ट्रवादी अध्यापकों व छात्रों के कार्यो पर निगाह रहेगा ।

(V) प्रेस के ऊपर राज्यों का पूर्ण नियन्त्रण रहेगा ।

मैटरनिख के जर्मन राज्यों के राजाओं को भयभीत कर उनसे कार्ल्सबाड के आदेश स्वीकार करा लिये । प्रशा के राजा फ्रेडरिक विलियम तृतीय को भी उसने अपने पक्ष में कर लिया । इस प्रकार उपर्युक्त कार्ल्सबाड आदेशों के माध्यम से मैटरनिख ने पूर्ण रूप से प्रतिक्रियावादी व्यवस्था स्थापित कर दी और यह व्यवस्था 1848 तब बनी रही ।

7.3.2.2 जर्मनी में बौद्धिक क्रान्ति तथा राष्ट्रीयता और उदारवाद का विकास

वार्टबुर्ग के राष्ट्रीय समारोह से स्पष्ट हो गया था कि जर्मनी का बुद्धिजीवी वर्ग राष्ट्रीयता की भावना को प्रबल बनाने में जुटा हुआ है । फिक्टे (Fichte) ने अपनी पुस्तक (Addresses to the German People) के माध्यम से जर्मन जाति को विश्व में सर्वश्रेष्ठ बताया । हीगल ने शक्ति पर आधारित राज्य की कल्पना की तथा प्यूटानिक जाति के ऐतिहासिक महत्व पर प्रकाश डाला । हेनरिक हाइन (Heinrich Heine) तथा आर्नडट (Arndt) जैसे प्रभावशाली कवियों ने अपनी ओजस्वी कविताओं के माध्यम से जर्मन लोगों में राष्ट्रीयता की भावना प्रबल बनाई । बर्लिन, ब्रेसला (Brelau), बान (Bonn) तथा लिपिजिंग (Leipzig) नवीन जागृति के केन्द्र बन गये ।

अत: चाहे 1830 की क्रान्ति का जर्मनी पर विशेष प्रभाव न पड़ा हो- परन्तु इसके उपरान्त इस बौद्धिक क्रान्ति के फलस्वरूप जर्मनी में राष्ट्रवाद दिनों दिन प्रबल होने लगा । इसीलिये 1830 से 1848 का काल इटली व जर्मनी राज्यों में राष्ट्रीयता के विकास के लिये महत्त्वपूर्ण माना गया है । इन देशों में राष्ट्रवाद उदारवाद का सहयोगी सिद्धान्त समझा गया । नरम दलीय उदारवादी नेताओं की धारणा बन गई थी कि राष्ट्रीयता के साथ उदारवादी संस्थाओं का निर्माण होगा जिसमे संसदीय व्यवस्था तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता मुख्य तत्व होंगे । परन्तु राष्ट्रवादी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता से अधिक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय एकता को समझते थे । इसके विपरीत उदारवादी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर अधिक जोर देते थे । 1830 के उपरान्त जर्मनी में राष्ट्रवाद के प्रबल होने का एक प्रमुख कारण उसका औद्योगिक विकास भी था । जर्मनी का उत्पादन दिनों दिन बढ़ रहा था, परन्तु जर्मनी के राज्य अपने विभिन्न व्यापारिक नियमों के कारण देश के व्यापारिक विकास में बाधा प्रस्तुत कर रहे थे । व्यापारियों को जगह-जगह चुंगी देनी पड़ती थी । अत: इस असुविधा से मुक्ति पाने की दृष्टि से 1834 में जर्मनी के 18 राज्यों ने 'शोलवरिन' (Zollverein) नामक एक चुंगी संघ की स्थापना की । इस संघ ने जर्मनी

1 "A Constitution based upon the freedom of estates will be established in all the states of the Union."- Article XIII of the federal Act.

के विभिन्न राज्यों के व्यापारियों को एकता के सूत्र में बांध दिया । इसीलिये इस संघ के महत्व को बताते प्रो. केटल्बी ने लिखा है कि "शोलवरिन के निर्माण ने भविष्य में प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी के राजनीतिक एकीकरण का मार्ग तैयार कर दिया ।" जर्मन अर्थशास्त्री फाइड्रिख लिस्ट (Friedrich List) ने भी इस संघ को जर्मन राष्ट्रवाद के विकास का एक प्रमुख तत्व माना है।

7.3.3.0 फ्रेंकफोर्ट संसद का अधिवेशन-

1848 की क्रान्ति के फलस्वरूप जब मैटरनिख देश छोड़कर इंग्लैण्ड चला गया तो इटली व जर्मनी में इस पर प्रसन्नता व्यक्त की गई । परन्तु आस्ट्रिया के सेना ने जब फ्लोरेन्स, रोम व वैनिस के गणराज्यों को पुन: समाप्त कर दिया तो जर्मनी के उदारवादियों की ज्वलन्त आशाएं भी निराशा के घेरे आ गई । परन्तु फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ (Frederick William IV) की 1847 की घोषणा जर्मन उदारवादियों में आशा की किरण बनी हुई थी । प्रशा के राजा फ्रेडरिक विलियम ने घोषणा की थी कि मैं जर्मनी की समस्या को हर प्रकार से सुलझाने के लिये तैयार हूं- "आस्ट्रिया के सहयोग से, बिना आस्ट्रिया के और यदि आवश्यक हुआ तो आस्ट्रिया के विरूद्ध भी । "अत: जर्मनी के राष्ट्रीय नेताओं ने 1848 में सम्पूर्ण जर्मनी का एक संघ बनाने की दृष्टि से एक राष्ट्रीय संसद आमन्त्रित की । उसका अधिवेशन फ्रेंकफोर्ट (Frankfort) में मार्च 1848 में हुआ । इसमें विभिन्न राज्यों के 550 प्रतिनिधियों ने भाग लिया । संसद की अध्यक्षता हीनरिख वान गैगर्न (Heinrichovn Gegorn) ने की । यह राष्ट्रीय संसद जर्मन एकता की जीवित प्रतीक थी और वही ऐसी संस्था थी जो जर्मन एकता के स्वप्न को साकार करने और जर्मनी को केवल एक नाम नहीं वरन एक राष्ट्र बनाने की आशा कर सकती थी।[1] अत: जर्मन राष्ट्रवादियों मे 1815 में विएना में स्थापित खोखले परिसंघ के स्थान पर एक सच्चे जर्मन राष्ट्र की रचना की जोरदार मांग की । जर्मन उदारवादी आशा कर रहे थे कि यह संसद एक संविधान की रचना करेगी और वह संविधान लोकतांत्रिक होगा । इस प्रकार राष्ट्रवादी आशा कर रहे थे कि यह संसद एक महान स्वतन्त्र जर्मन राष्ट्र को जन्म देगी। अनेक कठिनाईयों के प्रस्तुत होने पर भी संसद एक संविधान बनाने में सफल रही । संविधान में प्रत्येक जर्मन को नागरिक स्वतन्त्रता और कानून के समक्ष समानता की गारंटी दी गई ।

केन्द्रीय व राज्य सरकारों पर संसदीय नियन्त्रण की भी व्यवस्था की गई । जर्मन राष्ट्र की सीमाएं वे ही हों जो पुराने -परिसंघ' की थी । आस्ट्रिया फ्रेंकफोर्ट की संसद के इन निर्णयों से अप्रसन्न हो गया । उसने 1849 के प्रारम्भ से ही संसद के कार्यो में बाधाएं उत्पन्न करना आरम्भ कर दिया ।

7.3.3.1 फ्रेंकफोर्ट संसद की असफलता-

फ्रेंकफोर्ट संसद के अधिवेशन का जर्मनी के अधिकांश राज्यों के नरेशों ने विरोध नहीं किया । हालांकि वे हृदय से इसकी सफलता भी नहीं चाहते थे क्योंकि इससे उनके अधिकार छीने जा रहे थे । परन्तु इस संसद के अधिकांश सदस्य बुद्धिजीवी थे । उनमें व्यावहारिकता की कमी थी । अत: उन्होंने जर्मनी के भावी शासन-तन्त्र के सन्दर्भ में पर्याप्त समय लगा दिया । उधर 1848 की क्रान्ति समाप्त हो गई थी । आस्ट्रिया ने पुन: शक्ति प्राप्त कर ली थी ।

तथापि संसद के सदस्यों ने 'जर्मन परिसंघ' को संघीय राजतन्त्रात्मक स्वरूप प्रदान किया । प्रशा के शासक फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ को नवीन जर्मन संघ का सम्राट चुना क्योंकि 1847 में उसने घोषणा की थी कि- "आज मैंने जर्मनी के प्राचीन को स्वीकार किया है और मैं अपनी प्रजा को जर्मन साम्राज्य के प्राचीन झंडे की रक्षा के लिये समर्पित करता हूं । अब से प्रशा और जर्मनी के हित एक ही होंगे ।"[1] परन्तु 1848 की क्रान्ति के दब जाने तथा आस्ट्रिया के भय के कारण 1849 में उसके विचारों में परिवर्तन आ गया । अत: फेंकफोर्ट की संसद-सदस्यों का एक प्रतिनिधिमंडल जब फेडरिक चतुर्थ को संयुक्त जर्मनी का मुकुट भेंट करने बर्लिन गया तो 3 अप्रैल 1849 को उसने राजमुकुट धारण करने से इन्कार कर दिया । उसकी अस्वीकृति के साथ ही फेंकफोर्ट संसद का संविधान और संसद का कार्य समाप्त हो गया, क्योंकि उसके बाद इस दिशा में संसद कोई प्रभावी कार्य नहीं कर सकी[2] इस संसद की असफलता के अन्य कारण निम्नलिखित थे-

7.3.3.2

1. फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ का रूढ़िवादी होना था । उसमें अहं था । वह नहीं चाहता था कि वह यह मुकुट क्रान्तिकारी सभा के हाथों से धारण करे । वह चाहता था कि यह ताज संसद के संसद के सदस्यों द्वारा अर्पित न किया जाकर जर्मनी के अन्य शासकों की तरफ से भेंट स्वरूप दिया जाता ।

2. आस्ट्रिया की घोषणा फ्रेंकफोर्ट की संसद में ज्योंही यह नवीन संविधान बन कर तैयार हुआ कि आस्ट्रिया ने घोषणा कर दी कि हम आस्ट्रियावासी अधीनता की स्थिति कभी स्वीकार नहीं करेंगे और इसके साथ ही हम जर्मन परिसंघ से बाहर जाना भी पसन्द नहीं करेंगे। आस्ट्रिया की इस घोषणा से भी प्रशा का शासक घबरा गया ।

3. फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ का दैवी-अधिकार सिद्धान्त में पूर्ण विश्वास था । अत: वह नहीं चाहता था कि राजा को गद्दी पर बिठाने व उसे हटाने का अधिकार जनता के हाथों में हो ।

4. रूस के जार निकोलस प्रथम के हस्तक्षेप की संभावना ने भी प्रशा के शासक को विचलित कर दिया था ।

7.3.4.0 एर्फर्ट (Erfurt) का अधिवेशन-

इस प्रकार स्पष्ट है कि जर्मनी की दो शक्तियों (प्रशा व आस्ट्रिया) ने फ्रेंकफोर्ट की संसद के कार्य को चौपट कर दिया । संसद की इस विफलता से जर्मनी में घोर निराशा छा गई। अत: उग्र विचारों के जर्मनों ने अब तलवार के सहारे अपने यहां गणतन्त्र स्थापित करने का विचार किया । दक्षिण पूर्वी जर्मनी में स्वतन्त्रता प्रेमियों ने विद्रोह आरम्भ कर दिये । उधर फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ के विचारों में पुन: परितर्वन आने लगा । जिस प्रशा के शासक ने 3

4 ग्रांट एण्ड, 'यूरोप इन दि नाइनटीन्थ' पृ. 187

1 केटल्बी 'ए हिस्ट्री आफ माडर्न टाइम्स' पृ. 186

2 न्यू केम्ब्रिज माडर्न हिस्ट्री, जिल्द पृ. 500

अप्रैल 1849 को फ्रैंकफोर्ट की संसद द्वारा अर्पित ताज को 'अपमान का ताज' (Crown of Shame) कह कर अपने को 'क्रान्ति का दास' (Serf of the Revolution) नहीं बनाने घोषणा की थी- वही प्रशा का शासक अब अपने मन्त्री जोसफ वान रेडोविल्स की मन्त्रणा से उत्तरी जर्मन राज्यों का एक संघ बनाने का विचार करने लगा । अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने मार्च, 1850 में एर्फर्ट में दूसरी संसद आमन्त्रित की । इसमें यह तय किया गया कि आस्ट्रिया को जर्मनी के नवीन संघ से निकाल दिया जावे । संघीय शासन के लिये द्विसदनात्मक संसद बनाई जाये । संघ का अध्यक्ष प्रशा होगा । परन्तु आस्ट्रिया के हस्तक्षेप से यह संसद भी असफल हो गई । 1848 में जो 'जर्मन परिसंघ' स्थगित कर दिया गया था वह पुन: स्थापित कर दिया गया और उसमें आस्ट्रिया की स्थिति पहले से कहीं अधिक दृढ़ हो गई।

7.3.5.0 फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ द्वारा दूसरा संविधान स्वीकृत करना

मई 1851 से प्राचीन परिसंघ ने अपना कार्य चालू कर दिया । प्रशा व आस्ट्रिया ने पुन: अपनी प्रतिक्रियावादी नीति आरम्भ कर दी । डॉ. हैजन का कहना है कि इसके फलस्वरूप जर्मनी में प्रतिक्रिया का युग पुन: प्रारम्भ हो गया जो कि व्यापकता की दृष्टि से विएना सम्मेलन के बाद के युग से भी अधिक दूरगामी सिद्ध हुआ । निःसन्देह इसका नेतृत्व प्रशा ने भी किया । फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ एकतन्त्रवादी व दैवी अधिकार समर्थक होते हुये वह प्रजा हितैषी भी था । 1848 की असफलता का उसके मस्तिष्क पर बड़ा आघात लगा था । इस कारण 1849 में उसने प्रशा के लिये दूसरा संविधान और स्वीकार कर दिया । इस नवीन संविधान के अन्तर्गत उसने संसद की भी रचना की । आस्ट्रिया ने पुन: प्रशा पर नवीन संविधान को रद्द करने का दबाव डाला- परन्तु शासक ने इन्कार कर दिया । इस दिशा में फेडरिक विलियम चतुर्थ को पीडमोंट को राजा से भी प्रेरणा मिली । परन्तु प्रशा के शासक ने इंग्लैण्ड की भांति अपने यहां संसदीय प्रणाली लागू नहीं की । वह नहीं चाहता था कि राज्य की प्रमुख सत्ता जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली संसद के हाथों में चली जाये । इस कारण उसकी मंत्रिपरिषद पर भी संसद का कोई नियन्त्रण नहीं रहा । मंत्रियों ने अपनी चतुराई से उस संविधान को व्यवहार में और निकल बना दिया । अत: इस संविधान के रहते हुये भी प्रशा में पूर्ववत निरंकुश सरकार ही बनी रही । प्रेस को कोई स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी । सरकार के समर्थक लोग ही सार्वजनिक सभाएं कर सकते थे ।

7.3.6.0 राष्ट्रीय उदारवाद का जन्म (1850-60)-

हालांकि 1850 के संविधान के अन्तर्गत राजा के अधिकार असीमित ही रहे, फिर भी प्रशा में एक व्यवस्थित एवं कार्यकुशल शासन पद्धति अवश्य स्थापित हो चुकी थी । वहां का सैनिक संगठन उच्च कोटि का था और आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ हो चुकी थी । इस प्रकार प्रशा जर्मनी के संगठन-कार्य को सम्पन्न करने में अब सक्षम बन चुका था । लोकतन्त्रीय व्यवस्था स्थापित न होने के कारण उदारवादियों ने फिर भी अपना संघर्ष जारी रखा । परन्तु वे यह नहीं समझ सके थे कि शक्ति और संप्रभुता के मध्य प्रत्यक्ष सम्पर्क करने से ही सफलता मिल सकती है । इसका तात्पर्य यह था कि संयुक्त शक्तिशाली जर्मन राष्ट्र का अस्तित्व उसकी

राजनीतिक शक्ति में था, केवल बौद्धिक उत्कर्ष में नहीं । "शक्ति" जर्मनी के "एकीकरण समस्या" का समाधान भी थी । हीगल ने भी सार्वलौकिक विचारधारा का सर्वोत्तम रूप राष्ट्र को ही बताया है । इसीलिये उसने राष्ट्र व राष्ट्र की सत्ता के सर्वोच्च होने को श्रेयस्कर बताया है । उदारवादी राष्ट्रवादियों से सहयोग अवश्य कर रहे थे- पर राष्ट्रवादी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता से अधिक महत्व राष्ट्रीय एकता को दे रहे थे । जब राष्ट्रवादियों ने शक्ति को ही राष्ट्र की एकता का मूल साधन समझना आरम्भ कर दिया तो वे राष्ट्रीय उदारवादी कहलाने लगे और उनकी इस विचारधारा ने बिस्मार्क की शक्ति के आधार पर लाई गई राष्ट्रीय एकता के लिये मार्ग स्पष्ट कर दिया । 1859 में 'नात्सनियाल फेरैन' (Deutscher Nationalverein) संस्था की स्थापना हुई । इसकी स्थापना से भी राष्ट्रीय उदारवादियों को महान प्रेरणा मिली । इस संस्था ने 1859 से 1868 तब जर्मनी के एकीकरण में उल्लेखनीय भूमिका निभाई । इस संस्था को जर्मनी की प्रथम राजनीतिक संस्था माना है । इटली के एकीकरण ने जर्मन राष्ट्रवादियों को और प्रोत्साहित और अनुप्राणित कर दिया और वे आस्ट्रिया को 'जर्मनी का उत्पीड़क' कहने लगे । प्रशा के राष्ट्रीय उदारवाद ने इस धारणा को प्रबल बना दिया कि प्रशा ने नेतृत्व में जर्मनी में राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के लिये आस्ट्रिया को मार्ग से अवश्य हटाना होगा ।

7.3.7.0

विलियम प्रथम का गद्दी पर बैठना तथा जर्मनी के निर्माता बिस्मार्क का सत्ता में आना- जर्मनी के स्वतन्त्रता संग्राम को फ्रेंकफोर्ट (1848) के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर फेडरिक विलियम चतुर्थ अन्त में 1857 में पागल हो ही गया । इस पर उसके भ्राता ने 1861 तक एक संरक्षक (Regent) के रूप में कार्य किया और जब फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ 1861 ई० में इस लोक से अलविदा ले गया तो विलियम ही प्रजा का सम्राट बना । हालांकि विलियम प्रथम भी राजा के दैवी अधिकर में विश्वास करता था तथा संवैधानिक सुधारों में कोई रूचि नहीं रखा था तथापि उसकी यह दृढ़ धारणा हो गई थी कि जर्मनी का भाग्य निर्माता प्रशा ही होगा और वह होगा अपनी सैनिक शक्ति के सहारे । वह स्वयं सैनिक था और सेना के महत्व को भली भांति जानता था । 1848 में ही उसने एर्फर्ट (Erfurt) संसद की असफलता पर कह दिया था कि जो भी जर्मनी पर शासन करना चाहता है उसे जर्मनी की विजय करनी होगी और यह कार्य शब्दों से नहीं हो सकता।[1]

अत: उसने सिंहासन पर आसीन होते ही सेना में वृद्धि करना आरम्भ कर दिया । परन्तु प्रशा की तत्कालीन संसद के निम्न सदन (Chamber of Deputies) ने उसकी योजना का इंग्लैण्ड की संसद के निम्न सदन (House of Lords) की भांति भूमिपति (Junkers) सदस्य थे । अत: यह सदन विलियम की नीति का समर्थन करता रहा और 23 सितम्बर 1862 को उसने बिस्मार्क (Bismarck) को अपना प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया ।

7.3.7.1 बिस्मार्क के राजनीतिक विचार और जन्तन्त्र में बाधा-

बिस्मार्क प्रशा के भूस्वामी (Junkers) का पुत्र था । 1848 में उसे फ्रेंकफोर्ट की संसद में भाग लेने का अवसर मिला । उस संसद में उसने जनतन्त्रवाद, संविधान और उदार सुधारों

की मांगों का घोर विरोध करके अपने को निर्मम (Ruthless) दृढ़ प्रतिज्ञ कूटनीतिज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया । हालांकि बिस्मार्क ने फ्रांस के राजा लुई चौदहवें के विचारों का. कभी समर्थन नहीं किया पर वह अपने सम्राट को इंग्लैण्ड के राजा की भांति निर्बल भी नहीं देखना चाहता था ।[2] उसने प्रशा के शासकों की निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता का स्पष्ट समर्थन किया क्योंकि उनकी नीतियों से प्रशा के उत्कर्ष में प्रेरणा मिली थी । कुछ इतिहासकारों की मान्यता है कि वह व्यक्तिगत्त रूप से उदारवाद का विरोधी नहीं था परन्तु जब उसने यह निष्कर्ष निकाल लिया कि उदारवाद से जर्मनी का एकीकरण संभव: नहीं है तब उसने 'रक्त और शस्त्र' (Blood and Iron) की नीति का अवलंबन किया । प्रशा का सम्राट फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ बिस्मार्क को 'विप्लववादी' अवश्य कहता था परन्तु उसने बिस्मार्क को 1851 में प्रशा के प्रतिनिधि के रूप में फ्रेंकफोर्ट की नवीन संघीय संसद में भेजा । वहां वह 1859 तक रहा । इस आठ वर्षो के काल में उसने आस्ट्रिया के सन्दर्भ में बहुत कुछ सीख लिया । आठ वर्षो के अर्जित ज्ञान के आधार पर ही वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि प्रशा 'जर्मन संघ' में आस्ट्रिया के रहते हुये गौरव प्राप्त नहीं कर सकता । आस्ट्रिया प्रशा का सहज शत्रु है । जर्मन संघ इतना संकीर्ण है कि उसमें आस्ट्रिया और प्रशा दोनों नहीं रह सकते।[3] अत: प्रशा को अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिये अन्ततोगत्वा आस्ट्रिया से युद्ध करना पड़ेगा । आस्ट्रिया को जर्मन संघ से बाहर निकालने के लिये 'शक्ति' की परम आवश्यकता थी । इसलिए 1862 से 1866 तक सैनिक बजट उच्च सदन के पास करवाता रहा और वह निम्न सदन की अवहेलना करता रहा । परन्तु 1862 में उसके प्रधानमंत्री बनते ही 'जर्मन प्रोग्रेसिव पार्टी' (German Progressive Party) की स्थापना और हो गई थी । यह राज्य के माध्यम से जर्मनी के एकीकरण के पक्ष में थी।[1] परन्तु बिस्मार्क उदारवादियों को किसी भी प्रकार की रियासतें देना राज्य की कायरता समझता था । 1862 में ही उसने उदारवादियों के सिद्धान्तों का खण्डन करते हुये कहा- "जर्मनी का ध्यान प्रशा के उदारवाद की ओर नहीं है वरन उसकी शक्ति पर लगा हुआ है ।" अपनी नीति को इस सिद्धान्त पर आधारित कर

7.3.8.0 जर्मनी का एकीकरण तथा नवीन संविधान-

1870 में फ्रांस के परास्त होते ही जर्मनी का एकीकरण सम्पन्न हो गया । 18 जनवरी 1871 को फ्रांस की राजधानी वार्साई में 'जर्मन साम्राज्य' (The German Empire)

1 "Now whoever wishes to rule Germany must conquer it and can not be done with phrases." William

2 "The Prussian Crown must nt allow itself to be thrust into powerless position of the English Crown, which seems more likely a smartly decorative cupola on the sate edifice, that its central pillar of support, as I consider ours."-Bismarck

3 "Germany is too narrow for Austria and Prussia."
-Bismarck

की घोषणा की गई । युद्ध की समाप्ति के तत्काल नवीन जर्मन साम्राज्य के लिये नवीन संविधान तैयार किया गया और वह 16 अप्रैल 1871 से लागू कर दिया गया । इस संविधान का मूल निर्माता बिस्मार्क ही था । आस्ट्रिया को परास्त कर विस्पार्क 1867 में भी एक संविधान बना चुका था । अत: 1871 का संविधान 1867 के संविधान से बहुत कुछ मिलता जुलता था । इसमें संघ (Confederation) के स्थान पर साम्राज्य (The Empire) जोड़ दिया गया और राष्ट्रपति (President) के स्थान पर सम्राट (Emperor) शब्द जोड़ दिया गया ।

7.3.8.1 सम्राट्-

प्रशा का शासक ही जर्मन सम्राट घोषित किया गया । सम्राट 'साम्राज्य परिषद' (Bundersat) की अनुमति से युद्ध की घोषणा और सन्धि कर सकता था । वही देश की जल एवं स्थल सेनाओं का अध्यक्ष होता था । देश की विदेश नीति का संचालक भी वही होता था । प्रधानमंत्री (Chancellor) व विदेशों में राजदूतों की नियुक्ति वही करता था तथा वह उन्हें कभी भी पदमुक्त कर सकता था । इंग्लैण्ड में भी कार्यपालिका का अध्यक्ष वहां का राजा ही होता है । पर इंग्लैण्ड का राजा 'संवैधानिक अध्यक्ष' के रूप में होता है । वह अपने प्रधानमंत्री की पदमुक्ति अपनी इच्छानुसार नहीं कर सकता है । राजदूत व अन्य उच्चाधिकारियों की नियुक्ति भी वह अपने प्रधानमन्त्री की सलाह से ही करता है । इंग्लैण्ड में प्रधानमंत्री अपनी संसद के प्रति उत्तरदायी होता है जबकि जर्मनी का चान्सलर अपने सम्राट के प्रति उत्तरदायी होता था । चान्सलर के अलावा अन्य मन्त्री अपने विभाग के अध्यक्ष के रूप में कार्य करते थे और वे भी इंग्लैण्ड के मंत्रियों की भांति संसद (Landtag) के प्रति उत्तरदायी नहीं होते थे । सम्राट को संसद (ipso-fact) बन गया और उसे 'केसर' की उपाधि से विभूषित किया गया । संसद का अधिवेशन बुलाना भी सम्राट के ही अधिकार में था और संसद के उच्च सदन (Bukndesrat) पर जर्मन सम्राट का उसी प्रकार प्रभुत्व था जिस प्रकार इंग्लैण्ड के राजा का (House of Lords) पर होता है ।

7.3.8.2.0 संसद (Parliament)-

अब तक प्रशा द्विसदनीय संसद के पक्ष में नहीं था परन्तु बिस्मार्क ने इस नवीन व 1867 के संविधान के अन्तर्गत जर्मनी के संसद (Landtag) की दो सदनीय बना दिया- साम्राज्य परिषद (Bundesrat) व लोकसभा (Reichstag)

7.3.8.2.1 साम्राज्य परिषद या बुन्देस्राट

यह संसद का ऊपरी सदन था और इंग्लैण्ड के (House of Lords) की भांति सबसे शक्तिशाली सदन रहा । यह सदन साम्राज्य के 25 राज्यों के नरेशों का प्रतिनिधित्व करता था।

1 न्यू केम्ब्रिज माडर्न हिस्ट्री, जिल्द 10, पृ. 513 वह 1870 तक कार्य करता रहता रह। अपनी इस 'रक्त और शस्त्र' की नीति से ही जर्मन संघ से अपने प्रमुख प्रतिद्न्द्वी आस्ट्रिया को बाहर कर महान; ∞तवे क्म्नजेपबीद्व का निर्माण करने में सफल हुआ

इसकी सदस्य संख्या 58 थी । अत: इंग्लैण्ड के उच्च सदन से संख्या में अति न्यून होते हुये भी अधिकारों में यह सदन उससे अधिक बलशाली था । इसे व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका सम्बन्धी समस्त अधिकार प्राप्त थे और यह एक प्रकार की राजनीतिक एवं कूटनीतिज्ञ सभा के तुल्य रहा । संख्या की दृष्टि से यह फ्रांस की (Senate) से भी छोटी थी । परन्तु व्यवस्थापिका के रूप में इसका महत्व इंग्लैण्ड की लार्ड्स सभा व फ्रांस की सिनेट दोनों से अधिक था । अधिकांश विधेयक इसी में प्रस्तुत किये जाते थे और इसकी बिना अनुमति के कोई विधेयक अधिनियम नहीं बन सकता था । इसे लोकसभा (Reichstag) के प्रस्तावों को अस्वीकृत करने का भी अधिकार था । सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति में भी यह सदन सम्राट को मन्त्रणा देता था । कभी-कभी यह परिषद प्रशासकीय न्यायालय के रूप में भी कार्य करती थी । उसको राज्यों के न्यायालयों के निर्णित अभियोगों की अपील सुनने का भी अधिकार प्राप्त था । संविधान में संशोधन करने का अधिकार भी इसी सदन को प्राप्त था । अत: स्पष्ट है कि जर्मनी का यह उच्च सदन इंग्लैण्ड के (House of Lords) दोनों से अधिक शक्तिशाली सदन था ।

7.3.8.2.2 लोकसभा (Reichsatg)-

जर्मनी का यह निचला सदन था और इंग्लैण्ड के (House of Commons) व फ्रांस के (Chamber of Deputies) की भांति जनता का प्रतिनिधि सदन था । इसकी सदस्य संख्या 397 थी और वे भी इंग्लैण्ड की भांति 5 वर्ष के लिये चुने जाते थे । परन्तु यहां मतदाता की आयु 21 वर्ष न रख कर 25 वर्ष रखी गई थी । जनता द्वारा निर्वाचित होने पर भी इस सभा को इंग्लैण्ड या फ्रांस की लोकसभाओं की भांति अधिकार प्राप्त नहीं थे । मन्त्री इसके प्रति उत्तरदायी नहीं होते थे और न इंग्लैण्ड व फ्रांस की भांति इसके निर्वाचित सदस्य मन्त्री ही बनाये जाते थे । इस कारण इस सदन का मन्त्रियों पर कोई प्रभाव नहीं होता था । इसके द्वारा पारित विधेयक बुदेसश्रात की अनुमति मिलने पर ही अधिनियम बन सकते थे । बजट प्रथम बुन्देस्राट में ही प्रस्तुत किया जाता था और उसमें पारित हो जाने पर लोकसभा (Reichstag) में आता था । सैनिक बजट के लिये 'प्रतिवर्ष सदन की स्वीकृति नहीं ली जाती थी । विदेश नीति पर भी इस सदन का कोई नियन्त्रण नहीं होता था । नवीन करों के लिये इसकी स्वीकृति ली जाती थी । इस प्रकार स्पष्ट है कि देश के महत्वपूर्ण मामलों में इस सदन का नियन्त्रण नगण्य था और यथार्थ यह एक परामर्शदात्री सभा मात्र ही थी ।

प्रकार देखा जाये तो जर्मनी का संविधान इंग्लैण्ड के संविधान की भांति न तो एकात्मक ही था और न संयुक्त राज्य अमेरिका (U.S.A.) की भांति सच्चे अर्थ में संघात्मक ही था । वास्तव में देखा जाये तो इस संविधान को बिस्मार्क ने विशेष रूप से प्रशा की परिस्थितियों को देखते हुये बनाया था और यह उन परिस्थितियों में उपयुक्त भी था । इंग्लैण्ड जैसी संसदीय प्रणाली स्थापित करना वहां उस समय संभव नहीं था ।[1]

7.3.9.0 जर्मनी में समाजवादी आन्दोलन तथा श्रमिक सुधार

समाजवादी आन्दोलन का उदय- जर्मनी में लोकतन्त्र के लिये जो आन्दोलन हुये वे इंग्लैण्ड व फ्रांस से सर्वथा भिन्न थे । इंग्लैण्ड में संसदीय प्रणाली के लिये दीर्घकाल तक जो संघर्ष हुये उनमें मध्यम-वर्ग, किसान-वर्ग व श्रमिक वर्ग प्रमुख रूप से भाग लेने वाले थे । उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशकों में स्त्रियां भी संघर्ष में उतर आई थीं । अत: चाहे इंग्लैण्ड में संवैधानिक सुधार व श्रमिक सुधार मन्थर गति से हुये पर वे आन्दोलन सर्वथा निष्फल कभी नहीं हुये । यही हाल फ्रांस में रहा । वहां इस क्षेत्र में निरन्तर प्रयोग होते रहे- परन्तु मध्यम वर्ग व किसान-वर्ग का श्रम व्यर्थ नहीं गया । जर्मनी में भी उदारवादी व राष्ट्रवादी आन्दोलन तो 1815 के उपरान्त ही आरम्भ हो गये थे । परन्तु उनमें भाग लेने वाले अधिकांशत: बुद्धिजीवी थे । वे लोग वाद-विवाद में ही समय गवां दिया करते थे और राजनीति की व्यावहारिकता पर नहीं जाते थे । परन्तु 1878 में जर्मनी में एक प्रबल समाजवादी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ जिसने बिस्मार्क की मानसिक शान्ति को विचलित कर दिया । यह आन्दोलन इतना सफल रहा कि बिस्मार्क को समाजवादियों के विरूद्ध होते हुये भी उनके हित में बहुत कुछ करना पड़ा । इस आन्दोलन की सफलता का रहस्य इसमें श्रमिक वर्ग का योगदान था । समाजवाद की स्थापना वैसे 1848 में फर्डीनेन्ड लसाले (Fernidand Lasalle) ने कर दी थी, परन्तु 1865 तक उसकी विचारधारा प्रबल नहीं बन सकी । उसने जर्मनी में 'यूनीवर्सल जर्मन वर्कर्स' यूनियन की स्थापना की । कार्ल मार्क्स के विचार भी जर्मनी में प्रभावित हो रहे थे । आरम्भ में लसाले ने भी उनका समर्थन किया था, परन्तु बाद में वह मार्क्स के विचारों के विरूद्ध हो. गया था । इस कारण दोनों विचारधाराओं के संगठनों में संघर्ष चलता रहा और बिस्मार्क उनकी फूट से लाभ उठाता रहा । परन्तु 1875 में गोथा (Gotha) पर दोनों दलों में समझौता हो गया और 1878 में यह समाजवादी आन्दोलन 'सोशल डेमोक्रेटिक दल' (Social Democratic Party) के नेतृत्व में चलने लगा । इसके बाद यह दिन पर दिन प्रबल ही होता चला गया । इसकी प्रबलता के कारण निम्नलिखित थे-

7.3.9.1

(I) 1871 के उपरान्त जर्मनी का औद्योगिक विकास ।

(II) समाजवादी कार्यकर्ताओं का सहयोग । लसाले को बाद में आगस्ट बेबल (August Babel 1840-1913) का अच्छा सहयोग मिला । वह 1913 तक समाजवादी दल का नेता बना रहा । सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी की स्थापना इसी ने की थी । इसके प्रभाव के फलस्वरूप ही जर्मन लोकसभा (Reichstag), में बिस्मार्क के विरोध करने पर भी समाजवादियों की संख्या बढ़ती ही चली गई ।

7.3.9.2 बिस्मार्क व समाजवादियों में संघर्ष के कारण-

(I) बिस्मार्क का समाजवाद के विरूद्ध होना ।

1 न्यू केम्ब्रिज मार्डन हिस्ट्री, जिल्द 11, पृ 277

(II) जर्मनी का बढ़ता हुआ औद्योगिक विकास । फांस की पराजय (1870) के उपरान्त जर्मनी में उद्योगपति व मजदूरों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होने लगी । पूंजीपति श्रमिकों का शोषण करते थे और बिस्मार्क उनका पक्ष लेता था ।

(III) समाजवादियों द्वारा बिस्मार्क के सैनिक-विधेयकों का विरोध किया जाना ।

(IV) समाजवादियों द्वारा विलियम प्रथम की हत्या का प्रयत्न ।

7.3.9.3 समाजवादी दल का दमन- बिस्मार्क ने समाजवादियों को समाज व देश का शत्रु बताया और उनके दमन के लिये निम्नलिखित कानून बनाये-

(I) समाजवादियों के दमन के लिये पुलिस को विशेष अधिकार दिये गये ।

(II) समाजवादियों की सभाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया ।

(III) समाजवादियों को अपना संगठन बनाने से रोका गया ।

(IV) समाजवादियों के अभियोग पुलिस द्वारा तय होने लगे । -

(V) मकान मालिकों को आदेश दिये गये कि वे समाजवादियों का अपना मकान किराये पर न दें ।

7.3.9.4 समीक्षा-

उपर्युक्त कानूनों के अन्तर्गत 900 व्यक्तियों को जर्मनी से निकाल दिया गया और 3500 को जेल के सीखचों में बन्द कर दिया । 1890 तक समाजवादियों के 140 प्रकाशनों को जब्त कर लिया गया । बिस्मार्क की इस कार्यवाही पर एक लेखक ने लिखा था- "अब हम सरकार को वे पुराने ढंग अपनाते हुये देख रहे हैं जिन्हें इटरनिख (Metternich) ने 50 वर्ष पूर्व अपनाया था ।'[1] हालांकि बिस्मार्क ने समाजवादियों के दमन के लिये 12 वर्ष प्रयास किया- परन्तु वह अपने प्रयास में असफल रहा । इसके विपरीत 'सोशल डेमोकेटिक दल' और शक्तिशाली हो गया और ये 12 वर्ष समाजवाद के इतिहास में 'वीर युग' (Heroic Age) के नाम से विख्यात हो गये ।

7.3.10.0 राज्य समाजवाद (State Socialism) का आविर्भाव-

बिस्मार्क ने यह तो स्वीकार कर लिया कि वह समाजवादी आन्दोलन का दमन नहीं कर सकता पर साथ में ही उसने यह भी सोचा कि इन' श्रमिकों के लिये राज्य की ओर से कुछ न कुछ सुविधाएं अवश्य दी जानी चाहिये ताकि वे समाजवाद के प्रभाव से स्वयं मुक्त हो सकें । अत: बिस्मार्क भी सोचने लगा कि मजदूरों की बेकारी को दूर करने का उत्तरदायित्व सरकार के ऊपर है । उनके कार्य करने वाले स्त्री-पुरूषों को स्वास्थ्यप्रद आवास की व्यवस्था का प्रयास भी सरकार द्वारा किया जाना चाहिये । उनकी दयनीय आर्थिक अवस्था -में सुधार भी लाना चाहिये। अपने इन विचारों को साकार रूप प्रदान करने हेतु उसने निम्नलिखित कानून बनाये:-

1 Headlam : ‘Bismarck’ P. 409

7.3.10.1

(I) 1883 में बिस्मार्क ने बीमारी के विरुद्ध जीवन-बीमा अधिनियम पारित करवाया ।

(II) 1883 में ही दुर्घटना जीवन बीमा अधिनियम बनवाया ।

(III) 1889 में वृद्धावस्था जीवन बीमा अधिनियम बनवाया ।

उपर्युक्त तीनों अधिनियम तो पारित हो गये- पर प्रश्न उत्पन्न हुआ कि इनका आर्थिक उत्तरदायित्व किस पर किस अनुपात में डाला जावे । उसके लिये उसने निम्नलिखित व्यवस्थायें कीं-

(I) प्रथम में आर्थिक उत्तरदायित्व श्रमिक व पूंजीपति पर रखा गया ।

(II) दूसरे में अर्थव्यवस्था का भार पूरी तरह से कारखानों के मालिकों पर रक्त ।

(III) तीसरे में आर्थिक भार श्रमिक, मालिक व सरकार तीनों पर डाला गया ।

7.3.10.2 समीक्षा-

उपर्युक्त अधिनियमों के पारित हो जाने से श्रमिकों का पर्याप्त हित हुआ । इन सुधारों से प्रभावित होकर श्रमिक बिस्मार्क को 'सुधारवादी प्रधानमंत्री' कहने लगे । प्रोफेसर डॉसन (Dawson) ने अपनी पुस्तक 'Bismarck and State Socialism' ' मैं लिखा है "बिस्मार्क इस शताब्दी का प्रथम समाज सुधारक था । "जर्मनी ने विश्व में सर्वप्रथम सामाजिक बीमा का कार्य प्रारम्भ किया जिसका अनुकरण अन्य देशों ने किया ।" निःसन्देह अपने सुधारों से उसने श्रमिकों के हित का श्रीगणेश किया ओर इससे वह समाजवाद का प्रभाव भी कम करने में सफल हुआ । परन्तु उसका यह 'राज्य-समाजवाद' वास्तविक समाजवाद नहीं था । वह जनतन्त्र समर्थक न होकर पूंजीवाद समर्थक था ।

7.3.11.0 1890 ई. के उपरान्त जर्मनी का सबैधानिक विकास-

बिस्मार्क द्वारा श्रमिकों के हित में अनेक सुधार करने के उपरान्त भी समाजवादियों का आन्दोलन चलता रहा, परन्तु वह अपना विशेष प्रभाव नहीं दिखा सका । 15 जून 1888 को 57 वर्षीय फेडरिक तृतीय की मृत्यु हो जाने पर 29 वर्षीय विलियम द्वितीय जर्मनी का सम्राट बना । निःसन्देह वह दूरदर्शी, एवं आत्म-विश्वासी सम्राट था । परन्तु इन सबके अलावा वह महान् महत्वाकांक्षी था । वह अपने पूर्वज वयोवृद्ध सम्राटों की भांति चान्सलर बिस्मार्क को अधिक शक्तिशाली नहीं देखना चाहता था । अत: 1890 में उसे पदच्युत हो जाने के उपरान्त जर्मनी में संविधान तो 1871 का ही चलता रहा, परन्तु जर्मनी का सम्राट विश्व के महान शक्तिशाली सम्राटों में एक बन गया । संविधान में बहुत कुछ अधिकार चान्सलर को प्राप्त थे । परन्तु विलियम द्वितीय ने उन्हें निरन्तर बदलकर उन्हें शक्तिहीन बना दिया । देश के औद्योगिक विकास के साथ-साथ निःसन्देह समाजवाद का अविरल विकास होता रहा । लोक सभा (Reichstag) में इस दल के सदस्यों की संख्या भी बढ़ती रही । परन्तु बीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही विलियम द्वितीय ने देश का वातावरण ऐसा युद्ध पूर्ण बना दिया कि समाजवादियों के संसदीय सुधार स्वीकृत नहीं हुए । 1914 तक जर्मनी और भी कम उदारवादी बन गया ।

सेना का संसद पर नियन्त्रण बढ़ता गया और जर्मनी पश्चिमी यूरोप में सर्वाधिक कुलीन तन्त्रात्मक ही बना रहा । प्रजातन्त्र की स्थापना वहां 1919 में हुई और 15 वर्ष के उपरान्त ही वह भी समाप्त हो गया । स्वतन्त्रता का मूल अधिकार जो इंग्लैण्ड व फ्रांस में अत्यधिक महत्व का माना जाता है वह जर्मनवासियो को कभी प्राप्त नहीं हुआ ।

7.4 बोध-प्रश्न

ए-नीचे कुछ कथन दिए गये हैं । बताइये वे सही हैं या गलत ।

1. जर्मन राज्यों को परास्त कर नेपोलियन ने उन्हें 'जर्मन परिसंघ' में गठित कर दिया था।
2. फ्रेंकफोर्ट संसद के सदस्य निर्वाचित होते थे ।
3. 'जर्मन परिसंघ' का गठन 1815 में किया गया था ।
4. वार्टबुर्ग में विद्यार्थियों ने राष्ट्रीय समारोह मनाकर 'बर्शेनशैफ्ट संघ' का गठन किया ।
5. हेनरिक हाइन ने अपने विचार "Adress to the German People'. में व्यक्त किये ।
6. 'शोलवरिकन' एक संघ था जिसका गठन जर्मनी के मजदूरों ने किया था ।
7. 1948 की फ्रेंकफोर्ट संसद के अधिवेशन के समय प्रशा का शासक विलियम प्रथम था ।
8. 'नात्सनियाल फेरैन' की स्थापना 1859 में हुई थी ।
9. 871 के जर्मन संविधान के अन्तर्गत गठित जर्मन के उच्च सदन (Bundersat) की तुलना इंग्लैण्ड की लोक सभा (House of Commons) की जा सकती थी।
10. जर्मनी का 1871 का संविधान वास्तविक रूप में संघीय था ।

बी- निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 5० शब्दों में दीजिए:-

1. कार्ल्सबाड आदेश क्या थे?
2. 1848 की फेंकफोर्ट संसद की असफलता के 5 कारण बताइये ।
3. एर्फर्ट का अधिवेशन किसने आमन्त्रित किया था और क्यों?
4. बिस्मार्क के राननीतिक विचार बताइये ।
5. जर्मनी के सम्राट की इंग्लैण्ड के राजा से तुलना करते हुए उसके 5 अधिकार बताइये ।
6. जर्मनी की लोक-सभा (Reichstag) इंग्लैण्ड की लोक सभा (House of Commons) से कम प्रभावशाली क्यों थी?
7. सोशल डेमोक्रेटिक दल की स्थापना कब हुई? यह प्रभावशाली किन कारणों से बनी?

7.5 संदर्भ ग्रथ:

1. डेविड थोम्पसन, यूरोप सिंस नेपोलियन

2. रोनल्ड एन. स्ट्रोयवर्ग एन इंटैलैल्वुअल हिस्ट्री आफ मार्डन यूरोप
3. स्पैन्सर, " हिस्ट्री आफ इंग्लैंड " V. IV
4. इ. एच. कार्टर, हिस्ट्री आफ इंग्लैण्ड
5. आन्द्रे योरिसस, हिस्ट्री आफ फ्रांस
6. रेमान्ड एल्सवर्थ रेस्टोरिंग डेयोक्रेसी इन जर्मनी (1960)
7. एल. क्ले, जर्मनी एण्ड द फाइट फार फ्रीडम

इकाई 8
रूस में राजनैतिक और आर्थिक आन्दोलन:-
अंर्द्धदास प्रथा के अंत तक

इकाई की रूपरेखा-

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 1815 में रुस

8.2.1 रूस का पिछड़ापन

8.2.2 रुस के पिछड़ेपन के कारण

8.3 रूस की भूतकाल की विरासत

8.3.1 निरंकुशता

8.3.2 अभिजात वर्ग

8.3.3 अर्द्धदास प्रथा (जिसे कृषिदास प्रथा 'भी कहा जाता है)

8.3.3.1 दास प्रथा, अर्द्धदास प्रथा और कृषक समाज

8.3.3.2 1815 में अर्द्धदास प्रथा की स्थिति

8.3.3.3 नई परम्परा- राजनैतिक विचार व आर्थिक विकास

8.3.3.4 रूस का आर्थिक जीवन

8.4 एलैकजेन्डर प्रथम- (1801 से 1825) का शासनकाल

8.4.1 कृषिदासों की दशा सुधारने का प्रयास

8.4.2 फिनलैंड का स्वायत्त शासन

8.4.3 पोलेंड का स्वायत्त शासन

8.4.4 निष्कर्ष

8.5 निकोलस प्रथम (1825 से 1855) का शासन काल

8.5.1 दिसम्बर विद्रोह के कारण

8.5.2 दिसम्बर विद्रोह की विफलता

8.5.3 दिसम्बर क्रान्ति के परिणाम

8.5.4 निकोलस का चरित्र

8.5.5 निकोलस पद्धति

8.5.6 कीमिया का युद्ध और उसके परिणाम

8.6 एलैकजेन्डर द्वितीय (1855 से 1881)

8.6.1 कृषिदासों की स्वतंत्रता

8.6.2 अर्द्धदास प्रथा पर स्वामियों का अधिकार

8.6.3 अर्द्धदास प्रथा का विरोध

8.6.3.1 अर्द्धदास प्रथा समाप्त करने का कानून

8.6.3.2 मुक्ति कानून की मुख्य धाराएं

8.6.3.3 भूमि का विभाजन

8.6.3.4 मीर पद्धति

8.7 निष्कर्ष

8.8 सम्बन्धित संदर्भ पुस्तकें

8.9 बोध प्रश्न

8.0 उदेश्य :

इस इकाई में हमारा इरादा आपको 1815 से पूर्व रूस का संक्षिप्त इतिहास बताना है । इसके पश्चात् हम विस्तार से रूस के पिछड़ेपन, उसकी निरंकुशता और अर्द्धदास प्रथा की विवेचना करेंगे ।इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको यह स्पष्ट होगा कि रूस को भूतकाल से विरासत में क्या मिला, वह पश्चिमी योरोप से पीछे क्यों रहा? वहां का सम्राट निरंकुश किस प्रकार बना रहा, दिसम्बर 1825 में विद्रोह क्यों हुआ? और रूस की अर्द्धदास प्रथा का क्या स्वरूप था और इसका किस प्रकार से अन्त हुआ?

8.1 प्रस्तावना:-

रूस के महान सम्राटों में से पीटर महान् (1682 से 1725) ने रूस को पश्चिमी योरोप के राष्ट्रों के समकक्ष सभ्यता के स्तर पर लाने का प्रयास किया और कैथराइन महान् (1762 से 1796) ने रूस को योरोप के राजनैतिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित स्थान दिलाने में सफलता प्राप्त की है ।

नेपोलियन के पतन के समय रूस का राज्य जार्जिया से प्रशांत महासागर तक फैला हुआ था नेपोलियन प्रथम को परास्त करने में रूस ने महत्वपूर्ण योगदान दिया था । अत: योरोपीय राजनीति में उसको सम्मानित स्थान प्राप्त हो गया था, किन्तु 19 वीं शताब्दी के आरम्भ तक रूस की आन्तरिक व्यवस्था, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन अत्यन्त पिछड़ा हुआ था।

पीटर महान ने 1721 में स्वीडन पर विजय प्राप्त की । इस प्रकार उसने साम्राज्य वादी नीति की नींव डाली जिसको उसके उत्तराधिकारियों ने भवन का रूप प्रदान किया । रूस की विदेश नीति की तीन मूल-भूत समस्याऐं थी-

(ए) बाल्टिक के तट तक पहुंचना

(ब) काले सागर के तट तक अधिकार करना

(स) पश्चिम क्षेत्र (जो रूस व पोलैण्ड के बीच था) पर अधिकार करना

पहली समस्या का समाधान पीटर महान ने कर दिया था शेष दो समस्याओं का समाधान कैथराईन द्वितीय ने किया ।

विदेश नीति के क्षेत्र में इस उल्लेखनीय सफलता के बावजूद इसमें आन्तरिक स्थिरता का अभाव था । इसका मुख्य कारण यह था कि शासक अपना उत्तराधिकारी स्वयं चुनता था और ऐसा करते समय वह अपने घराने के बाहर से व्यक्ति को भी चयनित कर सकता था इसलिये वंश की नींव मजबूत नहीं होती ।

राजतंत्र शक्तिशाली था और उसकी सहायता के लिये जो सिनेट थी वह भी गौण हो गई थी । रूस के सांस्कृतिक जीवन में विदेशी प्रभाव प्रवेश कर रहा था किन्तु उसकी अभिव्यक्ति के कोई साधन नहीं थे, न पर्याप्त प्रकाशन की सुविधाएं थी, न कोई प्रेस थी, न भाषा का विकास हुआ ।

रूसी समाज के संगठन की आधारभूत विशेषताएं ये थीं:-

(ए) राजकीय आवश्यकताओं के अनुरूप होना

(ब) सामाजिक वर्गो को राज्य द्वारा किसी न किसी प्रकार का सेवा करने का मौका देना

(स) राज्य की सेवा के दो मुख्य प्रकार थे:-

सेना के अधिकारियों का दरबार और प्रशासन के कर्मचारियों के रूप में सेवा करना और श्रम 'की पूर्ति करना तथा प्रत्यक्ष कर का भुगतान करना, इस प्रकार "सेवा" करने वालों और "भार" वहन करने वालों में भेद उत्पन्न हुआ ।

"सेवा"-अभिजात वर्ग का और "भार" सामान्यजन का विशेष बन गया ।

अभिजात वर्ग जार (सम्राट) के मुख्य सत्ता के आधार थे इस कारण जागीरों संबंधी अनेक अधिकार उतरोत्तर बढ़ते गये । कृषक दो समान विभागों में विभाजित थे । जो कृषक राजकीय भूमि से जीविकोपार्जन करते थे वे व्यक्तिगत रूप से स्वतंत्र हुआ करते थे, किन्तु फिर भी आवश्यकता पड़ने पर सड़क सुधारने, पुल बनाने इसी प्रकार के अन्य कार्य करने के लिये बाध्य थे । दूसरा वर्ग जागीरों से संबंध "कृषक" दासों का बन गया था । वैधानिक अर्थ में इन्हें अब भी दास न माना जाकर व्यक्ति माना जाता था वे न्यायालयों में न्याय की मांग कर सकते थे और सम्पत्ति धारण कर सकते- थे । किन्तु कालान्तर में अपने स्वामियों की बढ़ती हुई सत्ता के सम्मुख वे अपने आपको असहाय की स्थिति में पाने लगे ।

इस सामाजिक व राजनैतिक पीरामिड के शिखर पर सम्पूर्ण रूस का एकाधिपत्ति "जार" हुआ करता था, उसकी सत्ता अत्यधिक होते हुए भी निरपेक्ष नहीं होती थी, धार्मिक विषयों में उसकी सत्ता चर्च की सत्ता के अधीन थी प्रशासनिक मामलों में जार को अपने अमीरों की सहमति के शासन का संचालन करना पड़ता था ।

इसको इस चित्र से समझा जा सकता है ।

जार
अमीर वर्ग
मध्यम वर्ग
अर्द्ध दास वर्ग

8.2 1815 में रूस:-

योरोप में रूस सबसे बड़ा राज्य था पृथ्वी का 1/6 भाग उसके अधीन था जिसमें फिनलैण्ड, पोलैण्ड का केन्द्रीय क्षेत्र, बैसर्बिया, कोकेशिया, कॉस्पीयन सागर के आस-पास का क्षेत्र और मध्य एशिया के क्षेत्र सम्मिलित थे ।

रूस अपने आपको सुरक्षित पाता था क्योंकि उसका पुराना शत्रु पोलैण्ड पूर्णतया समाप्त कर दिया गया था स्वीडन से बाल्टिक क्षेत्र प्राप्त कर लिया गया था । तुर्की में जो परिवर्तन आये उसके परिणाम स्वरूप अब वह तुर्की के प्रति रक्षात्मक नीति अपनाने के स्थान पर आक्रामक नीति अपनाने लगा था । सुदूर पूर्व में उसको कोई शक्तिशाली चुनौती का सामना नहीं करना था । इस प्रकार योरोपीय शक्तियों में रूस की स्थिति को कोई चुनौती नहीं दे सकता था वह साधारणत: योरोप की महान् शक्तियों में से एक शक्ति माना जाता था इसलिये उसने योरोपीय राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाई कभी-कभी तो निर्णायक भाग लिया ।

क्षेत्रीय व जातिय संगठन की दृष्टि से रूसी राज्य का गठन बहुत ही जटिल था जिसमें सफेद रूसी जो पश्चिम में रहते थे छोटे रूसी (युक्रेन के रहने वाले) और गैर रूसी जिनमें फीन जाति के लोग बाल्टिक लोग, लैटवियन ऐस्थोरियनर्स, लिथोनियनर्स, पालिश, कोकेशियन, आरमिनियन तातार, और बहुत से एशिया के जाति के लोग सम्मिलित थे । फिर भी रूसी साम्राज्य एक दिखाई देता था जिसमें महान रूसियों की संख्या 80 मिलियन, छोटे रसीयन की संख्या 20 मिलीयनस, और सफेद रस्सीयन की संख्या 10 मिलियनस थी, इस प्रकार रूसी साम्राज्य के कुल 180 मिलियन जनसंख्या में से 120 मिलियन रूसी थी ।

19 वीं शताब्दी के पहले अर्द्ध भाग तक छोटे व सफेद रूसी और साम्राज्य के पिछड़े प्रान्तों से कोई खास समस्या उत्पन्न नहीं हुई किन्तु समस्या थी पश्चिमी प्रान्तों में जहां पोलस व फीन जाति के लोग रहते थे । ये लोग सभ्यता व संस्कृति के क्षेत्र में रूसियों से ऊंचे थे और उनमें स्वतंत्र अथवा अर्द्ध स्वतंत्र रहने की परम्पराएं थी, इसलिये रूसी शासन ने उनको विशेष सुविधाएं प्रदान कर रखी थी कुछ समय तक वे इन सुविधाओं का लाभ उठाते रहे जब तक रूसी शासन ने केन्द्रीयकरण की नीति का अनुसरण नहीं किया और जैसे ही केन्द्रीयकरण की नीति का अनुकरण किया गया तो गम्भीर संघर्ष प्रारम्भ हो गये, जो विषेश सुविधाएं इन्हें मिली हुई थीं या तो वे कम कर दी गई या पूर्णत: समाप्त कर दी गई । किन्तु रूसी साम्राज्य इस क्षेत्र में पूर्णत: असफल रहा और वे कोई ऐसा बीच का रास्ता तलाश नहीं कर सका जो दोज़ें को ही सन्तुष्ट कर सके ।

दूरी के कारण साम्राज्य का एक भाग दूसरे भाग से कटा हुआ था । 19 वीं शताब्दी के पहले अर्द्ध भाग में संचार सुविधाएं उपलब्ध कराई गई थीं किन्तु वे अपर्याप्त थीं । 1830 में सैन पीटर वर्ग और मास्को के बीच एक राष्ट्रीय राजमार्ग था 1860 में सड्कों की कुल लम्बाई 5,000 मील थी । 1838 में पहली रेल लाईन का निर्माण किया गया । 1867 में. रेलों की कुल लम्बाई 3,500 मील थी, इस प्रकार संचार व आवागमन की कमी के कारण शासन को चलाने में असुविधा होती थी इसका एक प्रमाण है कि जब दिसम्बर 1825 को तगानरोग में

एलैक्जेन्डर प्रथम की मृत्यु हुई तो उसकी मृत्यु का समाचार सेंट-पीटर्स-वर्ग में पहुंचने में एक सप्ताह लगा ।

8.2.1 रूस का पिछडापन

कई शताब्दियों तक रूस योरोपीय इतिहास की धारा से अलग थलग रहा । उसका क्षेत्र इतना बड़ा था और उसका विकास अन्य देशों की तुलना में इतनी भिन्न तरीके से हुआ। यह बगैर अतिश्योक्ति से कहा जा सकता है कि रूस अपने आप में एक महाद्वीप है जो योरोप व एशिया के बीच स्थित है । रूस राजनैतिक विकास के क्षेत्र में अन्य योरोपीय देशों से काफी पीछे रहा । 13 वीं शताब्दी में सामन्तवाद के अन्तर्गत काफी विकास हो चुका था और राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना के कदम उठाये जा रहे थे, तो रूस अब भी कुछ हद तक अर्द्ध बर्बर था और कुछ हद तक सामन्तवादी था । 16 वीं व 17 वीं शताब्दी में जब पश्चिमी योरोप सामन्तवाद से राष्ट्रीय राज्य की तरफ बढ़ चुका था तो रूस कुछ हद तक सामन्तवादी था और कुछ हद तक राजतंत्रवादी । जब 18 वीं व 19 वीं शताब्दी में पश्चिमी योरोप में संवैधानिक शासन स्थापित हो रहे थे । तो रूस में पूर्णत: निरंकुश राज्य था, और जब प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्व पश्चिमी योरोप तेज गति से अपने शासन का आधार लोकतन्त्रीय बना रहे थे तो रूस गम्भीरता से अवैधानिक शासन स्थापित करने की कोशिश कर रहा था ।

8.2.2 रूस के पिछड़ेपन का कारण

रूस के पिछड़ेपन का कारण रूसी जनता के चरित्र में नहीं खोजना चाहिये क्योंकि जिस प्रकार फ्रांसीसियों के स्वभाव में प्रगतिशील होना आवश्यक नहीं था उसी प्रकार से रूसी स्वभाव भी रूढ़ीवादी नहीं था, मानव प्रयासों के सबसे ऊंचे स्वरूप में कला और विज्ञान में रूसियों ने सभ्यता व मौलिकता के क्षेत्र में आश्चर्यचकित उपलब्धियां प्राप्त की थी, टालस्टाय दूरगिव भी और दस्तोरिस्फीं ने साहित्य में चेकोसविस्की और स्ट्रेवैनसिकी ने संगीत में अन्तो कोलासिकी और वेरेस्टसेजिन ने कला में, मेन्डीलिव और मेस्नीकॉव ने विज्ञान में ऐसे नाम पैदा किये जिन पर संसार के सबसे ज्यादा सभ्य राष्ट्र गौरव कर सकते हैं ।

पिछड़ेपन का उत्तर कहीं ओर तलाश करना होगा । सर्वप्रथम रूस कभी भी प्राचीन रोमन साम्राज्य का एक भाग नहीं रहा इसलिये इसको चिरसम्मित रोमन साम्राज्य का एक भाग नहीं रहा इसलिये इसको चिरसम्मित सभ्यता के लाभ प्राप्त नहीं हुऐ जो कि पश्चिमी योरोप के राष्ट्रों को विरासत में मिले थे दूसरे, रूस मध्य युगीन कैथोलिक सभ्यता के प्रभाव से भी बाहर था क्योंकि रूस के स्लाव बर्बर जाति के लोगों को कुस्तुनतुनिया के पादरियों ने ईसाई बनाया था और इन ईसाई पादरियों ने यूनानी सभ्यता का विस्तार इतने प्रभावशाली ढंग से नहीं किया जितना. कि रोम के धर्म प्रचारकों ने लैटिन सभ्यता का किया था, तीसरे दुर्भाग्य से 13 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अर्द्ध सभ्यता तातारीयों ने रूस को विजयी कर लिया था जिन्होंने लगभग 300 वर्षो तक वहाँ शासन किया और इन्होंने रूस को पिछड़ा हुआ रखा । रूस के प्रारम्भिक इतिहास में रूस एक आन्तरिक क्षेत्र था जिसका केन्द्र बिन्दु मॉस्को था समुद्री तट न होने के कारण दक्षिण में भूमध्य सागरीय सभ्यता से वह कोई सम्पर्क स्थापित नहीं कर सका न ही

पश्चिम की एटलांटिक सभ्यता से । रूस एक विस्तृत भूमि से घिरा हुआ मैदानी क्षेत्र है । जिस पर बर्बर जातियाँ घूमती रही यह एक ऐसा जंगल है जहां ये बताना मुश्किल था कि "कहां मानवता समाप्त हुई और कहां प्रकृति प्रारम्भ हुई है" पश्चिम की योरोप से अलग-थलग होने के कारण रूस को पुर्नजागरण की चेतना और प्रोटेस्टेंट क्रान्ति के झटके नहीं लगे यहां तक कि जब फ्रांसीसी क्रान्ति की लहरों ने पश्चिमी राष्ट्रों की भूमि पर बाढ़ उत्पन्न कर दी तो ये लहरें रूसी रूढ़िवादिता के दीवारों से टकरा-टकरा कर बेकार साबित हुई ।

रूस के इतिहास में 19 वीं शताब्दी महत्वपूर्ण घटनाओं का काल था । सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में शासकों का दृष्टिकोण रूढ़िवादी था ताकि शीघ्रता से आमूल परिवर्तन न हो सके ।

8.3 रूस को भूतकाल की विरासत:-

19 वीं शताब्दी में नई विचारधाराओं एवं संस्थाओं का विश्वास धीरे-धीरे जमता जा रहा था और रूस का भाग्य ऐसे अनोखे चौराहे पर पहुंच गया था जिसके पिछले भाग में परम्परागत रूढ़िवाद था और सामने नई व्यवस्था की आशाएं दिखाई पड़ रही थी । रूस को भूत काल से रूढ़िवाद की तीन परम्पराएं मिली जो निम्न थी.

(ए) निरंकुश-वाद

(बी) अभिजात वर्ग

(सी) अर्द्ध दास प्रथा

8.3.1 निरंकुश-वाद:-

रूस का राजतंत्र पूर्णत: निरंकुश था उस पर किसी प्रकार का संवैधानिक प्रतिबन्ध नहीं था उसकी कोई प्रतिद्वन्दी संस्था भी नहीं थी न कोई ऐसा सामाजिक वर्ग था जो उस पर अंकुश रख सके ।

इसका अस्तित्व व विकास राष्ट्रीय सुरक्षा और साम्राज्य विस्तार पर निर्भर करता था इसका प्रारम्भिक अर्द्ध धार्मिक स्वरूप और पितृ सत्तात्मक चरित्र समाप्त हो चुका था किन्तु उसने अपने किसी अधिकार को नहीं त्यागा था बल्कि पहले की अपेक्षा यह और ज्यादा शक्तिशाली हो गया, इसके निम्नलिखित कारण थे:-

(क) पुराना सामन्तीय कुलीन वर्ग समाप्त हो चुका था

(ख) ड्यूमा, जो कुलीन वर्ग की एक संस्था थी समाप्त कर दी गई थी ।

(ग) राष्ट्रीय सभा (जेम्सकी सोबोर) जो प्रान्तों की प्रतिनिधि सभा थी लुप्त हो गई थी जेम्सकी सोबोर की समाप्ति पर आपातकालीन स्थिति की घोषणा कर दी गई जिससे जनता राजनैतिक अधिकारों से वंचित हो गई और स्थानीय स्वशासन समाप्त कर दिया गया था ।

(घ) चर्च अपनी स्वतंत्रता खो चुका था

(ङ) इसलिये कोई चीज रही तो वह निरंकुशता थी । धीरे-धीरे रूसी निरंकुशता का पश्चिमीकरण हुआ बिल्कुल उसी प्रकार से जिस प्रकार से बर्लिन व वियना में हुआ था जिसमें सुथवस्थित राज्य और संस्कृतिकरण के उद्देश्यों को अंगीकार किया गया । पीटर महान् ने देश

के सांस्कृतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की केथारायन द्वितीय ने कला व साहित्य को संरक्षण प्रदान किया सामाजिक सुविधाओं का विकास किया उसने शिक्षा के क्षेत्र में रूचि दिखाई। और इस प्रकार राज्य का स्वरूप 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में उदारवादी निरंकुश राजतंत्र में पर्णित हो गया एलैकजेन्डर प्रथम के शासन काल के इस उदारवादी निरंकुश-वाद के कुछ उदाहरण देखने को मिलते हैं किन्तु शासन तंत्र में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं आया ।

8.3.2 अभिजात वर्ग:-

सोलहवीं व सत्रहवीं शताब्दी में सैनिक सेवा के स्थान पर नये अभिजात वर्ग का जन्म हुआ । सैनिक सेवावर्ग का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय सुरक्षा व साम्राज्यवादी प्रशासन को चलाना था पीटर महान् के शासन काल में इस नवीन अभिजात वर्ग का कार्य केवल राजकीय कर्मचारी के रूप में कार्य करना था । उनसे यह आशा की जाती थी कि वह अपनी पूर्ण क्षमता से राज्य की सेवा करें । अभिजात वर्ग के हर सदस्य के लिये 16 साल की आयु से उसे अंत तक राज्य की सेवा करनी पड़ती थी । सम्राट स्वयं 10 अथवा 14 साल के लड़कों का परीक्षण करके उनके लिये स्कूल व व्यवसाय चयनित करता था । एक निरीक्षण, जो साधारणतया मास्को में होता था अभिजात वर्ग के नवयुवकों को मोटे तौर से 2/3 को सैनिक सेवा में तथा 1/3 को प्रशासनिक सेवा में विभाजित कर दिया जाता था । 1722 में टेबल ऑफ रैंक्स की घोषणा की गई जिसमें 14 रैंक्स सम्मिलित थे जिसमें हर सैनिक व प्रशासनिक व्यक्ति सेना, प्रशासन व न्यायालय में नीचे से ऊपर तक पदोन्नत हो सकता था, यही रूसी नौकरशाही की बुनियाद थी जो कुछ परिवर्तन के साथ 1917 तब बनी रही । अभिजात वर्ग अपने उत्तरदायित्व से मुक्त होता रहा जबकि वह अपने विशेष अधिकारों को न केवल बनाये रखा बल्कि उन्हें बढ़ाता रहा । अभिजात वर्ग की जीविका के लिये भूमि प्रदान की जाती थी । उन पर किसान खेती करते थे । ये स्वतंत्र किसान अब अर्द्धदास बनते जा रहे थे । अभिजात वर्ग का सदस्य राज्य की सेवा करे या न करे यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता था अगर वे चाहते तो विदेशों में भी सेवा कर सकते थे और इस तरह से काफी शक्तिशाली होते जा रहे थे इसका मुख्य कारण यह था कि 1725 से 1762 के बीच शासक तेज गति से बदले और उत्थान हुआ और उसी गति के साथ उनका पतन हुआ ऐसी स्थिति में किसी को लाभ पहुंचा तो वह रूस का अभिजात. वर्ग था जिसको Gentry कहते हैं।

कैथेराइन द्वितीय के समय में ये एक विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग बन गई थी । जिनको विशेष आर्थिक व सामाजिक अधिक प्राप्त थे । जबकि इनका कोई उत्तरदायित्व नहीं था । 1785 के चार्टर के अनुसार Gentry को निम्नलिखित और सुविधाएं प्राप्त हो गई थी:-

(1) व्यक्तिगत कर से इन्हें मुक्त कर दिया गया ।

(2) अनिवार्य सैनिक सेवा से भी उन्हें मुक्ति मिल गई थी ।

(3) उनको शारीरिक दण्ड भी नहीं दिया जा सकता था

(4) उनको अपने अर्द्धदास रखने का अधिकार था ।

(5) 1801 तक उन्हें भूमि पर मालिकाना तक जमाने का एकाधिकार था ।

(6) वे अपना सामूहिक संगठन बना सकते थे । जिसकी सभाएं आयोजित की जाती थी जो अपने मामलों पर विचार विमर्श कर सकती थी ।

(7) उनको अपने अधिकारी चुनने का अधिकार था जिनको अभिजात वर्ग का कहा जाता था ।

यह विशेषाधिकार इसलिये नहीं थे कि अभिजात वर्ग के सदस्यों को सरकारी नियंत्रण से स्वतंत्रता मिल जाये ।

अभिजात वर्ग को एक निरंकुश शासक के द्वारा जो सुविधाएं प्रदान की गई थीं । वे दूसरे निरंकुश शासकों के द्वारा ली भी जा सकती थीं क्योंकि इसका आधार कोई संवैधानिक नहीं था । अभिजात वर्ग को जो विशेष सुविधाएं प्रदान की गई थीं वे निम्न थी:-

पॉल प्रथम के समय (1796 से 1801) में इन सुविधाओं को समाप्त कर दिया जबकि एलैक्जेन्डर प्रथम ने 1801 से 1825 तक इन्हें पुन: प्रदान कर दिया ।

प्रश्न उठता है कि उनको इस प्रकार की सुविधाएं 1785 के चार्टर के द्वारा क्यों प्रदान की गई । कैथराईन द्वितीय वस्तुत: अभिजात वर्ग की जारीना कहा जाता है । जारीना का गद्दी के प्रति अधिकार संदेह जनक था इसीलिये अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए वह अभिजात वर्ग के समर्थन पर आश्रित थी । न तो पॉल न एलैक्जेन्दर प्रथम और निकोलस प्रथम पूर्णत: अभिजात वर्ग के समर्थन पर निर्भर नहीं करते थे इसलिये उन्हें वास्तविक अर्थ में अभिजात वर्ग का जार नहीं कहा जा सकता ।

अभिजात वर्ग का राज्य के शासन पर जो प्रभाव था वह उनके सामाजिक महत्व के कारण था ।

अभिजात वर्ग का राजकाज के कार्य पर प्रभाव:-

रूस में आर्थिक दृष्टिकोण से अभिजात वर्ग सबसे ज्यादा शक्तिशाली था उनकी धनाढ़यता का मुख्य स्त्रोत भूमि का मालिकाना अधिकार था ।

सामाजिक स्तर पर अभिजात वर्ग अकेला ही सीमित क्षेत्र से एक समाज माना जाता था क्योंकि (1) यही शाही दरबार की शोभा बढ़ाते थे ।

(2) नगरीय तथा ग्रामीण केन्द्रों के सामाजिक जीवन पर इनका बहुत प्रभाव था ।

(3) अभिजात वर्ग का शिक्षित वर्ग लगभग पर्याय बन गये थे ।

(4) सैनिक व प्रशासनिक अधिकारी इन्हीं मे से चुने जाते थे यहाँ तक कि 19 वीं शताब्दी के दूसरे अर्द्धभाग तक प्रान्तों में इनका वर्चस्व बना हुआ था ।

(5) इनकी भूमि पर काम करने वाले किसानों पर जिनको अर्द्धदास कहा जाता है उन पर पैतृक न्यायिक अधिकार था ।

(6) स्थानीय स्वशासन में महत्वपूर्ण पदों पर यही नियुक्त किये जाते थे ।

8.3.3 अर्द्धदास प्रथा:-

अर्द्धदास प्रथा का स्पष्ट रूप 11 वीं शताब्दी से दिखाई दिया जाने लगा था । जब भूमि का स्वामित्व गांवों की पूरी जनता से हटाकर व्यक्तियों के हाथों में आने लगा । इन व्यक्तियों के अधिक बंधुआ मजदूर अत्यधिक अमानवीय स्थिति में कठिन परिश्रम करते और अपना खून

पसीना एक करते । 1649 में सोबनी उलाजकैनी नानक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ और अर्द्धदास प्रथा अपनी चरम सीमा पर पहुंच गई ।

8.3.3.1 सामन्तवादी व्यवस्था के अन्तर्गत पश्चिमी योरोप में दास अपने स्वामी की सेवा में खेती का काम करते थे उन्हें उनके श्रम के बदले न तो कोई पारिश्रमिक मिलता था ना ही उस भूमि पर अथवा उस उत्पादन पर उनका किसी प्रकार का कोई अधिकार होता था यहां तक कि अपने परिवार पर भी अधिकार नहीं होता था । क्योंकि स्वामी उनकी पत्नियों व बच्चों को इच्छानुसार अलग बेच सकता था स्वामी दासों का कोई अधिकार नहीं था । पूंजीवादी व्यवस्था में' भी कामगार उत्पादन के साधनों से किसी प्रकार का जुड़ाव नहीं रखते यद्यपि वे कारखानों में काम करते तथा उत्पादन के लिये मशीनों एवं कच्चे माल को उपयोग में लाते हैं किन्तु इनकी वस्तुओं पर कोई अधिकार नहीं होता है प्राचीनकाल के दास व आज के कामगार में मुख्य अन्तर यह है कि दास के विपरीत कामगार को अपने काम का पारिश्रमिक मिलता है तथा वह श्रम करने अथवा छोड़ देने के लिये स्वतंत्र है ।

प्राचीन काल के दास तथा आधुनिक कामगार के बीच की स्थिति में है मध्ययुगीन कृषिदास (जिनको इस लेख में अर्द्धदास कहा गया है) न तो वह दास की भांति उत्पादन के साधनों से पूर्णत: कटा हुआ था । ना ही उनका पूरा स्वामी । दास किसी भी अन्य सम्पत्ति की भांति था जिसे इच्छानुसार बेचा व खरीदा जा सकता था । कृषिदास को उसकी भूमि सें अलग करके नहीं बेचा जा सकता था यदि स्वामी कृषिदास से संबंधित भूमि को बेचता था तो उस भूमि के साथ संबंधित स्वाभाविक रूप से दास, भी नये स्वामी की सम्पत्ति हो जाता था । कृषक दास को भूमि जोतने का अधिकार वंशागुनत रूप से प्राप्त होता था किन्तु उसे भू-स्वामित्व प्राप्त नहीं था । कहा जाता था कि 'किसान तो भूमि से बंधा हुआ है । ये मुहावरा सामन्तवादी समाज में कृषि दास के जोत के अधिकार की विशेषताओं को व्यक्त करता है । यह मुहावरा दोहरे अर्थवाला है एक ओर तो इसका अर्थ था कि किसान अपने स्वामी की भूमि छोड़कर अन्य कहीं नहीं जा सकता था दूसरी ओर ये भी कि स्वामी चाहे तो भी कृषक को उस भूमि से बेदखल नहीं कर सकता था अत: यदि स्वामी अपनी भूमि को बेच देता था तो भी उसे जोतने वाले कृषक का उस भूमि को जोतने का अधिकार खत्म नहीं होता था । किसान व खेत का सम्बन्ध वैसा ही बना रहता था केवल स्वामी बदल जाता था ।

8.3.3.2 रूस के अर्द्धदास प्रथा का प्रारंभ:-

रूस में अर्द्धदास प्रथा का आधार कृषि था । अर्द्धदास (Gentry) की सहायता करते थे और राज्य का सारा ढांचा इसी प्रथा पर आधारित था । इस प्रथा का प्रारंभ किव के प्रारंभिक दिनों में हुआ और शताब्दियों तक इसका क्रमिक विकास होता रहा किसानों का अपने भूमिपतियों पर निर्भरता उन समझौते से प्रारंभ हुई है जो कृषक व भूमिपतियों के बीच हुई, इन समझौतों में कृषक ऋण, अनाज या कृषि औजार के बदले में इसके वापस भुगतान का भूमिपतियों से वादा करता था और उसके खेतों पर कार्य करता था जिसको कोरवि कहते थे । ये समझौते 1 साल से 10 साल तक के लिये होते थे किन्तु उससे आगे भी बने रहते थे । इसका कारण यह था कि किसान अपना ऋण नहीं चुका पाता था । कोरवि के माध्यम से केवल वे

अपने ऋण के ब्याज का ही भुगतान कर सकता था । इसलिये किसान अपने भू-स्वामियों को छोड़कर नहीं जा सकता था साल में एक बार ही उसको अवकाश मिलता था और वह होता था जार्ज के जन्म दिन पर ।

आक्रमण, वर्षा की कमी, महामारी, और अन्य प्राकृतिक विपदाओं के कारण जो बहुत ज्यादा आया करती थी किसान की निर्भरता बढ़कर बन्धुआ मजदूर की हो गई थी । आहिस्ता-आहिस्ता किसान साल में एक बार अपने स्वामी को छोड़ सकता और वे भी शीत ऋतु के अन्त में । किन्तु शर्त यह थी कि वे अपने कर्ज का पूरा-पूरा भुगतान कर दे ।

यह अर्द्धदास प्रथा तेज गति से बढ़ती रही जैसे-जैसे रूस के शासकों ने अभिजात वर्ग को किसानों सहित भूमि प्रदान की, अर्द्धदास प्रथा दक्षिणी पूर्वी रूस में बहुत ज्यादा थी । पश्चिमी रूस के काफी भाग में अर्द्धदास प्रथा थी किन्तु उत्तरी क्षेत्रों में नहीं थी इसका कारण यह था उत्तरी क्षेत्र में किसी शत्रु का आक्रमण नहीं हुआ और न ही अभिजात वर्ग की आवश्यकता महसूस हुई, किसी प्रत्यक्ष कानून के द्वारा अर्द्धदास प्रथा की स्थापना नहीं हुई यद्यपि कुछ कानून ऐसे बने जिसने अर्द्धदास प्रथा को जन्म दिया । जैसे साल के कुछ महीने जब कृषक अपने खेतों को न तो छोड़ सकते थे न ही उनको अपने खेतों से बेदखल किया जा सकता था, सरकार ने अपने अभिजात वर्ग के हितों के कारण ऐसा किया क्योंकि वह नहीं चाहते थे कि किसानों का हस्तान्तरण किया जाये बल्कि वे किसानों के भाग जाने पर वे प्रतिबन्ध लगाते थे । इस प्रकार निरंकुशता व नये अभिजात वर्ग के साथ-साथ रूस में अर्द्धदास प्रथा का भी विकास हुआ । अर्द्धदास प्रथा कुछ हद तक आर्थिक कारणों से उत्पन्न हुई क्योंकि किसान भूमिपतियों पर निर्भर करते थे और कुछ हद तक शासन की नीतियों के कारण उत्पन्न हुई जिसमें शासन का मुख्य उद्देश्य वित्तीय-नैतिक लाभ प्राप्त करना था ।

अर्द्धदास रूस के समाज में सबसे ज्यादा कर देने वाला समाज था । वे सैनिक सेवा में काम करने वाले लोगों के खेतों पर कृषि करते थे । वे ही लोग करों की वसूली भी करते थे और भूमि को जोतते थे इसलिये उनके प्रस्थान करने की प्रवृत्तियों पर रोक लगाई गई थी और इस तरह वे भूमि से जुड़ गये थे । 17 वीं शताब्दी के मध्य तक अर्द्धदास प्रथा की प्रकिया पूर्ण हो चुकी थी । और 18 वीं शताब्दी में अर्द्धदास प्रथा के बन्धन और ज्यादा मजबूत हो गये और 19 वीं शताब्दी तक तो भूमिपतियों को अपने अर्द्धदासों पर पूर्ण अधिकार हो गया था और लगभग उसकी कोई सीमा निर्धारित नहीं थी ।

भूमिपतियों के अर्द्धदासों पर अधिकार:-

1. अर्द्धदासों को अपनी इच्छानुसार उपयोग करने का अधिकार
2. उनको बेचने का अधिकार
3. उनको गिरवी रखने का अधिकार
4. उनको उपहार के रूप में देने का अधिकार
5. अर्द्धदासों के बगैर पारिश्रमिक के उनके श्रम का शोषण करना ।
6. कोरवि का प्राप्त करना । ये भुगतान अर्द्धदास अपनी कमाई से अपने स्वामियों को देता था जिससे कि वह कर की मुक्ति पा सके ।

7. पुलिस के अधिकारों का प्रयोग करना ।

8. गम्भीर फौजदारी मामलों के न्याय के रूप में मुख्य न्यायाधीश के रूप में कार्य करना-

किन्तु इसका आशय यहं नहीं है कि अर्द्धदासों को पूर्णत: अपने स्वामियों की दयादृष्टि पर ही छोड़ दिया, शासन इनसे निम्नलिखित आशा करता था:-

(क) भू-स्वामी का यह कर्तव्य था कि वह अकाल के समय अपने अर्द्धदासों को भोजन की व्यवस्था करे ।

(ख) 1797 के आदेशानुसार एक स्वामी सप्ताह में ज्यादा से ज्यादा तीन दिन की मजदूरी अपने अर्द्धदासों से ले सकता था इस नियम का पालन इसके उल्लंघन में ही किया गया।

(ग) स्वामी अपने अर्द्धदासों ने इस नियमों का उल्लंघन किया लेकिन उनको किसी प्रकार की सजा नहीं. दी गई ।

मध्यम वर्ग-

मध्यम वर्ग में नगर निवासी व पादरी सम्मिलित थे रूसी समाज में मध्यम वर्ग संख्या व प्रभाव की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं था । 18 वीं शताब्दी के अन्त में रूसी समाज निम्न प्रकार से बंटा हुआ था-

कृषक 94.5% इनमें से 55% अर्द्धदास थे जो भूमि पतियों की निजी भूमि पर कार्य करते थे । शेष 39.5/ ऐसे अर्द्धदास थे जोकि सम्राट की भूमि पर कार्य करते थे अथवा स्वतंत्र कृषक थे)

3.5/ नगर निवासी (या उससे कुछ कम)

1.0/ अमीर वर्ग (उससे कुछ ज्यादा)

1.0/ पादरी (उससे कुछ ज्यादा)

कल 100.0/

19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मध्यम वर्ग की स्थिति अपेक्षाकृत और कमजोर हो गई और यह स्थिति जार तंत्र के अंत तक बनी रही ।

नगरीय जीवन विकसित नहीं हुआ था, पश्चिमी यूरोप के आकार का मध्यम वर्ग रूस में विकसित नहीं हो पाया । उच्च वर्ग के व्यापारी अभिजात वर्ग के कुछ विशेष अधिकारों का भोग करते थे, उनको व्यक्तिगत रूप से कोई कर नहीं देना पड़ता था न अनिवार्य सैनिक सेवा करनी पड़ती थी और न उनको शारीरिक दण्ड दिया जाता था । इसके बावजूद भी उनका सामाजिक स्तर कम था । प्रशासनिक मामलों में उनकी कोई आवाज नहीं थी और सांस्कृतिक जीवन में न उनकी भूमि थी । संक्षिप्त में वह समाज के अंग नहीं थे, अपने आप में अलग थलग थे । लगभग एक जाति बन गये थे और अपने जाति के बाहर यह विवाह भी नहीं करते थे । सैद्धान्तिक रूप से उनका सामाजिक स्तर व उनका व्यवसाय उनको अपने पिता से विरासत में मिलता था ।

यह बात पादरियों के लिए सत्य थी । उनको भी ऊपर लिखी हुई छूट का लाभ प्राप्त था, कुछ ही बड़े पादरियों को छोड़कर उनकी सामाजिक स्थिति कमजोर थी । ग्रामीण पादरियों और किसानों में कोई अन्तर नहीं था ।

8.3.3.3 नयी परम्परा-राजनैतिक विचार व आर्थिक विकास-

रूस का इतिहास विरोधाभास की दृष्टि से काफी धनाढ्य है । पश्चिमी यूरोप का प्रभाव रूस में प्रवेश कर रहा था फिर भी रूसी निरंकुश मुख्य रूप से दो बातों पर जोर देता था

1. राष्ट्रीय सुरक्षा को मजबूत किया जाए ।
2. प्रशासनिक तंत्र को और विकसित किया जाए ।

इसलिए स्वाभाविक रूप में एक तरफ नई-नई परम्पराओं का विकास हो रहा था और यह राजतंत्रों के नियमों को खोखला कर रहा था और इस प्रकार निरंकुशवाद अपने ही विनाश के बीज बो रहा था । दूसरा विरोधाभास इस बात में दिखायी देता था कि एक तरफ पश्चिमी यूरोप की तकनीकी को अपनाया जा रहा था तो दूसरी तरफ रूस के सांस्कृतिक पृथकीकरण को सुरक्षित करने की चेष्टा की जा रही थी जो कि व्यवहारिक रूप में असंभव था । पश्चिमी विचारधारा के साथ-साथ पश्चिमी तकनीक और पश्चिमी जीवन पद्धति का होना स्वाभाविक था । इसके अनुसार रूस में संवैधानिक शासन, नागरिक समता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का जन्म हो रहा था, इसमें कैथराइन द्वितीय की महत्वपूर्ण भूमिका रही । कैथराइन, फांसीसी दर्शन की बड़ी प्रशंसक थी, किन्तु उसका यह दृढ़ विश्वास भी था कि रूस में निरंकुशवाद ही एक सम्भव शासनतंत्र है । फ्रांसीसी क्रांति के पश्चात् और अपने जीवन के अंत में उदार विचारों के प्रति जो उनका उत्साह था वो ठण्डा हो चुका था । उसकी जनता ने इन घटनाओं के निष्कर्ष कुछ और ही निकाले और वो निष्कर्ष पूर्णतया भिन्न थे, उन निष्कर्षों से जो कैथराइन ने निकाले थे । रूसी जनता और वहां ठहरने के लिए तैयार नहीं थी जहां कैथराइन ठहराना चाहती थी ।

वाल्टेयर-वाद शिक्षित रूसियों के कुछ वर्ग को बहुत प्रिय हो चुका था ।

कैथराइन की व्यक्तित्व और चरित्र ने बहुत से रूसियों को प्रभावित किया था । यूरोप की घटनाओं ने यह साबित कर दिया था जो कि सोचा था वो सही कर दिया, कैथराइन के चरित्र में एक खास बात थी कि वो यह हर क्षेत्र में अग्रणीय बनना चाहती थी और वह इसके लिए रात दिन कार्य करती थी । किन्तु उसमें एक दोष भी यह था कि दया, दानशीलता और मानवीय सद्भावना की कमी थी । वह निर्णय की बहुत पक्की थी और बहुत महत्वकांक्षी थी । उसकी महत्वकांक्षा ने उसे घमण्डी बना दिया था और उसका घमण्डीपन उसकी महत्वकांक्षा को बढ़ाता था । यह कहना मुश्किल था कि वो किसमें विश्वास करती थी अथवा वो किसी में विश्वास करती थी भी या नहीं ।

फीमैशन आन्दोलन:-

19 वीं शताब्दी में रूस में नई विचारधारा ने एक आन्दोलन का रूप धारण नहीं किया था अपितु एक मनोस्थिति थी जिसमें अनेक राजनैतिक कार्यक्रम उलझे हुये थे । योरोप से जो रूसी सेनाएं स्वदेश लौटी थी या जो विद्यार्थी विदेशो में शिक्षा प्राप्त करके लौटे थे वे नवीन पाश्चात्य विचारधारा अपने साथ लाये थे । उदाहरण के लिए जब तीन वर्ष तक फ्रांस पर

अधिकार रखकर रूसी सेनाएं स्वदेश लौटी तो रूस में राजनैतिक साहित्य और स्वदेश. प्रेम को व्यक्त करने वाले गीतों की मांग थी । पुश्किन ने रूस में क्रान्तिकारी कविताओं की बाढ़ ला दी थी सभी नवयुवकों को ये कविताएं कंठस्थ थीं । इन योरोपीय घटनाओं का रूस पर व्यापक प्रभाव पड़ा । इन उदारवादी विचार धाराओं की सबसे पहली अभिव्यक्ति रूस में फ्रीमेशन (गुप्त संसद) आन्दोलन से मिलती है । जिसका विकास 19 वीं शती के प्रथम दो दशकों में हुआ । फ्रीमैशनों के समाजों का सम्बन्ध केवल राजनैतिक समस्याओं से न था उनका प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति का नैतिक उत्थान या आत्मउन्नति था । इन समाजों के सदस्य रहस्यवादी पवित्रता पर बल देने वाले और परोपकारी व्यक्ति थे जो इन समाजों में अराजनैतिक अनुदार विचारधारा का प्रचार करते थे ये समाज व्यापक परिवर्तनों के पक्ष में नहीं था । इनका मुख्य केन्द्र मॉस्को को विश्वविद्यालय था वहीं से वे अपना साहित्य समय-समय पर प्रकाशित करते थे । निकोलस नॉविकाफ (1744-1818) इस दल का नेतृत्व कर रहा था । जिसकी आलोचना में सबसे ज्यादा रूस की अर्द्धदास प्रथा थी । दूसरा विचार रेडिश्चया (1749-1802) का था । इसने अर्द्धदास प्रथा की खुलकर आलोचना की थी । 1790 में उसने एक पुस्तक लिखी जिसका शीर्षक था "पीटर्सवर्ग से मास्को की यात्रा" इसका पहला अध्याय था प्रस्थान दूसरे बीस अध्याय उसने उन स्टेशनों के नाम रखे जो मार्ग में पड़ते थे । इस पुस्तक में उसने अर्द्धदासों की भयानक स्थिति का वर्णन किया है जिसमें उसने दर्शाया है कि अर्द्धदास रविवार को अपने खेतों पर काम करते हैं क्योंकि उन्हें उसी दिन अपने खेतों पर काम करने दिया जाता है और सप्ताह के शेष दिन उन्हें अपने स्वामी के खेतों पर कार्य करना पड़ता है दूसरे स्थान पर उसने एक ही दास परिवार के सदस्यों को नीलामी में भिन्न-भिन्न लोगों को बेचते हुए बताया है तीसरे स्थान पर उसने स्वामियों द्वारा अपने अर्द्धदासों के जबरन विवाह को दर्शाया है । लेखक ने जहां एक और अर्द्धदास प्रथा की खुलकर आलोचना की है वही उसने रूसी निरंकुशवाद, प्रशासनिक भ्रष्टाचार पर कठोर आघात किया है और इन सबका निवारण गणतंत्र की स्थापना में बताया है जिसमें व्यक्तियों को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होगी ।

उदार जनमत और उदार आलोचना रूस में प्रारम्भ हो चुकी थी और ये बाद के रूसी बुद्धिवादी आन्दोलन के अग्रदूत समझे जाते रहे । सम्राट, अमीर वर्ग और अर्द्धदास सभी पर आक्रमण हो रहे थे और आलोचना की जा रही थी । संवैधानिक शासन की मांग करके निरंकुशवाद का विरोध किया जा रहा था । नागरिक समानता की बात कह कर अभिजात वर्ग की व्यर्थता को दर्शाया जा रहा था । सामाजिक अन्याय का नारा लगाकर अर्द्धदास प्रथा पर आक्रमण किये जा रहे थे किन्तु ये विरोध एक छोटे से शिक्षित समाज तक ही सीमित थे और इसका स्वरूपस एक साहित्यिक धर्मयुद्ध से अधिक कुछ नहीं था । इसने एक संगठित राजनैतिक आन्दोलन का रूप धारण नहीं किया था किन्तु इस प्रकार की शुरूआत भी एक भविष्य के आन्दोलन की शुभ सूचना भी जो निरन्तर आहिस्ता-आहिस्ता शक्तिग्रहण कर रहा था और जिसने बाद में खुल्लमखुला उदारवादी वर्ग और शासन के बीच संघर्ष का रूप धारण कर लिया । इन बुद्धिजीवियों की दृष्टि में निरंकुशवाद की अब ऐतिहासिक आवश्यकता समाप्त हो गई थी । साम्राज्य विस्तार पूर्ण हो चुका था और विदेशी आक्रमण से लगभग सुरक्षा की जमानत भी मिल चुकी थी । इसलिए अब स्थायी तानाशाहों का सभ्यता के प्रचार के उद्देश्य की भी कली खुल

चुकी थी । रूस का शिक्षित वर्ग अब पक्की आयु का बन चुका था और सरकारी नियंत्रण को चुनौती देने लगा था और अब वे दिन दूर नहीं थे कि वे लोग राष्ट्रीय मामलों में अपनी भागीदारी की मांग प्रस्तुत करे । इस प्रकार राष्ट्रीय बौद्धिक विकास उस समय की सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्था की वैधता और बुद्धि को चुनौती देने' लगा था और इसी के परिणाम स्वरूप देश के आर्थिक जीवन में आहिस्ता-आहिस्ता महत्वपूर्ण परिवर्तन होने लग गये थे ।

8.3.3.4 रूस का आर्थिक जीवन:-

इन आर्थिक परिवर्तनों ने अर्द्धदास प्रथा की वैधता को चुनौती दी और साथ ही भूमिपति वर्ग के सामाजिक श्रेष्ठता को भी ।

औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप जो अनिवार्य व दूरगामी परिणाम दृष्टिगोचर हो रहे थे रूस में उनको पूरी दृष्टि से महसूस नहीं किये जा रहे थे किन्तु 19 वीं शती के प्रारम्भ से कुछ ऐसे तत्व उभर रहे थे जिन्होंने इस औद्योगिक क्रांति की पृष्ठभूमि तैयार की, यह तत्व कौन से थे?

रूस के इतिहासकारों ने निम्नलिखित तत्वों का उल्लेख किया है:-

(1) देश के भीतर पूंजी का एकत्रित होना ।

(2) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में रूस की भागीदारी निरन्तर बढ़ती जा रही थी ।

(3) इसने वाणिज्य व उद्योग को तेज गति प्रदान की ।

(4) इसके प्रभाव के अन्तर्गत रूस की कृषि व्यवस्था जो यद्यपि अर्द्धदास प्रथा पर आधारित थी अपना स्वरूप बदलने लग गई थी । इन तत्वों के कारण कई प्रकार के परिवर्तन आ रहे थे । भूमिपति अब ज्यादा से ज्यादा कृषि उपज करते थे । जिनको बाजार में लाकर बेचा जा सके । दक्षिण के उपजाऊ क्षेत्र से वे अनाज का निर्यात करते थे । उत्तरी रूस की भूमि उपजाऊ नहीं थी । भूमिपति कृषि से हटकर अपने खेतों का उपयोग किसी दूसरे आर्थिक कार्य में करने के इच्छुक थे । अर्थात् वे अर्द्धदासों का उपयोग उन कारखानों में करने लग गये थे जो उनकी भूमि पर थे अथवा वे अर्द्धदासों की मेहनत मजदूरी पर निर्भर करते थे । किन्तु अर्द्धदास प्रथा ने नई परिस्थितियों के अनुकूल अपने आपको ढालने में सफलता प्राप्त नहीं की । समय को देखते हुए अर्द्ध दास प्रथा औद्योगिक विकास और पूंजीवादी कृषि व्यवस्था दोनों के अनुकूल नहीं थी क्योंकि अर्द्धदासों की श्रम उत्पादन शक्ति कम थी । इसको अब बढ़ाया भी नहीं जा सकता था । स्वतंत्र मजदूरों का अभाव औद्योगिक विकास में एक गम्भीर बाधा थी । इस प्रकार अर्द्धदास प्रथा और नवजात रूसी पूंजीवाद के बीच संघर्ष का होना अनिवार्य हो गया था ।

8.4 अलेक्जेण्डर प्रथम (1801-1825)-

उपर्युक्त उदार व रूढ़िवादी शक्तियों के बीच का तनाव अलेक्जेंडर प्रथम के व्यक्तित्व में जितना दिखाई पड़ता है उतना और कहीं नहीं । अलेक्जेन्डर प्रथम उदारवादी विचारों के प्रति सहानुभूति रखता था । किन्तु उस पर व्यक्ति तक शासन की पुरानी परम्परा का प्रभाव बहुत अधिक था । अलेक्जेन्डर कुछ समय तक स्विट्जरलैंड के निवासी ला हार्वे का शिष्य रहा था इसलिए अपने जीवन के प्रारम्भिक काल से ही उदारवादी विचारधारा से कुछ सहानुभूति हो गई थी । परन्तु साथ ही उसे प्रशा के शासकों की भांति सैन्यवाद और शासक के पराधिकार में

गहरी आस्था थी वह अक्सर कहा करता था "स्वायत्त संस्थाओं" के साथ-साथ "कानून और व्यवस्था का अस्तित्व सम्भव है" किन्तु उसके शासन काल में ही गृहनीति और विदेशनीति में अनेक घोर प्रतिक्रियावादी कदम उठाये गये । अत: वास्तविकता यह है कि उदारवाद का अधिक गहरा प्रभाव होते हुए भी प्रशासनिक कार्यो में उदारवाद का कोई स्पष्ट प्रभाव दिखाई नहीं देता। 1801 में युवा अभिजात वर्ग की एक गैर सरकारी समीक्षा समिति बनाई गई किन्तु तीन वर्ष के भीतर ही इस समिति को समाप्त किया गया । इस समिति की सिफारिशों के आधार पर कुछ महत्वपूर्ण प्रशासनिक सुधार किये गये । जैसे प्रशासकीय परिषदों के स्थान पर सुव्यवस्थित मंत्रालय स्थापित किये गये । सीनेट को सम्राट के किसी भी आदेश को चुनौती देने का अधिकार नहीं दिया गया । चाहे वह आदेश कानून का उल्लंघन ही क्यों न हो । सीनेट के पास जो कुछ थोड़ी बहुत शक्तियां अभी भी बची थी उसे चार्टर ऑफ नोबेलिटि के द्वारा छीन ली गई । इस चार्टर के द्वारा रूस के अभिजात्य वर्ग के विशेषाधिकार पूर्णतया मान्य ठहराये गये । ये सुधार यह दर्शाते हैं कि एक प्रबुद्ध सम्राट अपनी जनता को हिदायतें भी दे रहा है किन्तु वास्तव में राज के कठोर और अत्यन्त विस्तृत अधिकारों में किसी प्रकार की कमी भी नहीं की गई । जार को अपने इस काम में उसके सबसे विश्वास प्राप्त मंत्री स्पैरेन्सकी की सहायता मिली । स्पैरेन्सकी अलेक्जेन्डर प्रथम के समान सुधारों के साथ-साथ पूरी सर्तकता बरतता था । उसने रूस को कानून सम्मत प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित करने का एक प्रभावपूर्ण प्रयल किया किन्तु राजतन्त्र के सिद्धान्त को पूर्णरूप से कायम रखा । उनकी यह मान्यता थी कि शक्तियों का विभाजन करके वह ऐसा करने में सफल होगा । उदाहरण स्वरूप स्पैरेन्सकी केवल सम्पन्न व्यक्तियों को मताधिकार देकर विधानसभा बनाना चाहता था इससे अधिकांश जनता मताधिकार से वंचित रह जाती । जार ने इस सुझाव को भी स्वीकार नहीं किया । इस पर स्पैरेन्सकी ने एक राज्य परिषद बनाई इसके निर्णय को कार्यान्वित करना सम्राट के लिए अनिवार्य न थ । यह एक महत्वपूर्ण प्रयत्न किया किन्तु राजतन्त्र के सिद्धांत को पूर्णरूप से कायम रखा । उसकी यह मान्यता थी कि शक्तियों का विभाजन करके वह ऐसा करने में सफल होगा । उदाहरण स्वरूप स्पैरेन्स की केवल सम्पन्न व्यक्तियों को मताधिकार देकर विधानसभा बनाना चाहता था इससे अधिकांश जनता मताधिकार से वंचित रह जाती । जार ने इस सुझाव को भी स्वीकार नहीं किया । इस पर स्पैन्सरी ने एक राज्य परिषद बनाई इसके निर्णय को कार्यान्वित करना सम्राट के ।लिए अनिवार्य न था । यह एक महत्वपूर्ण कदम था । पहले केवल जार के आदेशों का पालन किया जाता था अब राज्य परिषद कुछ समस्याओं पर विचार करके अपना निर्णय देती थी ।

अपने राज्यकाल के अन्तिम वर्षो में अलेक्जेन्डर पर क्रांति का भय बुरी तरह से हावी हो गया था इसलिए वह अत्यधिक प्रतिक्रियावादी हो गया था । इस समय लोकमत पोलैण्ड में उनको दिये गये संविधान से असंतुष्ट या वहां पर अनेक गुप्त समितियां बन गई थी और गुप्त प्रेस उग्र विचारधारा का प्रचार कर रहा था इसलिए जार ने पहले तो समाचार पत्रों पर, बाद में पत्रिकाओं पर सेंसरशिप लगा दी और इसके पश्चात् सभी प्रकाशनों पर सेंसरशिप लगा दी । आर्थिक क्षेत्र में अलेक्जेन्डर की औद्योगिक नीति विदेशी प्रतियोगिता और युद्ध की आवश्यकताओं और पश्चिमी योरोप की आर्थिक सिद्धान्तों के प्रभावों का परिणाम और साथ ही

साथ समाज के वर्गो के परस्पर विरोधी हितों को सामने रखकर बनाई गई थी । टैरिफ कानून जो सिद्धान्त रूप से संरक्षात्मक थे उद्योगों को संरक्षण न दे सके । इस नीति के फलस्वरूप चीन और प्रशा में रूस की वस्तुओं की बिक्री के लिए बाजार मिलने की आशा हो गई । सुदूरपूर्व और पश्चिमी एशिया के साथ रूस के व्यापार को प्रोत्साहन अवश्य मिला ।

8.4.1 कृषिदासों की दशा सुधारने का प्रयास:-

अक्टूबर 1820 में जो विद्रोह हुआ उससे जार को भय हो गया कि देश में कहीं राजद्रोह था अराजकता न फैल जाए । इसलिए उसने अभिजातवर्ग के कुछ लोगों के उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया जिसमें उन्होंने कृषिदासों की दशा सुधारने व धीरे-धीरे उन्हें दासता से मुक्त कराने व एक समाज बनाने का प्रस्ताव था इसके बाद उसने न चाहते हुए भी कृषि दासों की दशा सुधारने के लिए कुछ उपाय किये ।

इन उपायों से कृषि दासों को लाभ की अपेक्षा हानि अधिक हुई । 28 मई 1801 को एक आदेश जारी किया गया जिसके अनुसार जमीन के बिना किसी दास को बेचे जाने का विज्ञापन देना अवैधानिक घोषित किया गया । कृषि दास बेचने वालों ने विज्ञापन में बेचने के स्थान पर "किराये पर देना" लिखकर आसानी से इस आदेश का उल्लंघन कर दिया ।

8.4.2 फिनलैंड का स्वायत्त शासन-

प्रारंभिक तथा मध्य उन्नीसवीं शताब्दी के रूस के इतिहास की एक बड़ी विडंबना यह थी कि स्वयं रूस की जनता को जो सांविधानिक अधिकार प्राप्त न थे वे रूसी साम्राज्य के निकटस्थ दो उपनिवेशों फिनलैंड और पोलैंड को दे दिए गए थे । काफी समय से रूसी साम्राज्य में' फिनलैंड की राजनीतिक स्थिति स्पष्ट न थी इसलिए फिनलैंड के निवासियों की सामाजिक तथा राजनीतिक परम्पराओं के साथ अलेक्जेन्डर से परास्की के प्रभाव में था इसलिए उसने 20 जनवरी 1809 को फिनलैंड की निर्वाचित डायट (संसद) बुलाने का आदेश दे दिया परंतु इस आदेश से कोई भी व्यक्ति प्रसन्न न हुआ । अंतत:, फिनलैंड की कार्यकारी परिषद् और बाद में उसका स्थान लेने वाली संस्था फिनलैंड की सीनेट दोनों ही को कोई कानून न बनाने के लिए बाध्य होना पड़ा । उस समय डायट को भर्ग कर दिया गया । बाद में 1863 में उसे फिर बुलाया गया । इसके छह वर्ष बाद 1869 में इस संस्था का पुनर्गठन करके इसे विधानसभा बना दिया गया जिसे व्यापक अधिकार प्रदान किए गए । इस बीच, अलेक्जेन्डर प्रथम और निकोलस प्रथम ने भी रूस के अन्य प्रदेशों की भांति फिनलैंड के लिए भी कानून बनाए । तथापि यह मानना पड़ेगा कि अलेक्जेन्डर ने कुछ आदेशों में स्वायत्ता का अतिक्रमण अवश्य किया था पर अपने राज्यकाल में उसने फिनलैंड को जितनी स्वायत्तता प्रदान की उतनी स्वायत्ता पोलैंड को छोड़कर रूसी साम्राज्य के अन्य किसी प्रदेश को प्राप्त न थी

8.4.3 प्रतिक्रियावादी अलेक्जेंडर-

इस काल में सांविधानिक प्रयोग बहुत कम किए गए- यह बात अप्रत्याशित नहीं है । अपने राज्यकाल के अंतिम वर्षो में अलेक्जेंडर पर क्रांति का भय बुरी तरह से हावी जो गया था

इसलिए वह अधिकाधिक प्रतिक्रियावादी हो गया । इस समय लोकमत पोलैंड में उस समय के संविधान से असंतुष्ट था और उसमें प्रगति की मांग कर रहा था । पोलैंड में अनेक गुप्त समितियां बन गई थी और गुप्त प्रेस उग्र विचाराधारा का प्रचार कर रहा था । इसी कारण सेंट पीटर्सबर्ग को अत्याधिक चिंता हो गई थी । अंतत: जार से पहले तो समाचार-पत्रों पर और बाद में मई 1819 में पत्रिकाओं पर सेंसरशिप लगा दी और जुलाई 1819 में पोलैंड में अभिजात वर्ग में से बड़ी संख्या में गिरफ्तारियां की गई और 1825 तक डायट की गतिविधियों पर पूर्ण नियंत्रण लगा दिया गया ।

8.4.4 निष्कर्ष:-

जार के उपाय इस नीति के परिणाम थे जिसमें वह किसानों को रियासतें देना चाहता था किन्तु साथ ही यह भी चाहता था कि उनका हौंसला इतना न बढ़ जाए कि वे विद्रोह कर दे। इस नीति का परिणाम यह हुआ कि न तो किसी रूसी कुलीन वर्ग के उदार वर्ग की सहानुभूति प्राप्त हुई अनुदार दल जार द्वारा किये जाने वाले सुधारों से अप्रसन्न था । अनुदार दल उसके परिवर्तनशील विचारों तथा प्राचीन विशेषाधिकारों को समाप्त करने के प्रयोगों से अप्रसन्न था । परिणाम यह निकला कि रूस के इतिहास में पहली बार सम्राट व कुलीन वर्ग के एक भाग के बीच ऐसा संघर्ष प्रारंभ हो गया जो केवल निजी स्वार्थों के लिए नया इस संघर्ष की पृष्ठभूमि में कुछ महत्वपूर्ण राजनैतिक और सामाजिक समस्याएं भी इसके अतिरिक्त रूस में बहुत से लोगों को यह दिखाई देने लगा कि साम्राज्य कुछ निरंकुश व कुछ संवैधानिक ज्यादा समय तक चल नहीं सकता जार को भी इस विरोधसाभास की जानकारी थी ।

8.5 निकोलस प्रथम (1825-1855)

दिसम्बर 1825 का विद्रोह:- अलेक्जेन्डर की मृत्यु के समय उसका भाई कान्सटेन्टाइन वारसा में था और निकोलस सेंट पीटरस वर्ग में था कान्सटेनटाइन ने एक ऐसी नारी से विवाह किया था जो शाही घराने की नहीं थी और उसने गद्दी अधिकार भी त्याग दिया था । इसलिए उसका छोटा भाई निकोलस अब गद्दी का अधिकारी था । अलेक्जेन्डर ने अपनी वसीयत में निकोलस को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया था दोनों इससे अवगत थे । किन्तु कान्सटेन्टाइन ने इस वसीयत के अनुसार कार्य किया उसने वारसा के सैनिक व नागरिक अधिकारियों को नये शासक के प्रति निष्ठा की शपथ लेने को कहा । दूसरी ओर निकोलस ने, जब उसे सेंट पीटरस बर्ग के सैनिक राज्यपाल के रक्षक दल के अधिकारियों ने उसकी अप्रियता के बारे में सूचित किया, सेंट पीटरर्सबर्ग व वारसा के बीच कोई तार व्यवस्था या रेल मार्ग न होने के कारण डाक के घोड़ों से काम लिया जाता था । अलेक्जेन्डर की मृत्यु का समाचार सेंट पीटरसबर्ग में 8 दिसम्बर 1825 को प्राप्त हुआ। दो सप्ताह पूर्व निकोलस व कान्सटेन्टाइन के बीच पत्र व्यवहार चलता रहा और. कान्सटेन्टाइन के राजसिंहासन प्राप्त करने की अपनी अनिच्छा स्पष्टत: दोहरा दी । विद्रोहियों ने इस संकट को विद्रोह के लिए चुना । इसी कारण विद्रोहियों को दिसम्बरवादी कहा जाता है । विद्रोहियों ने अनेक सैनिकों को यह समझाने में सफलता प्राप्त की जो शपथ उनसे ली जाने वाली थी वह अवैध थी और यह कि उन्हें सम्राट कान्सटेन्टाइन के अधिकारों का समर्थन करना चाहिए और संविधान की मांग करनी चाहिए ।

यह कहा जाता है कि कुछ साधारण सैनिकों ने यह समझा था कि "कांस्टीव्यूशन कास्टेनटाइन की पत्नी का नाम था" और यह नारा लगाया" लोंग' लीव कान्सटेन्टाइन एण्ड दी कांस्टीव्यूशन"

विद्रोहियों ने सीनेट चौक पर कब्जा कर लिया वहां के सैनिक राज्यपाल ने विद्रोहियों से वार्ता करना चाहा तो उसे मार डाला । विद्रोहियों के पास कार्यवाही की कोई योजना नहीं थी । इसलिए उन्होंने नगर के बीच एक चौक का निर्माण करने तक ही अपनी कार्यवाही सीमित रखी। निकोलस शेष निष्ठावान सैनिकों को इकट्ठा करने में और राजधानी में सामूहिक स्थानों में तोपें लगाने में सफल रहा विद्रोहियों के पास तोपखाना न था । जब संध्या तक उन्हें आत्मसम्पर्ण करने को कहा और उन्होंने अस्वीकार कर दिया तो ऊन पर गोले बरसाये गये । चौक टूट गया और भाग गये । विद्रोह को तत्काल रोक दिया गया । दक्षिण रूस में भी एक सैनिक विद्रोह का प्रयास असफल रहा ।

तत्काल गिरफ्तारियां हुई और जांच प्रारम्भ कर दी गई । 120 लोगों पर अभियोग चलाया गया । जिनमें से कई लोग रूस के अभिजात परिवारों के थे । यद्यपि निकोलस ने सजाओं को कम कर दिया तथापि पांच प्रमुख नेताओं को फांसी दे दी गई । जिनमें कर्नल पैस्टेल भी था । 31 लोगों को कठोर परिश्रम का दण्ड देकर साइबेरिया भेज दिया गया । शेष लोगों को साइबेरिया में निर्वासित कर दिया गया था विभिन्न अवधियों के लिए कारागार में भेज दिया गया ।

दिसम्बर की इस घटना को एक उत्तराधिकारी के संकट का रूप माना जाता है । विद्रोह का तात्कालिक' कारण वास्तव में था भी यही । किन्तु प्रश्न यह उठता है कि निकोलस ने अलेक्जेन्डर की मृत्यु के फौरन बाद ही उसकी इच्छा के अनुसार शासन का भार क्यों नहीं सम्भाला । इसके विपरीत उसने कान्सटेन्टाइन के प्रति शपथ दिलाई और अपने सैनिकों को भी ऐसा करने को कहा । इस विद्रोह के दूरगामी कारण पर मार्क रैफ ने अपनी पुस्तक "द डिसेम्बरिस्ट मूवमेंट में प्रकाश डालने की चेष्टा की है । उसका कहना है कि निकोलस ने जान बूझकर शपथ अपने नाम की नहीं दिलवाई कारण उसके कठोर अनुशासन से वह अपने सैनिकों व सैनिक अधिकारियों के बीच घृणा की दृष्टि से देखा जाता था और वे लोग निकोलस को अपना शासक मानने को भी इच्छुक न थे । अगर निकोलस अपने आप को सम्राट घोषित कर देता तो वह एक खुल्लम विद्रोह को आमंत्रित करता ऐसी स्थिति में कान्सटेन्टाइन सेंट पीटरस पर अपनी शक्तिशाली सेना के साथ आता और सत्ता हथिया लेता । इसलिए उसको यह परामर्श दिया गया कि वे सत्ता सम्भालने से पहले कान्सटेन्टाइन इस से सार्वजनिक रूप से सत्ता से अलग होने की घोषणा करवा दे । इस कारण थोड़ा सा अन्तराल आ सकता था और वह अन्तराल आया भी क्योंकि कान्सटेन्टाइन ने निकोलस की इच्छानुसार कार्य करने से इन्कार कर दिया । यह संकट गहरा हुआ और इसी के परिणाम स्वरूप विद्रोह हुआ ।

8.5.1 दिसम्बर विद्रोह के दूरगामी कारण-

रूस में योरोप की भांति गुप्त समितियां स्थापित हो चुकी थी और इन समितियों के बारे में निकोलस को जानकारी थी और वह यह भी जानता था कि ये समितियां रूस में क्रांतिकारी परिवर्तन चाहती है इसलिए वह उनकी विरोध के कारण सत्ता प्राप्त करने से हिचकिचा रहा था ।

फ्रांसीसी क्रांति और नेपोलियन के युद्धों ने योरोप में राजनैतिक चिन्तन को सक्रिय बना दिया था । इसका प्रतिबिम्ब हमें उन गुप्त अथवा अर्द्ध गुप्त देश भक्त और राजनैतिक समितियों से होता है । रूस इस क्षेत्र में अपवाद नहीं था । 1815 के बाद बहुत से अधिकारियों ने गुप्त समितियां स्थापित कर ली थी जो देश के सामाजिक और राजनैतिक विकास के लिए समर्पित - थी । इन गुप्त समितियों में से तीन ने प्रत्यक्ष रूप से 1825 की दिसम्बर क्रांति में भाग लिया था । सेंट पीटर्स बर्ग व मास्कों में उलरी समितियां नौजवान शिक्षित लोगों के आकर्षण का केन्द्र थी और वे वर्तमान परिस्थितियों से असंतुष्ट थे । वे परिवर्तन के साधनों की खोज कर रहे थे । ये उत्तर समितियों के सदस्य मुख्य तौर से इस बात पर चर्चा करते थे कि क्या योजनाएं बनाई जाए क्या तकनीकी बनाने में तो उनको कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली और न तकनीक अपनाई जाए नए सदस्यों को कैसे शामिल किया जाए । नये सदस्यों को बनाने में तो उनको कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली और न तकनीक के बारे में पूरा समझौता था उनका मुख्य उद्देश्य व्यक्तिगत सुरक्षा और सभी भागों में वे पूर्ण सुधार चाहते थे। विशेषकर न्याय विभाग में और किसानों की दशा भी सुधारने के इत्सुक थे । उनको कान्सटेन्टाइन के गद्दी त्याग देने के बारे में जानकारी थी और वे यह चाहते थे कि सीनेट को मजबूर किया जाए कि वह एक आन्तरिक प्रशासन को स्थापित करे जिसमें उस समय के जाने माने सम्मानित व्यक्तियों को शामिल किया जाए । उन्होंने घोषणा पत्र का मसौदा भी तैयार कर लिया था । किन्तु अंतिम समय में उनका नेता ट्राबेटस कोई (Trubet Skoi) जिसको वे अल्पकालीन तानाशाह बनाना चाहते थे संतुलन खो बैठा ।

यूक्रेन में विद्रोह का काम दक्षिणी समितियों ने किया जिनके अधिकांश सदस्य स्लाव जाति के थे । इस क्रांति का नेता कर्नल पेस्टल था जो राजनीतिक सूझबूझ भी रखता था एक अच्छा संगठन-कर्ता था और उसका व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली था । वह फ्रांस के जैकोविन की विचारधारा से काफी प्रभावित था ।

दक्षिण की गुप्त समितियों में अधिकांश स्लाव थे इसलिए उनकी राष्ट्रीयता और देश प्रेम में अखिल स्लाव भावनाएं बहुत ज्यादा थी । इसलिए जहां वे रहते थे अर्थात् युक्रेन में उनकी उन लोगों ने अनदेखी की किन्तु वे लोग किसानों की दुर्दशा के प्रति सद्भावना रखते थे ।

दिसम्बर क्रांति के समर्थक रूस का राजनैतिक पुर्नगठन चाहते थे । इस प्रकार के पुनर्गठन में वे निरंकुशवाद के सबसे बुरे प्रभाव को समाप्त करना चाहते थे । प्रशासन में सुधार चाहते थे और ऐसा करके वे शिक्षित नागरिकों को (मुख्यत: बुद्धिजीवी, अभिजात्यवर्ग तथा अधिकारियों को व्यक्तिगत सुरक्षा और उनका कार्य क्षेत्र बढ़ाने के इच्छुक थे । यद्‌यपि वे अर्द्धदास प्रथा की ओर उसके आर्थिक व सामाजिक प्रभाव की कठोरता से निन्दा करते थे । किन्तु इस प्रथा को समाप्त करने की व्यवहारिक योजना पर अधिक ध्यान नहीं दिया इसके उद्‌वार के लिये वह प्रकृतिवादी, (Physiocrat) के अनुरूप ही सोचते थे । पेस्टील ही ऐसा व्यक्ति था जिसने स्वामित्व का अधिकार समाज के पास रखने का आह्‌वान किया था । जिससे कि किसान को न्यूनतम आर्थिक सुरक्षा प्राप्त हो जाए 'और वे भूमिहीन कृषक न रह जाए ।

उत्तर व दक्षिण की गुप्त समितियाँ वस्तुत: यूनियन ऑफ वेलफेयर (परोपकारी) की शाखाएं थीं जो 1818 व 1821 में बहुत सक्रिय रही थी और यूनियन ऑफ वेलफेयर यूनियन

ऑफ साल्वेशन की शाखा थी जो 1816 से 1818 तक गतिशील थी । इन दोनों यूनियनों को अधिकारियों ने और राजधानी के शिक्षित लोगों ने संगठित किया था । और ये यूनियनें जर्मनी के देशभक्त समितियों की नकल थी इन यूनियनों के दो मुख्य उद्देश्य थे:-

(I) नैतिक और अध्यात्मिक विकास (बुद्धिजीवियों का)

(II) रूसी समाज के नेताओं को रूस के सामाजिक, राजनैतिक सुधार के लिए तैयार करना । चूंकी यूनियनों का लक्ष्य सीमित था । इसलिए ये विघटित हो गई और इसका स्थान उत्तरी व दक्षिणी गुप्त समिति ने ले लिया था ।

1820 में जो रूस की स्थिति थी उससे कहीं ज्यादा खराब स्थिति रूस में एक दो दशक पहले थी । तो फिर क्या कारण है कि दिसंबर क्रांति के सदस्यों ने अपने पूर्वजों की तुलना में अपने आपको क्यों ज्यादा पीडित पाया । इसका मुख्य कारण यह है कि वह पीढ़ी जो नेपोलियन के आक्रमण के समय थी उसकी बहुत ज्यादा आवश्यकताएं थी और वे परिवक्व हो गये थे । यह निराशावादिता थी कि जिसने दिसम्बर क्रांति के लोगों को कुछ करने को बाध्य किया । 1815 के बाद भी बुद्धिजीवियों की निराशा गम्भीर नहीं हुई थी जिससे इस प्रकार का निष्कर्ष निकाला जा सकता था कि युद्ध के बाद वे मूलभूत सुधारों के प्रति वचनबद्ध है । योरोप के जो क्षेत्र नेपोलियन की दासता से मुक्त होंगे उन्हें संविधान प्रदान करने का वादा किया गया था । नेपोलियन के पतन के बाद फ्रांस में और जर्मनी के बहुत से राज्यों में संवैधानिक राजतन्त्र स्थापित किये गये यहां तक कि पोलैण्ड में जो रूस के साथ व्यक्तिगत रूप से मिला हुआ था उसे भी संविधान प्रदान कर दिया गया लेकिन रूस के साथ कुछ नहीं किया इसलिए निराशा व रोष उन लोगों में ज्यादा था जिन्होंने अपने जीवन को जोखिम में डालकर दूसरे राष्ट्रों को संवैधानिक शासन का लाभ उठाने में सहायता प्रदान की । नेपोलियन को पराजित करने में रूस ने शानदार भूमिका निभाई और यह माना जाता था कि रूस की इस भूमिका को मान्यता दी जाएगी । इसके विपरीत अलेक्जेन्डर प्रथम ने 'रूस के राष्ट्रीय हितों को मैटरनीक की प्रतिक्रियावादी नीति के आगे समर्पित कर दिये । दिसम्बर क्रांति में भाग लेने वालों ने इसे बड़े दुःख से देखा कि युद्ध के समय जो राष्ट्रीय गौरव व प्रतिष्ठा बढ़ी थी उसे गहरा आघात पहुंचा और वे इस परिस्थिति से समझौता नहीं कर सकते थे । अलेक्जेन्डर प्रथम ने भी अपने राष्ट्र के बारे में कुछ अपमानजनक टिप्पणीयां की जिससे दिसम्बर क्रांति में भाग लेने वाले नेताओं का रोष भी बढ़ गया और उनमें अलेक्जेन्डर के प्रति एक प्रकार का फोबिया पैदा हो गया ।

योरोपियन जीवन में राष्ट्रीयता का मुख्य तत्व बनता जा रहा था इसलिए रूस में भी राष्ट्रीय भावनाओं का विकास हो रहा था । विशेषकर उस समय में जब उन्होंने फ्रांसीसी आक्रमणकारियों को सफलता से खदेड - दिया इसलिए रूसी बुद्धिजीवी सार्वजनिक जीवन में उन्हीं परम्पराओं को अपनाने की कोशिश कर रहे थे जो रूस के अपने ऐतिहासिक संस्थाओं प्रतिष्ठिानों व राष्ट्रीय परम्पराओं से जुड़ी हुई हो । पीटर महान् ने रूस में विदेशी नमूने की संस्थाएं स्थापित की थी किन्तु अब समय आ गया था जब वे उन्हें रूसी स्वरूप प्रदान करें । इसका अर्थ यह नहीं कि दिसम्बर के क्रांतिकारी आधुनिकता की भावना को अस्वीकार करते थे बल्कि इसके विपरीत वे यह आशा करते थे कि पीटर महान के उत्तराधिकारी और विशेषकर

अलेक्जेन्डर प्रथम ने पश्चिमी परम्पराओं में जो वास्तव में अच्छा था उसे छोड़ जो खराब था ग्रहण कर लिया ।

रूसी सेना ने युद्ध के समय जो उपलब्धि प्राप्त की थी उसके प्रति शासन को जितना सम्मान दिखाना चाहिए था वह नहीं दिखाया गया । इस विपरीत अलेक्जेन्डर प्रथम विदेशी सैनिक जीवन पद्धति को ज्यादा पसन्द करता था । वे जरूरत से ज्यादा रूसी सेना का परेड ग्राउंड प्रशिक्षण पद्धति पर जोर देते थे और जरा सी अवहेलना करने पर कठोर दण्ड दिया जाता था और ऐसा करते समय सेना की भावनाओं और स्वास्थ्य का भी ध्यान नहीं रखा जाता था इसी कारण यद्‌यपि वह शांतिपूर्ण बना रहा किन्तु अलेक्जेन्डर प्रथम ने अपने सुरक्षा गार्ड के सैनिकों के इस दृष्टिकोण को समझने के बजाय उन लोगों को कठोर यातनाएं दी । पूरी की पूरी रेजीमेंट तोड़ दी गई और उसके अधिकारियों व सैनिकों को दूसरी यूनिट में हाजिर होने को कह दिया । इससे सेना में असंतोष और विद्रोही भावनओं का विकास हुआ । शासक के प्रति जो लगाव था अब वह समाप्त हो गया ।

1815 के बाद मिलिट्री छावनियां स्थापित की गई । जिनमें आधे रंगरूट कृषक दासों से भर्ती किये जाते थे । ये सैनिक छावनियां और बस्तियां कृषकदासों की सहायता से आत्म निर्भर बनाई जाती थी ये सैनिक बस्तियां या तो किसी सैनिक इकाई को किसी भूखण्ड पर बसाकर या राजकीय कृषकों के किसी समुदाय को सैनिक शिविर में परिवर्तित करके स्थापित की जाती थी सैनिक अनुशासन को उत्पादक कार्य से संबद्ध किया जाता था । इस सम्पूर्ण योजना को सैनिक साम्यवाद की दिशा में एक प्रयोग कहा जा सकता है । नई पद्धति से प्रत्याशित लाभ ये थे:-

(I) सेना आर्थिक व विलीय दोनों ही दृष्टियों से आत्म निर्भर हो जाएगी ।

(II) सैनिकों को भूमि दी जाएगी और उन्हें वृद्धावस्था में जीवन निर्वाह का साधन प्राप्त हो जाएगा।

(III)जनसंख्या का अधिकांश भाग या तो कर चुकाने या सेना के लिए रंगरूटों की पूर्ति के लिए उत्तरदायी नहीं होगा ।

व्यवहारिक रूप में सैनिकों व कृषकों ने इस पद्धति का विरोध किया । कई विद्रोह हुए किन्तु उन्हें निर्दयतापूर्वक कुचल दिष्ट - गया तथापि यह पद्धति जारी रखी गई । दिसम्बर के क्रांतिकारियों ने इसका बहुत विरोध किया ।

दिसम्बर के क्रांतिकारी रूस की अर्द्धदास प्रथा को एक सबसे बड़ी सामाजिक समस्या समझते थे और सब इस बात पर सहमत थे कि इसका अन्त होना चाहिए । किन्तु अर्द्धदासों की मुक्ति से संबंधित जो कठिनाईयां है उससे भी वे भयभीत थे । और वह यह समझते थे कि इससे वे नये प्रकार की आर्थिक दासता में बंध जाएंगे । क्योंकि ऐसा बाल्टिक प्रान्तों में हो चुका था जहां पर अर्द्धदासों को बगैर भूमि के मुक्त कर दिया गया और वे अपने पुराने स्वामियों पर आश्रित हो गये । इसलिए इनके पास के जो असहनीय अन्याय और सामाजिक संकट था उससे वे अनभिज्ञ नहीं थे । अलेक्जेन्डर प्रथम के शासन में बढ़ते हुए अर्द्धदास विद्रोह इस बात का संकेत कर रहे थे कि इस बिमारी का शीघ्रातिशीघ्र कोई निदान होना चाहिए ।

इसलिए रूस के सामाजिक, आर्थिक, व राजनैतिक पिछड़ेपन के लिए दिसम्बर के क्रांतिकारी एक व्यक्ति की इच्छा व नीति को उतरदायी ठहराते थे और यह था निरंकुश शासन। इसका यह अर्थ नही है कि वे लोग राज्य की अधिग्रहरण की कमी में समर्थक थे बल्कि इसके विपरीत उनकी यह मान्यता थी कि जनता की भलाई और मातृ भूमि की प्रतिष्ठा रूसी राज्य की सत्ता व प्रतिष्ठा के साथ जुड़ी हुई है । वे लोग राष्ट्र से प्रेम करते थे और राज्य का सम्मान करते थे । एक दूसरे का बलिदान देखना पसंद नहीं करते थे क्योंकि स्वतंत्रता के विचार में व्यक्ति की खुशी और साथ ही समाज की खुशहाली का उत्तरदायित्व जुड़ा हुआ था और इस प्रकार वे उस समय की राष्ट्रीयता से काफी प्रभावित थे ।

अधिकांश क्रांतिकारी बहुत नौजवान थे जब वे गुप्त संस्थाओं में शामिल हुए थे तब वे लड़कपन की उम्र से भी नहीं गुजरे थे क्रांति की असफलता के बाद जब उन पर मुकदमा चलाया गया तब भी उस आयु से बाहर नहीं थे । इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं की इस आन्दोलन में कुछ बचकानी घटनाएं हुई जो अच्छी भी थी और बुरी भी । अच्छी इस अर्थ में कि इसने नौजवानों के साहस और अपने आदर्शो के प्रति पूर्णसमर्पित होने की भावनाओं को दर्शाया । बुरी इन अर्थो में कि उन्हें एक उत्तरदायी और व्यवस्थित कार्य पद्धति के अनुभव का अभाव था और जोखम झेलने से पूर्व जो संतुलन और परिस्थिति का परिपक्व मूल्यांकन होना चाहिए उनका उनमें अभाव था ।

8.5.2 क्रांन्ति के विफलता के कारण:-

क्रान्ति की विफलता का सबसे बड़ा कारण यह था कि क्रांन्तिकारियों के कार्य विधि की योजना के विषय में सबके विचार अलग-अलग थे । क्रान्ति किस सीमा तक की जाये इस विषय में भी विचार अलग-अलग थे उस समय कम से कम तीन योजनाएं थी ।

पहली वालिल्कोव केन्द्र का

दूसरी मुरावीण एपोस्टल

तीसरी स्वयं पेरूटल की परन्तु किसी को भी इस बात का निश्चय नहीं था कि घटना किस प्रकार घटेगी । उदाहरण के लिये जार के बाद जो अस्थाई सरकार बने वह कितने समय तक कार्य करे । इस विषय में सहमति नहीं थी और यह भी निश्चय नहीं था कि इस स्थाई सरकार के सभी सदस्य विद्रोही नेताओं में से ही लिये जायेगें ।

योजना व संगठन की ऐसी कमी के कारण विद्रोहियों का सरकार का स्थाई प्रभाव न पड़ा । आशा से बहुत कम सैनिक टुकड़ियों में विद्रोहियों का वास्तव में साथ दिया । राजधानी पर अधिकार होना सन्धिगत था अत: विद्रोहियों में आतंक फैल गया । विद्रोहियों को यह भी निश्चय न था कि उन्हें आगे बढ़ना चाहिए या सैनिक बस्तियों की सहायता की आशा में पीछे हटना चाहिये । साथ ही चूंकि निकोलस को उनकी योजना का ज्ञान था इसलिये विद्रोह को स्थगित करने का विचार छोड़ना पड़ा दिसम्बर 1825 की घटना से स्पष्ट है कि ये विद्रोह बहुत ही अपरिपक्व था । और विद्रोहियों को ठीक से यह पता न था कि उन्हें जनता या सैना का कितना समर्थन मिल पायेगा।

दक्षिण में विद्रोहियों को कुछ ऐसे लोगों ने धोखा दिया जो क्रांतिकारियों के नेता रह चुके थे । जैसे कि आर्डवन बिल और एलैक्जेन्डर, बोसनियक, पैस्टल को तो विद्रोह प्रारम्भ होने

से थोड़े दिन बाद ही बन्दी बना लिया गया, मुराविव एपोस्टल ने वासिकॉफ ने विद्रोह जारी रखा। परन्तु यह कुछ महीनों से अधिक जारी नहीं रह सका । उत्तर व दक्षिण दोनों के विद्रोहियों की असफलता का प्रमुख कारण जनसाधारण से पूर्ण समर्थन न मिलना था । तोबेस्कोई जैसा नेता "जन साधारण द्वारा विद्रोह में भाग लिये जाने को संकटपूर्ण समझते थे । "दक्षिण में मुराविव एपोस्टल ने अभियान की असफलता का प्रमुख कारण था कि स्लैव जाति का पूर्ण समर्थन प्राप्त न कर सका ।"

पहला क्रांन्तिकारी अपनी असफलता के कारण लज्जा महसूस करते थे और उनकी यह मान्यता थी कि उन्होंने एक गलत मार्ग चुना था । उनमें अपराध की भावना नहीं थी क्योंकि वह समझते थे कि उनके उद्देश्य उचित थे । उनमें जो अपराध की भावना थी, वह असफल होने के कारण थी इसलिये उन्हें जो दण्ड मिला था वे उसको अपनी असफलता का कारण समझते थे।

दूसरा कारण यह था कि शिक्षित रूसी समाज भी यह समझता था कि क्रान्तिकारियों ने मूलभूत गलत कार्य नहीं किये यद्यपि वे अपने साधनों में गलती कर गये । सभी बुद्विजीवी रूसी, क्रान्तिकारियों के उद्देश्यों व भावना को समझते थे क्योंकि उनके उद्देश्य व भावनाएं जनता व देश की सेवा के अनुकूल थी, इसलिये वे यह आशा करते थे कि क्रान्तिकारियों को इस प्रकार माफ कर देना चाहिये किन्तु न्यायमूर्तियों को इस प्रकार माफ कर देना चाहिये किन्तु न्यायमूर्तियों ने उनकी इस भावनाओं का ध्यान नहीं रखा । अभिजात वर्ग भी जार की निरंकुशता से अपमानित महसूस कर रहा था क्योंकि उनको राज्य की नीति निर्धारण में किसी प्रकार की वास्तविक भागीदारी में उनकी कोई भूमिका नहीं थी वे निरंकुश राजतंत्र से अलग थलग होने का अनुभव कर रहे थे जिसको उन्होंने स्वयं बनाया था और जो अब उनके विश्वासों के अनुसार नौकरशाही के प्रभाव में चला गया था । समाज की ओर से इस प्रकार के दृष्टिकोण ने क्रान्तिकारियों को जेल खानों व उनके निर्वासित स्थानों पर राहत पहुंचाई । और उनका यह विश्वास दृढ़' हो गया उनके जिन पांच साथियों को फांसी की सजा दी गई है वे वास्तव में शहीद है और अब ये उनका कर्तव्य है कि वे उनके कार्य को पूरा करें । दूसरी तरफ उन कान्तिकारियों को दिया जाने वाला कठोर दण्ड, यातनाएं, निर्वासित जीवने यह बताता है कि प्रशासन उनको एक गम्भीर खतरा समझता था । साईबेरिया में हथकड़ियों व बेड़ियों के साथ जीवन व्यतीत करते हुऐ क्रांन्तिकारियों ने उस ज्योति को जीवित रखा है जो उन्होंने जनता की स्वतंत्रता के लिये रोशन की थी और वास्तव में साईबेरिया में उन लोगों के कारण शिक्षा का काफी विस्तार हुआ ।

इस क्रान्ति का निकोलस पर बुरा प्रभाव पड़ा क्योंकि वह अनुदार स्वभाव का व्यक्ति था । सरकारी अधिकारियों द्वारा जो यातनाएं दी गई उससे जनता में ये भावना घर कर गई कि ये जानबूझकर जर्मन सेनापति और कूटनीतिज्ञ जो रूसियों के स्थान पर स्वयं सरकार के अधिक निकट आने का प्रयास कर रहे थे ।

8.5.4 निकोलस का चरित्र

निकोलस बड़ा विचित्र था, स्वभाव से वह सैनिक था उसकी नीतियों की आलोचना को अवज्ञा, समझता था जो लोग स्वशासन की मांग करते थे । उनकी इस मांग को सैनिक विदोह समझता था । उसकी विचारधारा की अभिव्यक्ति इस बात से ही होती है जिसको सरकारी राष्ट्रीयता कहा जाता है औपचारिक रूप से इसकी घोषणा उसके शिक्षा मंत्री ने 1833 में की थी। सरकारी राष्ट्रीयता के तीन सिद्धान्त थे-

1. रूढ़िवादिता
2. निरंकुशता और
3. राष्ट्रीयता

1. रूढ़िवादिता का तात्पर्य था कि सरकारी चर्च से और रूस में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका, से

2. निरंकुशता का अर्थ था सम्राट का निरंकुश सत्ता में विश्वास करना व उसको बनाये रखना जो रूसी राज्य के लिये अनिवार्य तत्व माना जाता था ।

3. राष्ट्रीयता का अर्थ था रूसी जनता द्वारा रूसी जार व उसके वंश व शासन को अपना शक्तिशाली समर्थन प्रदान करना । संक्षिप्त में निकोलस प्रथम वर्तमान स्थिति को अपने देश में बनाये रखना चाहता था विशेषत: अपने निरंकुशता का कट्टर समर्थक था इसलिए उसने जो उपाय किये उसको सामूहिक रूप से एक नाम से पुकारा जाता है जिसको निकोलस पद्धति कहते हैं । इस पद्धति की निम्नलिखित विशेषताएं थी ।

8.5.5 निकोलस पद्धति-

निकोलस का आदर्श था कि अपने राज्य में ऐसी पूर्ण सैनिक व्यवस्था की जाये जिसमें प्रत्येक अधिकारी अपने से उच्च पदाधिकारी के आदेशों का पालन करे । निकोलस प्रशा की प्रशासनिक व्यवस्था की बहुत प्रशंसा करता था उसकी आस्था थी कि कानून का स्त्रोत स्वयं सम्राट होता है और वास्तव में प्रशासन का अध्यक्ष होता है । और वह यह समझता था कि जो भी सुधार हो वे सम्राट स्वयं करे, दिसम्बर क्रान्ति के बाद जनता की कटु आलोचना और क्रांन्तिकारी अशांति का भय उसके हृदय में सदा ही बना रहा इसलिये जो भी कदम उसने उठाये उनका उद्देश्य ऐसी ही विपत्तियों से बचने के लिये अपने राज्य को शक्तिशाली बनाना था । सभी उदारवादी विचारधाराओं को समाप्त करने के लिये रूस को पूर्णत: बन्द कर दिया गया । विदेशी पुस्तकों और विदेशी यात्रियों की काफी छानबीन की जाती थी जिन किताबों पर प्रतिबन्ध लगा दिया था उनको पढ़ने पर तत्काल दण्ड दे दिया जाता था । सरकारी पाठ्यक्रम की पुस्तकों में ऐसे विषय जोड़े गये जिसमें निरंकुश शासन की प्रशंसा की जाये, और उदारविचारधारा के विचारों और आंदोलनों की निन्दा हो । कक्षाओं में भी गुप्तचर होते थे जो अध्यापक व विद्यार्थियों पर निगरानी रखते थे । इस प्रकार विदेशी विचारों का रूस में आना बिल्कुल बन्द हो गया था । धार्मिक अत्याचार भी प्रारम्भ हो गये थे । चर्च व स्टेट को एक माना जाता था । धर्म परिवर्तन करने के प्रयासों पर दण्ड दिये जाते थे और बार-बार ऐसा करने पर साइबेरिया में

निष्कासित कर दिया जाता था । कैथोलिक व यहूदइयों पर अत्याचार किये जाते थे । इसके पीछे जार के मन में एक विश्वास काम कर रहा था और वह यह था उसकी निरंकुशता का सिद्धान्त पवित्र है इसलिये कांति चाहे देश में हो या विदेश में उसे संघर्ष करना उसके धर्मयुद्ध था । 1825 की क्रांति और 1830 व 1848 की योरोपियन क्रान्तियों ने उसके इस विश्वास को और भी दृढ़ बना दिया था ।

इन सबके बावजूद निकोलस को इस बात का भी अनुभव था कि रूसी जीवन में कुछ मूलभूत बुराइयां है और वह इनको दूर भी करना चाहता था । किन्तु उसकी एक भूल यह थी कि बुराइयों को दूर भी करना चाहता था साथ ही वर्तमान व्यवस्था को यथावत बनायें रखना भी चाहता था ।

अर्द्धदास प्रथा के बारे में उसकी धारणा थी कि कृषिदास (अर्द्धदास) प्रथा एक बुराई है जिसे दूर करना आवश्यक है परन्तु जार का विचार था कि इन अर्द्धदासों को स्वतंत्रता देने के लिये यह समय उपयुक्त नहीं है । अपने स्वभाव के अनुरूप वह नौकरशाही की समितियों पर बहुत विश्वास करता था इस प्रकार की समितियों ने 20 वर्ष तक इस समस्या का हल निकालने के लिये कठिन परिश्रम किया । किन्तु उनके परिश्रम का स्पष्ट परिणाम नहीं निकला । निकोलस के शासन के 30 वर्षो में अर्द्धदासों के 556 गम्भीर विद्रोह हुऐ । इसलिये प्रशासन अर्द्धदासों की मुक्ति पर विचार करने लगा । परन्तु उनकी मुक्ति के साथ साथ भूमि की समस्या का समाधान भी करना चाहता था शुमइ की समस्या अभिजात वर्ग से जुड़ी हुई थी । अभिजात वर्ग इसको अपने हितों पर आक्रमण समझता था ।

8.5.6 कीमिया का युद्ध व उसके परिणाम (1855-56)

कीमिया के युद्ध में रूस की हार हुई इस हार में रूसी सेना की शक्ति के भ्रम को तोड़ दिया । इसने रूसी सेना व राजनैतिक प्रतिष्ठा को गम्भीर आघात पहुंचा इसमें रूसी जीवन की बुराइयों को प्रकट कर दिया रूसी आर्थिक पिछड़ापन, नौकरशाही की अयोग्यता और सरकारी अधिकारियों की बेईमानी लोगों के सामने प्रकट हो गई । अब इस प्रकार निकोलस प्राशासन विफल हुआ । बड़े निराशा के वातावरण में निकोलस की मृत्यु हुई । और अपने पुत्र व उत्तरासधिकारियों के लिये एक कमजोर दुःखदायी राज्य छोड़ा ।

8.6 एलैक्जेन्डर द्वितीय- 1855 से 1881

37 वर्ष की आयु में एलैक्जेन्डर द्वितीय सम्राट बना था । उसको अपेक्षाकृत अच्छी शिक्षा मिली थी । उसके अध्यापक का उस पर काफी प्रभाव था । और उसने मानवीय भावनाएं अपने अध्यापक से ली थी और वह अपने कठोर ह्रदयवाले पिता का आज्ञाकारी पुत्र था किन्तु सम्राट बनने से पूर्व उसने उदार विचारधाराओं के प्रति कोई रूचि नहीं दिखाई थी । इसलिये स्वभाव से सुधारक नहीं था । मूलभूत रूप से वह रूढ़िवादी था, और जीवन भर उसका यह दृष्टिकोण बना रहा, वह कोई एक योग्य व्यक्ति भी नहीं था और ना कोई महान कूटनीतिज्ञ किन्तु अपने परामर्श दाताओं के परामर्श को वह अवश्य स्वीकार करता था परिस्थितियों से विवश होकर उसने अपने मूलभूत सुधार किये । जो रूस के इतिहास में अद्धितीय थे। यद्यपि सुधार महत्वपूर्ण थे किन्तु वह रूस की समस्त बुराईयों को दूर करने में असफल रहे । वस्तुतः

उसके सुधारों ने कई समस्याएं उत्पन्न की । इसके परिणाम-स्वरूप मुक्तिदाता जार कहलाने वाले की हत्या कर दी गई । इसका कारण यह था कि कुछ सुधार जो प्रारम्भ में किये गये । वे स्वार्थी तत्वों से समझौता करके किये गये । दूसरे सुधारों को तोड़ा मरोड़ा उनकी घोर निन्दा की गई और उनकी बुद्धिमता को चुनौती दी गई उसके सुधारों का सही मूल्यांकन का तरीका यह है कि उनको पुरानी व्यवस्था से परखना चाहिये । ऐसा करने पर वह समय की परीक्षा में पूरे उतरते हैं रूस के इतिहास को हमें दो भागों में विभाजित करना चाहिये-

1. सुधार से पहले का युग

2. सुधार के बाद का युग, इसलिये शैपरों इतिहासकार ने ठीक कहा है कि एलैक्जेन्डर द्वितीय ने क्रान्ति व प्रतिक्रिया के बीच का रास्ता अपनाया उसने अपने युग की भावनाओं के आधार पर शासन करने का निर्णय लिया न कि अपने पिता की भावना के आधार पर । वह समय की पुकार को समझता था वह एक साहसी व्यक्ति था उसने राज्य के हितों को प्राथमिकता दी और अपनी व्यक्तिगत भावनाओं कों दबाया इसलिये इसका शासनकाल सुधार व प्रगति का युग माना जाता है ।उसके शासन का महत्वपूर्ण कार्य था अर्द्धदासों को मुक्त करना ।

8.6.1 अर्द्धदासों की मुक्ति-

1859 में 2, 30, 000 अर्द्धदास भूमिपतियों की भूमि पर काम करते थे । और शेष चर्च, राजा और शाही परिवार की भूमि पर कार्य करते थे ।

17 वीं शताब्दी में सैनिक अधिकांशत: अपने आपको शासन का अभिकर्ता समझता था। 18 वीं शताब्दी में अभिजात भू-स्वामी अपने आपको मूलत: शासन के आर्थिक व वित्तीय अभिकर्ता मानते थे । वे प्रशासनिक उत्तरदायित्व भी वहन करते थे, 19 वीं शताब्दी के आरम्भ के एक प्रशासकीय कर्मचारी के शब्दों में प्रत्येक भू-स्वामी "निःशुल्क पुलिस था" । विशेषत: भू-स्वामी सेना के लिये अपनी सम्पदाओं से रंगरूटों की पूर्ति के लिये उत्तरदायी थे । ये कार्य सन् 1700 में कृषकों पर भू-स्वामियों की सत्ता का वृद्धि के प्रति शासन के प्रोत्साहन का प्रर्याप्त स्पष्टीकरण प्रस्तुत करता है। 18 वीं शताब्दी के कृषक दास प्रथा 17 वीं शताब्दी की प्रथा से पूर्णत: भिन्न थी । 17 वीं शताब्दी में कृषक को केवल भू-स्वामी की भूमि से सम्बन्ध किया जाता था ना, कि उसके व्यक्तित्व से । कृषकों के प्रति यह नीति राज्य की आवश्यकताओं से प्रेरित थी । पीटर महान ने राज्य के लिये कृषक दास प्रथा के महत्व पर जोर दिया था । किन्तु उसके राज्य काल में प्रारम्भ होकर कृषक दास प्रथा शीघ्र ही दासता में परिणित हो गई । कृषक भूमि से ही नहीं बल्कि भू-स्वामी से जुड़ गये । इसका एक कारण था । कृषक दासों और दासों का एक ही सामाजिक वर्ग में विलय, रूस के राज्य में कृषक दास भी थे और दास भी । दासों को कोई वैधानिक मान्यता नहीं थी और उन्हें व्यक्ति न माना जाकर चल सम्पति माना जाता था । विलीय नीति को ध्यान में रखते हुये पीटर ने आदेश दिया कि व्यक्ति कर का निर्धारण करते समय दासों की गणना, कृषक दासों के साथ की जाये । वैधानिक दृष्टि से अब दास प्रथा समाप्त हो चुकी थी । यद्यपि वास्तव में कृषक दासों जैसा ही व्यवहार किया जाता था । स्वामी दोनों के लिये ही कर चुकाते थे । इस प्रकार प्रारम्भ में व्यवहारत: और बाद में

विधित: उन्होंने दोनों समूहों पर पूर्ण सस्ता प्राप्त कर ली । 18 वीं शताब्दी के मध्य में अभिजातों को अपने कृषक दासों को दण्डित करने व साईबेरिया में निर्वासित करने का अधिकार भी प्राप्त हो गया । उन्होंने कृषक दासों को बेचने का अधिकार भी अर्जित कर लिया । अन्तत: 1827 में ऐसी विधि पारित की गई जिसमें कृषक दासों के लिये पर्याप्त भूमि की व्यवस्था करना आवश्यक घोषित कर दिया और 1833 में पारित की गई एक विधि में विक्रय द्वारा परिवारों का विभाजन निषेध घोषित कर दिया गया । यद्यपि इन विधियों से यह स्पष्ट था कि अभिजात वर्ग दण्ड देने की शक्ति का दुरूपयोग न करे । तथापि कृषक दास पूर्णत: निःसहाय थे वे दो समूह में विभाजित थे पहला समूह था घरेलू दासों का, जे स्वामियों के घर पर काम किया करते थे और दूसरा समूह था जो कृषक दासों का घरेलू दासों की स्थिति विशेष थी वे पूर्णत: आरक्षित थे । सामान्यत: कृषक दासों की स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी हुआ करती थी क्योंकि उनके स्वामी कम से कम आर्थिक कारणों से उनका मूल्य समझते थे । किसी सम्पदा की कृषि योग्य भूमि को सामान्यत: दो भागों में अर्थात् स्वामी की व्यक्तिगत खेती व कृषकों के खेतों में विभाजित किया जाता था । विशाल सम्पदाओं में प्रत्येक ग्राम के कृषकों का सामान्यत: एक पृथक समुदाय था । (औबशचिना या मीर) जिसका एक निर्वाचित मुखिया होता था । निर्वाचनों की पुष्टि स्वामी द्वारा की जाती थी । व्यक्तिगत दासों के समस्त कर्तव्य मीर द्वारा आवंटित किये जाते थे । कृषकों का कर्तव्य तो लगान (आबरॉक) चुकाना था जो रूस के उत्तरी प्राप्तों की प्रथा थी । या स्वामी की भूमि पर सप्ताह में कुछ निश्चित दिन सामान्यता तीन दिन कार्य करना था इस प्रकार दासों को तीन भागों में विभाजन किया जाता था । पहला (1) बर्शिना जो अपने स्वामियों के निजी खेतों पर काम करते थे । सप्ताह में अधिक से अधिक 3 दिन उनको अपने स्वामी के खेतों पर कार्य करना पड़ता था (2) ऑबरॉक जो अपने स्वामियों द्वारा निर्धारित निश्चित धन का भुगतान करते थे इसके लिये वे अपने आपको नगर में मजदूर की हैसियत से मजदूरी करते थे और अपने वेतन का कुछ भाग अपने स्वामियों को देते थे । इस प्रथा को स्वामी व अर्द्धदास दोनों ही पसन्द करते थे, स्वामी इसलिये पसंद करते थे कि उनको पैसा मिल जाता था जब उन्हें अर्द्धदासों के श्रम की आवश्यकता नहीं होती थी ।

अर्द्धदास इसलिये पसन्द करते थे कि उनको कुछ हद तक स्वतंत्रता मिल जाती थी (3) Dorovic घरेलू कर्मचारियों को कहते थे हर दृष्टि से दास होते थे चाहे नाम से नहीं, स्वामियों का उन पर व उनके परिवार पर मालिकाना अधिकार होता था और उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाता था जैसा प्राचीन युनान व रोम में किया जाता था ।

8.6.2 अर्द्वासों पर स्वामियों का अधिकार-

अभिजात वर्ग की धनाढ़यता अक्सर इस बात से नापी जाती थी कि उसकी भूमि पर कितनी पुरूष आत्माएं काम करती है नारी आत्माओं की गिनती इसमें नहीं होती थी । स्वामी को यह अधिकर प्राप्त था कि वे उन्हें इच्छा के विपरीत सेवा में भर्ती करा सकते थे । यह एक कठोर स्वामी के हाथ में खतरनाक हथियार था जिसके माध्यम से वह किसी भी अवज्ञाकारी किसान को उसके खेत घर व परिवार से हटा सकता था, अर्द्धदासों को निर्दय तरीके से पीटा जाता था ।

1. स्वामियों के द्वारा जब वे अपना मेहनताना नहीं देते थे ।

2. सरकारी अधिकारियों द्वारा जब वे करों का भुगतान करने में असमर्थ रहते थे।

3. न्यायमूर्तियों द्वारा जब वे अनुशासन में नहीं रहते ।

अर्द्धदासों ने अपने आप में आश्चर्य चकित ढंग से निष्कीय, साहस की भावना विकसित कर दी थी । उनको पीटा जाता था । लगभग वे मृत्यु द्वारा तक पहुंच जाते थे किन्तु वे उस छुपी हुई सम्पति का स्थान नहीं बताते थे जो थोड़ी बहुत उन्होंने बचाकर रखी थी । प्रतिशोध की भावना से अपनी स्वामियों के लिए डकैती, हत्याएं घरों को आग लगाना, यहाँ तक की विद्रोह भी कर देते थे । बहुत से अपने स्वामी के खेतों से भागकर डकैत बन जाते थे या फिर सन्यासी बन जाते थे ।

8.6.3 अर्द्धदास प्रथा का विरोध-

रूसी समाज में इसको महान बुराई समझा जाता था यहां तक की अभिजात वर्ग के लोग उनको मुक्त करने के पक्ष में थे शर्त यह है कि इस मुक्ति से उन्हें हानि नहीं होनी चाहिये, अमेरिका के निग्रो के विपरीत रूस में अर्द्धदास उसी जाति के होते थे जिस जाति का उनका स्वामी है । इसलिये बहुत से देशभक्त व उदारवादी लोग उनकी मुक्ति के पक्ष में थे । बहुत से जमींदारों के पास थोड़ी भूमि होती थी इसलिये वे अपने अर्द्धदास का पेट मुश्किल से ही भर पाते थे । ये भूमि पति बहुत कर्जदार भी हो गये थे और उन्होंने अपनी भूमि को रहन (गिरवी) भी रख दिया था और अगर अर्द्धदासों की मुक्ति सरकार के द्वारा की जाती है जिससे स्वामियों को लाभ हो तो बहुत से स्वामी अपने आप को दीवालापन से बचा सकते थे । अद्धर्ससों ने अनेक विद्रोह किये उनमें से सैकड़ों नहीं हजारों भाग भी गये, कभी-कभी उनको पकड़ने के लिए सेना भी भेजी पड़ी, उनमें ये अफवाह फैली रहती थी कि ओकेशिया में उनको स्वतंत्रता मिल जायेगी उनमें से कुछ लोगों ने क्रीमिया युद्ध के समय सेना में भर्ती होने की चेष्टा भी की । इस आशा से जो पूरी नहीं हो सकी । कि उन्हें संवतन्त्रता मिल जायेगी । उस उदारवादी दिसम्बर विद्रोह में क्रान्तिकारी सभी अर्द्धदास प्रथा समाप्त हुई तो किसी ने भी इस पर दो आंसू नहीं बहाये । निकोलस की मृत्यु के समय उसने अपने पुत्र एलैक्जेन्डर से कहा था कि मैं इस निर्बल देश की बागडोर तुम्हारे हाथों में सौंप रहा हूं । कृषक दास प्रथा पूर्ववर्ती शासन की आधारभूत त्रुटि थी इसलिये ये स्वाभाविक था कि एलैक्जेन्डर द्वितीय के सुधार इस त्रुटि के निकराकरण आरम्भ हो गया । विशेषत: ऐसी स्थिति में उनकी आधार भूमि का निर्माण निकोलस के राज्यकाल में ही हो चुका था ।

जनवरी 1857 में एक गुप्त कृषक सुधार कमेटी का गठन किया गया उसमें अनेक उच्चपदाधिकारी सम्मिलित थे । किन्तु कोई निर्णायक कार्यवाही करने के कारण उसके कार्य की गति अवरूद्ध रही । इसलिये 1857 के शरदऋतु के उपरान्त एलैक्जेन्डर ने एक निर्णायक कदम उठाया और विलनों (Governor General) को 2 दिसम्बर 1857 को प्रस्तावित सुधारों के सम्बन्ध में चर्चा करने के लिये अभिजात वर्ग भी प्रान्तीय समितियों को गठन करने के लिये कहा गया इस कदम के पीछे हटने की कोई सम्भावना नहीं थी । सुधार अपरिहार्य हो गये थे अन्य प्राप्तों के अभिजातों को विवश होकर शासन से निवेदन करना पड़ा कि उन्हें भी वैसी

समितियों का गठन करने का अधिकार दिया जाए । एलैक्जेन्डर ने मास्को के अभिजात वर्ग के सम्मुख जो प्रसिद्ध भाषण दिया था उसमें उसके उद्देश्य स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होते थे । उसने कहा था कि इसकी अपेक्षा कि हम इस बात की प्रतिज्ञा करें कि कृषकदास प्रथा नीचे से समाप्त हो, यह अच्छा होगा कि सुधार ऊपरी स्तर से प्रारम्भ हो ।

सुधार की एक सामान्य योजना बनाने और उसको कार्यान्वियन करने के लिए विस्तृत व्यवस्थाएं निर्धारित करने में 3 वर्ष से अधिक समय लग गया । प्रान्तीय समितियों के कार्यकाल पुनरिक्षत सेन्ट पीटर्सबर्ग मे विशेष आयोगों द्वारा किया । "इन सम्पादक आयोगों" में मुख्य सुधार के पक्षावलम्बियों का समावेश या इसमें प्रस्तावित सुधार से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित मंत्रालयों के शासकीय अधिकारियों और प्रगतिशील सम्पदा स्वामियों में से लिये गये विशेषज्ञों का समावेश था । जेम्स रोस्तोत्वत्सेव अपने मृत्यु पर्यन्त अर्थात् 1860 तक इस आयोग का प्रधान रहा । उसके सदस्यों में से एक था आन्तरिक मामलों का उपमंत्री निकोलस मलियोउतीन।

उदारवादियों और बहुत से भूमिपतियों ने एलेक्जेन्डर का समर्थन किया । कुछ ने विरोध भी किया । जिन लोगों ने विरोध किया । जिन लोगों ने विरोध किया उनको जार ने यह स्पष्ट उत्तर दिया कि अर्द्धदास प्रथा एक निरंकुश सत्ता के द्वारा स्थापित की गई थी । (देखिये चार्टर ऑफ 1785) केवल निरंकुश सत्ता ही इसको नष्ट कर सकती है और ऐसा करने की मेरी इच्छा है । सीमित स्तर पर सदस्यों में बहुत मतभेद था । दक्षिणी और दक्षिणी मध्य रूस के भूमिपति यथा सम्भव अधिक से अधिक भूमि स्वयं के पास रखना चाहते थे और वे क्षतिपूर्ति के रूप में नकदी के स्थान पर भूमि को प्राथमिकता देते थे इसका कारण यह था कि इस क्षेत्र की भूमि बहुत उपजाऊ थी ।

उत्तर और उत्तरकेन्द्र रूस के भूमिपति यह चाहते थे कि ज्यादा से ज्यादा भूमि उनसे ली जा सकती है । वे क्षतिपूर्ति के रूप में अधिक धन की मांग करते थे क्योंकि अर्द्धदास प्रथा की समाप्ति से उनको अर्द्धदासों के श्रम के रूप में काफी नुकसान होने जा रहा था ।

अधिकांश रूसी अभिजात वर्ग अधिकारों की बात करता था । एलैक्जेन्डर ने यह विषय स्वयं के हाथों में ले लिया और अपनी उदार नौकरशाही तथा उदार जनमत के सहयोग से उसने इस संदर्भ में निर्णय लिया । समझौते तक पहुंचने में 3 वर्ष की अवधि लगी थी । समझौते की धारा पर गम्भीर रूप से मतभेद हुआ । किसानों के दृष्टिकोण से इस व्यवस्था के अन्तिम परिणाम पूर्णतया सन्तोषजनक नहीं थे । फिर भी किसान बहुत अधिक लाभ में थे । अगर सारा मामला भूमिपतियों के हाथ में छोड़ दिया होता तो किसानों को इससे बहुत नुकसान होता । एलेक्जेन्डर को अपनी इच्छा क्रियान्वित करने में शाही परिवार के दो सदस्यों से काफी समर्थन मिला यह शाही परिवार के सदस्य थे हेलेन ऑक्रिस्टटाइन तथा कोंस्टेटाइन । सामूहिक रूप से रूढ़िवादियों ने भूमिपतियों के साथ स्वार्थ और हितों की रक्षा की । जबकि उदारवादियों का विश्वास था कि राज्य का हित इस बात की मांग करता है कि इस समस्या पर व्यापक विचार किया जाना चाहिए । राज्य परिषद यद्यपि अर्द्धदासों के मुक्ति के प्रति उदार नहीं थी फिर भी उसने एक अच्छा सुझाव देकर अपना योगदान दिया और वह सुझाव था निर्धनों को आवंटन Pauper allotment अर्थात् एक चौथाई भूमि प्राप्त करने वाले अर्द्धदासों को मिलनी चाहिए और इस भूमि हेतु उन्हें कुछ भी भुगतान नहीं करना पड़ेगा ।

8.6.3.1 मुक्ति की घोषण्णा (आदेश) फरवरी 19 (3 मार्च)

1861 में शाही आदेश के द्वारा अर्द्धदासों को मुक्त कर दिया गया । रूसी कृषकों हेतु यह मैग्नाकार्टा था जिसके द्वारा भूमि पर कार्य करने वाले अर्द्धदासों को मुक्त कर दिया गया जो घरों में कार्य करते थे उन्हें 2 साल बाद मुक्त कर दिया गया ।1866 में मुक्ति का कार्य उस समय पूर्ण हो गया जब शाही अर्द्धदासों को भी मुक्त कर दिया गया।

8.6.3.2 मुक्ति कानून के मुख्य आधार है ।

(1) अर्द्धदासों को तत्काल समस्त नागरिक अधिकार प्राप्त होगे । वे शासन के अधीन होगें ना कि स्वयं के स्वामियों के ।

(2) अर्द्धदास जिन झौपड़ियों में (जिन खेतों के भवनों में) जिन पालतू पशुओं और उपकरणों का अब तक उपयोग करते आये हैं वह उनकी वैधानिक सम्पत्ति मानी जायेगी ।

(3) स्वतंत्र किये हुए अर्द्धदासों को भूमि का आवंटन किया जायेगा जिससे कि उनको जीविका की जमानत मिल सके ।

(4) अर्द्धदासों को बिना भूमि के यदि मुक्ति मिलती तो इससे एक बहुत ही निर्धन कृषक श्रमजीवी वर्ग का जन्म होता जो अपनी जीविका हेतु परिश्रम करते और इस तरह आर्थिक आधार पर अपने पुराने स्वामियों पर ही निर्भर रहते । जार ने इस संदर्भ में कहा था, "बिना भूमि के मुक्ति देने से स्वामी की सत्ता में कमी के बजाय और बढ़ोतरी होगी । भूमिहीन किसान भी इस प्रकार की स्वतंत्रता पर अपनी आपत्ति प्रकट करते क्योंकि पीढ़ियों से जिस भूमि को वो जोतते आये हैं इसके बारे में उनको विश्वास हो चला कि वही वास्तव में उसके स्वामी है । वह अपने स्वामी से कहा करते थे- We are yours but land is ours) हम तुम्हारे हैं किन्तु भूमि हमारी है ।

8.6.3.3 भूमि का विभाजन:-

मुक्ति के साथ साथ वे अर्ध दास जो खेतों में कार्य करते थे उनको भूमि प्रदान की किन्तु घरों पर कार्य करने वाले दासों को यह सुविधा नहीं दी गयी । भूमि संबंधी व्याख्या की धाराएं बहुत ही जटिल थी और वे एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न-भिन्न थी । मोटे तौर से किसानों को मिलने वाली भूमि:-

(1) भूमिका लगभग 1/2 भाग हो तथा वे भी वह भाग जिसको वह अपने लिए जोतते हो ।

(2) दूसरा अर्द्धभाग भूमिपतियों के पास ही रहा ऐसी व्यवस्था क्यों? स्पेयरों ने इस व्यवस्था का उत्तर देने की चेष्टा की उसकी मान्यता है कि शासन को अपने अभिजात्य वर्ग के हितों की किसानों की अपेक्षा अधिक ध्यान था क्योंकि अभिजात्य वर्ग राजकीय स्तम्भ माने जाते थे जो भूमि अभिजात्य वर्ग ने किसानों को दी उसके बदल में अभिजात्य वर्ग को उदार मुआवजा शासन की ओर से मिला अथवा किसानों से यह कहा गया कि उन्हें जो भूमि प्राप्त हो रही है उसके बदले में किसानों को अपने स्वामियों को क्षतिपूर्ति करनी थी किन्तु कुछ ही अर्द्धदास भुगतान करने की स्थिति में थे । इसलिए शासन की ओर से भूमिपतियों को बॉण्ड पत्रों

के माध्यम से भुगतान किया गया । भर्द्धदासों से इसके बदले में कहा गया कि राज को इसका भुगतान 49 वर्षों में किया जाना था । इस प्रकार किसानों को उनकी कीमत पर मुक्ति मिली और मुक्ति हेतु उनको मूल्य चुकाना पड़ा । यह अर्द्धदास अब तक भूमिपतियों के अर्द्धदास थे अब ये राजकीय अर्द्धदास बन गये जिस हेतू उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था । इसके विपरीत वे तो सोचा करते थे कि उनको मुक्ति के साथ साथ निःशुल्क भूमि भी मिलेगी ।

इसके विकल्प के रूप में अर्द्धदास उनको आवंटित की जाने वाली भूमि का 1/4 ले सकते थे जिसको की Pauper allotment कहा गया और उसके बदले में उन्हें कुछ नहीं देना पड़ेगा ।

8.6.3.4 मीर पद्धति

मीर व्यवस्था से यह नहीं समझना चाहिए की अब रूस में बहुत अधिक संख्या में मालिकाना अधिकार रखने वाले किसानों का जन्म हो गया था यूक्रेन और कुछ अन्य स्थानों के अतिरिक्त भूमि व्यक्तिगत रूप से किसानों को नहीं दी गई बल्कि किसानों के समूह को दी गई जिसे रूस में मीर कहा जाता था ।

8.7 निष्कर्ष:-

वस्तुत: मीर भूमि को अपने सदस्यों में विभाजित करता था और वह उनकी ओर से करों का भुगतान करने का उत्तरदायी होता था तथा वह सेना में रंगरूट भर्ती हेतु और शासन के अन्य शासनकार्यों हेतु भी उत्तरदायी होता था । यह रूस में कोई नयी व्यवस्था नहीं थी, वह पश्चिमी यूरोप की ग्रामीण सभा का एक अन्य रूप था इस सभा में गांव के भिन्न-भिन्न परिवारों के मुखिया सम्मिलित होते थे जो अपने वरिष्ठ सदस्यों का चुनाव करते थे और चुने हुए सदस्य गांव का प्रतिनिधित्व करते थे और करों के भुगतान में वे शासन के प्रति उत्तरदायी होते थे । मीर इस बात का जिश्चय लेते थे कि कब खेतों को जोता जाए, कब बीज बोए जाए और कब फसलों को काटा जाए । उनकी अनुमति के बिना कोई भी गांव नहीं छोड़ सकता था । और यदि वह ऐसा करता तो उ:सकी भूमि जप्त कर ली जाती थी इस प्रकार अर्द्धदास मुक्ति प्राप्ति के बाद भी मीर के अर्द्धदास बने रह गए सलाव दार्शनिक कहा जाता है । इन दार्शनिकों के अनुसार स्वतंत्रता प्राप्त किसान अपने आपको जीवित नहीं रख सकते थे । किन्तु मीर पद्धति ने उनको सुरक्षा प्रदान की ।

मुक्ति की घोषणा की महत्व:-

1. यह एक महान सुधार था किन्तु महानतम कार्य नहीं जैसा कि अमेरिकन इतिहासकार अतिश्योक्तिपूर्ण इसे बताते हैं ।

2. प्रत्यक्ष रूप से इस घोषणा ने 52 मिलियन कृषकों को प्रभावित किया ।

3. यह एक शान्तिमय प्रक्रिया थी ।

4. मुक्ति का नैतिक मूल्य निःसन्देह बहुत आकर्षक था जिसका गणित के आधार पर कोई हिसाब नहीं लगाया जा सकता ।

5. किसान अब एक स्वतंत्र नागरिक बन गया था और उसकी अपनी भूमि पर जीने और मरने का अधिकार प्राप्त हो गया था एक दास समान कृषक वर्ग रूस का नागरिक बन गया था । जन साधारण का जीवन स्तर इससे अवश्य प्रभावित हुआ । जिसने सारे देश को प्रभावित किया और अब देशवासी अच्छे और व्यापक सुधारों की मांग करने लगे । इससे परे देश में अन्य सुधारों का शुभारम्भ हुआ । इससे स्वतंत्र मजदूरों की उपलब्धि में वृद्धि हुई । बहुत से किसान जिनके पास पर्याप्त भूमि नहीं थी वे नगरों की तरफ प्रस्थान कर गए । जहां उनको कारखानों में काम मिल गया ।

6. मुक्ति ने रूस में क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया इससे अन्त में जार राजतंत्र का ही पतन हो गया । समाजवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन प्रत्यक्ष रूप से इसका परिणाम है । S.D. Party मुक्ति का महत्व स्वयं में तो है ही बल्कि इससे भी है । इसके-कारण अनेक सुधार कार्य प्रशासन को करने पड़े ।

सब कुछ चमकदार ही नहीं था सिक्के का एक अन्य रूप भी था और इस व्यवस्था में अनेक दोष भी थे और वे इस प्रकार थे:-

(I) निःसन्देह मानवीय बन्धन दास्ता समाप्त हो गयी किन्तु इस व्यवस्था के अन्तर्गत जो अल्पकालीन व्यवस्था रखी गयी उनमें भिन्न-भिन्न अर्द्धदासों के उत्तरदायित्व को अलग-अलग समयों के लिए और आगे बढ़ा दिया गया ।

(II) सुधार किसानों को अन्य वर्गो के बराबर सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं दे पाया । क्योंकि इन स्वतंत्र किसानों को व्यक्तिगत कर देना पड़ता था जिसे उन को अन्य सामाजिक नियमों मीर के साथ में उनको बांध दिया गया था और वे सामाजिक रीति रिवाज से अभी भी जुड़े हुए थे ।

(III) किसानों को यह शिकायत थी कि जो भूमि उन्हें आवंटित की गयी है वह भूमि का सर्वाधिक खराब भाग था जो मूल्य उसका लगाया गया था वह बहुत अधिक था जो खेत उनको दिये गये हैं वह इतने छोटे हैं कि उनको जीवन यापन करना आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नहीं है । भूमिपतियों ने वन भूमि को, अच्छी चारागाह को और सर्वाधिक उपज के खेतों को अपने पास रखा और जो किसानों को भूमि दी गयी वह सर्वाधिक खराब भूमि थी इस भूमि के निकट कोई नदी नहीं थी । परिणामस्वरूप इन किसानों पर पहले से अधिक निर्भर रहना पड़ता था । एव- अनुमान के अनुसार 13 प्रतिशत अर्द्धदासों को अच्छी भूमि का आवंटन किया गया । 45 प्रतिशत को ऐसी भूमि का आवंटन किया गया जो किसानों हेतु पर्याप्त थी और 42 प्रतिशत को ऐसी भूमि मिली जो अपर्याप्त थी । 30000 अमीरों के पास 95 मिलियन Dessyating अच्छी भूमि दी गयी । जबकि 20 मिलियन अर्द्धदासों के पास 116 मिलियन भूमि थी ।

(II) जो वित्तीय व्यवस्था की गयी वह भी अव्यवहारिक थी और उसका क्रियान्वयन करना असम्भव था । अर्द्धदासों ने जहां तक सम्भव हुआ किश्तों का भुगतान किया किन्तु यह भुगतान उनकी आय से संबंधित नहीं था इसलिए वह भुगतान नहीं का पाए । और भुगतान 1905 में माफ कर दिया गया । सरकारी तौर पर अर्द्धदासों को भूमि का मुआवजा (एवज) चुकाना था । उनके व्यक्तित्व का नहीं किन्तु वस्तुत: जव भुगतान का अंदाज लगाया गया तो

इससे भूमिपतियों को अर्द्धदास के श्रम के घाटे को भी Loss of Labour कहा । इस प्रकार किसानों को अपनी भूमि के मूल्य से कहीं ज्यादा देना पड़ता था । उदाहरण हेतू दक्षिण रूस के भूमिपतियो को 340 मिलियन रूबल मिले उस भूमि के जिसका वास्तविक मूल्य 28० मिलियन था । इसी प्रकार उत्तरी रूस के शुइमपतियों को भी 340 रूबल मिले जबकि उनकी भूमि का मूल्य था 180 मिलियन रूबल इसलिए किसान यह सन्देह करता था कि शासन की ओर से भूमिपतियों को सरकार के द्वारा संरक्षण दिया गया और आर्थिक सुरक्षा की व्यवस्था की गई है।

(IV) शासन से यह आशा नहीं की जा सकती थी जिस समय अर्द्धदासों को मुक्त किया जा रहा है उसी समय ग्राम सभाओं को तोड़ दिया जायेगा । इसलिए ग्राम सभाएं पिछड़ेपन, स्थिरता और ग्रामीण क्षेत्र में जनसंख्या की वृद्धि को बढ़ावा देती रही । जबकि रूस को उस समय उन्नति करने के लिए तथा आधुनिकीकरण की बहुत ज्यादा आवश्यकता थी । ग्राम सभाओं से जो कार्य सफलतापूर्वक करने की आशा की जाती थी वे सफलतापूर्वक नहीं कर सकी और इस तरह कृषि के विकास में बाधा बन गयी । कुछ रूसी इतिहासकार अर्द्धदास की मुक्ति को भू-स्वामियों तथा शासन के बीच का एक षड्यन्त्र समझते हैं । जिससे किसानों को नुकसान पहुंचाया गया । किन्तु इस विचार में सच्चाई कम है । क्योंकि मुक्ति के आदेश से अभिजात वर्ग का पतन प्रारम्भ हो गया ।

कुछ विशेषज्ञों का यह कहना है कि अर्द्धदास की समाप्ति से पूंजीवाद का विकास हुआ। इस में कुछ सच्चाई पायी जाती है । कुछ विद्वानों का कहना है कि मुक्ति की घोषणा से परिस्थितियों के साथ समझौता किया गया । क्रान्तिकारियो को इन सुधारों से निराशा हुई । क्योंकि उनकी दृष्टि में ये सुधार पर्याप्त नहीं थे ।

किसान भी इससे असन्तुष्ट हुए, क्योंकि अर्द्धदास की मुक्ति के बाद ग्रामीण विद्रोह हुए। ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी व रोष के कारण रूसी शासन को एक गम्भीर खतरा बना रहा । कुछ भी हो मुक्ति के आदेश का वैधानिक पक्ष मानव की दासता का अन्त इसकी महत्वपूर्ण विशेषताएं थी । और इसके काफी अच्छे परिणाम निकले । इन परिणामों के साथ-साथ एलेक्जेन्डर II ने स्थानीय स्वशासन, न्याय विभाग और प्रशासन के कई भागों में सुधार किए । इस तरह अर्द्धदासों की मुक्ति का आदेश रूस में महत्वपूर्ण सुधारों का सूत्रपात बना और इस तरह पुरानी व्यवस्था के अन्तर्गत समाज के भिन्न भिन्न वर्गो में जो कानूनी बाधाएं थी वे एक के बाद एक टूटती चली गई ।

अर्द्धदास प्रथा की समाप्ति से जो स्वतंत्र थे और जो स्वतंत्र नहीं थे उनका मूलभूत भेद समाप्त हो गया । स्थानीय स्वशासन की स्थापना से अर्द्धदास अपने पहले के स्वामियों के साथ सैद्धान्तिक आधार पर एक साथ बैठे अदालतों में कानून सबके लिए बराबर बना दिया गया और व्यवहार में भी इसका पालन किया गया । सेना के क्षेत्र में भी सुधार हुए तथा गणतंत्रीय सिद्धांत के आधार पर सभी नागरिकों के लिए सैनिक सेवा अनिवार्य हो गई । इतिहासकार इस बात को मानते हैं कि अर्द्धदासों की मुक्ति के बाद भी कृषक पूर्ण नागरिक नहीं बन पाये । क्योंकि ग्राम सभा के सदस्य होने के नाते वह अपनी इच्छा से अपनी सम्पत्ति का क्रय-विक्रय नहीं कर सकते थे । उनके आने जाने की स्वतंत्रता पर भी कुछ सीमा पर प्रतिबन्ध था । तीसरा छोटे-

छोटे अपराधों पर विषेश कानूनों के अन्तर्गत उन पर मुकदमें चलाये जाते थे । चौथा उन्हें व्यक्तिगत कर देना पड़ता था जो कि उनकी सामाजिक हीनता का प्रतीक था जबकि अन्य लोगों को इससे मुक्ति मिली थी । इतना सब कुछ होते हुए भी मुक्ति के आदेश से रूस नागरिक समानता के करीब कई कदम आगे बढ़ा चुका था । मुक्ति के आदेश के बाद ही रूस में मध्यम वर्ग का विकास शुरू हुआ जबकि पश्चिमी योरोप में यह विकास कई शताब्दियों से चल रहा था।

बोध प्रश्न

(1) जार मुक्तिकर्ता पर एक टिप्पणी लिखिए

(2) निकोलस व्यवस्था की प्रमुख विशेषताऐं बताइए । रूस के इतिहास में जार एलैकजेन्डर द्वितीय का क्या स्थान है ।

(3) 1825 ई. के दिसम्बर विद्रोह के कारणों और परिणामों की विवेचना कीजिए ।

(4) दासप्रथा से आज क्या समझते है?

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. जार्ज वर्नादिस्की रूस का इतिहास
2. Nicholas V.Riasomovsky : A history of Russian
3. Schapiro : Modern and contemporary European History
4. David Thomson : Europe since Napoleon.
5. देवेन्द्र सिंह चौहान यूरोप का इतिहास
6. पार्थसारथि गुप्ता: यूरोप का इतिहास

इकाई - 9
यूरोप में नवीन शासन-तन्त्र

इकाई की रूप रेखा:

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 जनसंख्या में तेजी से वृद्धि
9.3 औद्योगिक विकास
9.4 नागरीकरण
9.5 मध्यम वर्ग का शिक्षित व शक्तिशाली होना
9.6 यूरोप में तीव्र होता राष्ट्रवाद
9.7 उदारवाद व समाजवाद का विकास
9.8 विदग्ध राजनीतिज्ञों का आविर्भाव
9.9 अन्य शक्तियां
9.10 बोध-प्रश्न
9.11 संदर्भ ग्रंथ

9.0 उद्देश्य:

इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे-

1. यूरोप के नवीन शासन-तन्त्र की संरचना में सहयोग प्रदायक विभिन्न शक्तियां:

(अ) सामाजिक शक्तियां : जनसंख्या में तेजी से वृद्धि, औद्योगिक विकास, नागरीकरण, मध्यम वर्ग का शिक्षित तथा शक्तिशली होना ।

(ब) राजनीतिक शक्तियां : राष्ट्रवाद, उदारवाद व समाजवाद का विकास, विदग्ध राजनीतिज्ञों का आविर्भाव, अन्य शक्तियां ।

2. उपरोक्त शक्तियो द्वारा यूरोपीय शासन-तंत्र में परिवर्तन ।

9.1 प्रस्तावना:

आप यूरोप में प्रचलित राजतन्त्र तथा पुरातन शासन-व्यवस्था में प्रयुक्त शक्तियों का अध्ययन कर चुके हैं और साथ में ही इस तथ्य से भी परिचित हो चुके हैं कि यूरोप की उन्नीसवीं सदी की राजनीतिक व्यवस्था में फ्रांस की क्रान्ति (French Revolution) और अमेरिका का स्वतंत्रता संग्राम अति क्रान्तिकारी सिद्ध हुए हैं । परन्तु इतिहासकार डेविड थोमसन की मान्यता है कि इनसे पूर्व भी यूरोप में कुछ ऐसी शक्तियां कार्य कर रही थीं जिनसे यूरोप के तत्कालीन शासन-तन्त्र में परिवर्तन अवश्यंभावी थे । उन शक्तियों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है- प्रथम सामाजिक व दूसरी राजनीतिक । सामाजिक शक्तियों में हम लेते हैं- जनसंख्या की तेजी से वृद्धि, यूरोपीय देशों का औद्योगिक विकास, नागरीकरण, मध्यम वर्ग का

शिक्षित एवं शक्तिशाली होना । इसी प्रकार राजनीतिक, सामाजिक शक्तियों में हम उल्लेखित कर सकते हैं- यूरोप में तीव्र होता हुआ राष्ट्रवाद, उदारवाद व समाजवाद का विकास, विदग्ध राजनीतिज्ञों का आविर्भाव तथा अन्य शक्तियां । इस अध्याय के अध्ययन से हम निःसंकोच इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि ये शक्तियों यूरोप के शासन-तन्त्र में वास्तविक रूप से महान क्रान्तिकारी सिद्ध हुई ।

(अ) शासन-तन्त्र की नवीन सामाजिक शक्तियां

9.2 जनसंख्या में तेजी से वृद्धि- उन्नीसवीं सदी में यूरोप के सरकारी तन्त्र में परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण एवं दूरगामी भमिका जनसंख्या की तीव्र वृद्धि ने निभाई । 1800 ई. में यूरोप की आबादी 180 मिलयन थी । 1850 में वह बढ़ कर 266 मिलयन हो गई और 1900 में वह बढ़ कर 401 मिलयन हो गई । स्पष्ट है कि 1800 से यूरोप की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ने लगी थी जबकि 1750 से पूर्व यूरोप की आबादी की बढ़ोतरी की गति शिथिल थी । इतिहासकार थोमसन (Thomson) का कहना है कि जनसंख्या के इस प्रकार तीव्र गति के बढ़ने से यूरोप की सामाजिक व राजनीतिक अवस्था अप्रभावित नहीं रह सकती थी ।[1] यूरोप की बढती आबादी ने तो 1815 सें 1914 तक के इतिहास को ही बदल दिया ।[2] 40 मिलयन यूरोपवासी तो विश्व के अन्य देशों में जा कर आबाद हो गये । इस पर भी 1815 में यूरोप की आबादी 200 मिलयन रही और 1914 में वह 460 मिलयन हो गई । निःसन्देह यूरोप की इस बढ़ती आबादी के कई कारण थे, परन्तु इस जनसंख्या के विशाल विस्तार ने यूरोपीय देशों की सामाजिक अवस्था को तो प्रभावित किया ही पर साथ में ही इसने यूरोप के राजनीतिक क्षेत्र को भी व्यापक रूप से प्रभावित किया ।

15.2.1 यह भी तथ्य है कि यूरोप के सभी देशों में यह जनसंख्या समान अनुपात से नहीं बढ़ी । 1850 और 1870 के अन्तराल में यह वृद्धि ब्रिटेन और रूस में सर्वाधिक हुई । इंग्लैण्ड में तो यह वृद्धि उसके निवासियों के अमेरिका, आस्ट्रेलिया जाने पर भी बढ़ती रही और फ्रांस से भी अधिक हो गई । इसका स्पष्ट अर्थ यह था कि इंग्लैण्ड में बड़े-बड़े सम्पन्न परिवार फलीभूत हो रहे थे । इन सम्पन्न परिवारों का देश के शासनतन्त्र पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था । सम्पन्न परिवार शिक्षित भी थे । अत: उन्होंने अपनी सुख-सुविधाओं की प्राप्ति के लिए अपने देश की सरकार को नये-नये कानून बनाने को बाध्य किया । इतिहासकार थोमसन का कहना है कि इंग्लैण्ड की इस बढ़ती जनसंख्या के ज्वार के आगे कोई भी सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था सही सलामत नहीं रह सकती ।[1]

9.2.2 इंग्लैण्ड के शासन-तन्त्र में परिवर्तन- जैसा कि स्पष्ट है कि 1688 की रक्तहीन क्रान्ति से इंग्लैण्ड में संसदीय परम्पराएं शक्ति में आने लग गई थीं । परन्तु यथार्थ यह है कि इस गौरवशाली क्रान्ति (Glorious Revolution) से भी देश के केवल मालिक बदले

1 "No social and political order could have remained unaffected by so immense an increase of humanity -David Thomson

2 David Thomson: “Europe since Napoleon.” p.112.

थे । राजतन्त्र व कुलीनतंत्र अब भी इंग्लैण्ड के शासन-तंत्र पर हावी थे । 1815 के उपरान्त इंग्लैण्ड में संसदीय चुनावों की मांग जोर पकड़ने लगी थी; परन्तु 1830 तक इंग्लैण्ड के अनुदारवादी मन्त्री सुधारों को इंग्लैण्ड की शान्ति व प्रगति में बाधक बताते हुए उन्हें टालते रहे। जनसंख्या शान्ति के समय और भी बढ़ती गई और जनसंख्या की बढ़ोतरी के साथ-साथ सुधारों की मांग भी बढ़ती गई । भाग्यवश जून 1830 में अनुदारवादी जार्ज चतुर्थ की मृत्यु हो जाने पर विलियम चतुर्थ (William IV) ब्रिटेन का शासक बना । वह सुधारों का पक्षधर था । अत: उसके शासन काल में 1832 का सुधार अधिनियम (Reform Act of 1832) पारित हुआ । इसके पारित हो जाने से मतदाताओं की संख्या दुगनी हो गई । काउण्टियों में किसानों व पट्टेदारों तथा नगरों (बेराज) में मध्यम वर्ग को मतदान का अधिकार मिल गया । जिन बरोज की जनसंख्या कम हो गई थी- उनका संसद में प्रतिनिधित्व समाप्त कर दिया गया और जिन बेराज की जनसंख्या औद्योगिक विकास (Industrialization) के कारण बढ़ गई थी- उनका प्रतिनिधित्व बढ़ा दिया गया । इसका परिणाम यह हुआ कि कुलीनतंत्र के साथ-साथ धनी व्यापारियों व उच्च मध्यम वर्ग के पुरुषों को भी शासन को प्रभावित करन का अबसर मिल गया। व्यापारी व मध्यम वर्ग को अधिक संख्या में मताधिकार मिल जाने के कारण इंग्लैण्ड का उच्च सदन (House of Lords) अपनी शक्ति व महत्व खोने लगा । इसीलिए प्रो. टेम्परले (Temperley) ने कहा है कि 1832 की क्रांन्ति ने 1688 की क्रान्ति को पूर्ण कर दिया ।[2] इस अधिनिमय के पारित हो जाने पर इंग्लैण्ड में संसदीय विधेयक पारित होते ही चले गये । 1867 में दूसरा संसदीय सुधारक विधेयक पारित हुआ जिससे 10,80,000 पुरुषों को मताधिकार और मिल गया । इसके अलावा इस अधिनियम के बन जाने से निर्वाचन-क्षेत्रों से प्रतिनिधि अब जनसंख्या के अनुपात से चुने जाने लगे । इस अधिनियम से बरोज के सभी मकान मालिकों को मताधिकार प्राप्त हो गया । 10 पौण्ड वार्षिक किराया देने वाले व 12 पौण्ड का वार्षिक भूमि कर देने वाले भी मत देने के अधिकारी बन गये । अत: स्पष्ट है कि इंग्लैण्ड में मताधिकार पहली बार प्रजातांत्रिक आधार पर आंरभ हुआ और इसका श्रेय अन्य तत्वों के साथ-साथ जनसंख्या को भी कहा जाता है । इंग्लैण्ड की यह जनसंख्या 1870 के उपरान्त भी तीव्रगति से बढ़ती रही । मृत्यु-दर दिन पर दिन कम होती जा रही थी । अत: इंग्लैण्ड की सरकार को अपने बढ़ते हुए मताधिकारी पुरूषों को सन्तुष्ट करने हेतु 1884 में तीसरा सुधार विधेयक और पारित करना पड़ा जिसके फलस्वरूप 21 वर्षीय पुरूषों को तो मताधिकार मिल गया और स्त्री समाज को वोट पाने के लिए उद्वेलित कर दिया । इसीलिए इस षिधेयक के अधिनियम वन जाने पर एडम्स (Adams) ने कहा है- "यदि 1867 के सुधार अधिनियम ने इंग्लैण्ड को जनतन्त्र के द्वारा पर पहुंचा दिया, तो 1884 के तीसरे सुधार अधिनियम ने जनतन्त्र के द्वार खोल दिए ।" इस अधिनियम ने इंग्लैण्ड के मतदाताओं की संख्या में 20

1 David Thomson: “Europe Napolean”. p.114.
“Against this tide no social and political order could stand intact”.

2 केम्ब्रिज माडर्न हिस्ट्री” जिल्द पृष्ट 617.

लाख की वृद्धि और कर दी । इन तीनों महत्वपूर्ण अधिनियमों का श्रेय इंग्लैण्ड की बढ़ती जनसंख्या को ही जाता है । अत: 19 वीं सदी में इंग्लैण्ड की सरकार को प्रजातांत्रिक स्वरूप प्रदान कराने में जनसंख्या सरकार की एक प्रमुख शक्ति सिद्ध हुई ।

9.2.3 रूस-जनसंख्या में इंग्लैण्ड से बाजी मारने वाला केवल रूस था । उन्नीसवी सदी के पूर्वार्द्ध में वहां जनसंख्या दुगनी हो गई थी और इसी सदी के उत्तरार्द्ध में फिर दुगनी हो गई। इस बढ़ती जनसंख्या को खिलाने के लिए रूस के पास पर्याप्त अनाज नहीं था । रूस ने न तो कृषि के उन्नत तरीकों को ही अपनाया था स्कैर न प्रकृति ने ही उसे उर्वरा भूमि प्रदान की है । इसका परिणाम यह हुआ कि रूस के जार ने अपने साम्राज्य को एशिया में बढ़ाना आरंभ किया। इसके अलावा उसने आटोमन तुर्क साम्राज्य को समाप्त कर भूमध्य-सागर पर अधिकार करने का प्रयास किया । उसकी इस साम्राज्यवादी नीति ने यूरोप में पूर्वी समस्या (Eastern Question) को जन्म दिया । इसके फलस्वरूप रूस को कई युद्ध करने पड़े जिनके परिणामस्वरूप उसे अपनी विदेशनीति में निरन्तर परिवर्तन करने पड़े । इसके अलावा रूस का इस सदी में औद्योगिक विकास तो हुआ ही नहीं । अत: उसकी अधिकांश जनता किसान ही बनी रही । उन किसानों को दासरूप में बनाये रखने हेतु जार निरंकुश शासक ही बना रहा । उसके साथ सामन्त भी निरंकुश एवं शक्तिशाली बने रहे । वे किसानों का शोषण कर वैभवता एवं विलासिता का जीवन व्यतीत करते रहे ।

गरीब एवं शोषित किसान उन्नीसवीं सदी के अन्त तक अपनी सरकार को कोई प्रजातन्त्रात्मक कानून बनाने को बाध्य नहीं कर सके । इसके फलस्वरूप रूस की सरकार 1917 तक निरंकुश एवं राजतन्त्रात्मक ही बनी रही । अत: स्पष्ट है कि इस देश की बढ़ती जनसंख्या ने अपने शासक को साम्राज्यवादी अवश्य बनाया पर उसे प्रजातन्त्र की ओर उन्मुख नहीं कर सकी ।

9.2.4 फ्रांस-

फ्रांस की जनसंख्या इंग्लैण्ड व रूस की भांति नहीं बढ़ी । परन्तु वहां किसान व मध्यम वर्ग की अपेक्षा सामन्त वर्ग ही अधिक शक्तिशाली बना रहा । फ्रांस की सामाजिक व्यवस्था अठारहवीं सदी तक ऐसी ही बनी रही और यह असमानता के आधार पर निर्मित समाज ही राज्य-क्रान्ति का प्रमुख कारण बनी थी । अत: 1814 में जब लुई अठारहवां फ्रांस का राजा बना दिया गया तो लुई चौदहवें के गौरव से प्रभावित हुए भी वह फांस में पुरातन व्यवस्था पुन: स्थापित नहीं कर सका और उसने कृषक-वर्ग व मध्यम वर्ग को सन्तुष्ट रखने की दृष्टि से 2 जून, 1814 को संवैधानिक आज्ञा-पत्र (Constitutional Charter) जारी कर दिया । इस आज्ञा-पत्र के अन्तर्गत फ्रांस के प्रशासन में कई परिवर्तन किये गये जो कुछ क्षेत्रों में भिन्नता रखते हुए भी इंग्लैण्ड की भांति संसदीय ही थे । शोषित व तिरस्कृत समाज के लोगों को भी नागरिकता के अधिकार दिए गये ।

9.2.5 जर्मनी-

जर्मनी की आबादी भी इंग्लैण्ड की भांति तीव्र गति से बढ़ी । 1815 में उसकी आबादी 25 मिलयन थी जो 1890 में बढ़कर 50 मिलयन हो गई । 1870 में बिस्मार्क के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण सम्पन्न हो गया था । एकीकरण के उपरान्त बिस्मार्क जर्मनी का एकीकरण सम्पन्न हो गया था । एकीकरण के उपरान्त बिस्मार्क जर्मनी की स्थिति को सुदृढ़ करने में व्यस्त हो गया । वह जर्मनी की यथा-स्थिति (Status-Quo) बनाये रखना चाहता था । साम्राज्यवाद में उसकी कोई अभिरूचि नहीं थी । परन्तु जर्मनी की बढ़ती जनसंख्या ने बिस्मार्क को अपनी नीति बदलने को बाध्य कर दिया । 1885 में बर्लिन-कांग्रेस (Berlin Congress) का आयोजन किया गया जिसमें यूरोप के साम्राज्यवादी देशों ने अफ्रीका के बंटवारे के सन्दर्भ में कई निर्णय लिए । बिस्मार्क ने भी अपनी बढ़ती जनसंख्या की समस्या के समाधान हेतु अफ्रीका में उपनिवेश स्थापित करना आरंभ कर दिया । इंग्लैण्ड के सहयोग से उसने दक्षिण अफ्रीका में (The German and British African Companies) की स्थापना 1888 में की । टोगोलैण्ड (Togoland) और कैमरून्स (Cameroons) को उसने अपने संरक्षण में ले लिया । बीसवीं सदी के प्रारंभ में जर्मनी मोरक्को (Morocco) में अभिरूचि लेने लग गया । इस बढ़ती जनसंख्या के कारण ही जर्मनी चीन में अपना हिस्सा बंटाने गया । इटली व स्पेन में जनसंख्या बहु त धीमी गति से बढ़ी तो वहां जनसंख्या सरकारी तन्त्र में शीघ्र परिवर्तन लाने की शक्ति नहीं बन सकी ।

9.3 औद्योगिक विकास-

उन्नीसवीं सदी यूरोप के इतिहास में औद्योगिक विकास की सदी थी । इंगैण्ड में इसका अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ही आरंभ हो गया था । फ्रांस की राज्य-क्रान्ति ने इसकी गति को शिथिल बना दिया था; परन्तु 1815 में यह पुन: तीव्र गति से होने लगा था । इस औद्योगिक विकास ने निःसन्देह यूरोप के देशों का उत्पादन बढ़ाया । उनके निर्यात को बढ़ा कर वहाँ पूंजीवाद को विकसित किया । परन्तु इसके साथ ही इस औद्योगिक विकास ने यूरोप में अनेक समस्याएं भी उत्पन्न कर दीं । औद्योगिक विकास से श्रमिकों की संख्या बढ़ने लगी । स्त्री व बच्चों को खानों के खदान कार्यो में लगाने से उनकी स्वास्थ्य सम्बन्धी व आर्थिक समस्याएं बढ़ने लगी । औद्योगिक नगरों की बस्तियां गन्दी व घनी आबादी वाली बन गई । खानों व कारखानों में दुर्घटनाएं घटने लगीं । इन समस्याओं की ओर सरकार का ध्यान समाजवाद आकर्षित करने लगा । दूसरी तरफ कारखानों के स्वामी अपने हितों की रक्षार्थ अनुदारवादियों को अपने पक्ष में करके अपनी सरकारों को अपने हित में कानून बनाने के लिए बाध्य करने लगे । इस प्रकार 19 वीं सदी में समाजवादी और अनुदारवादियों के मध्य संघर्ष चलता ही रहा । समाजवादियों ने श्रमिकों के हित में यूरोपीय देशों में अनेक फैक्ट्री नियम बनाने को वहां की सरकारों को बाध्य किया तो दूसरी ओर पूंजीपति मालिकों ने सरकार से अपनी पूंजी व अपने उद्योगों की सुरक्षा की गारण्टी चाही ।

9.3.1 इंग्लैण्ड में औद्योगिक विकास व वहीं की सरकार-

जैसा कि हमें ज्ञात है कि यूरोप में औद्योगिक विकास सर्व-प्रथम इंग्लैण्ड में हुआ और उन्नीसवीं सदी में यह विकास वहां अपनी चरम-सीमा पर था । अत: यह भी स्वाभाविक ही था कि श्रम-सम्बन्धी व नागरीकरण-संबंधी समस्याएं भी सर्वाधिक वहीं उत्पन्न हों । वहां की बढ़ती समस्याओं के निवारण हेतु कई विख्यात समाजवादी व उदारवादी भी वहां आविर्भूत हो गये । 19 वीं सदी के प्रारंभ में ही रोबर्ट ओवन स्वयं मिल मालिक होते हुए भी श्रमिकों के भले का प्रयास करने लगा । स्त्री-बच्चों को पूंजीपति मालिकों के शोषण से बचाने हेतु उसने इंग्लैण्ड की सरकार से 1819 में एक फैक्ट्री कानून बनाने का अनुरोध किया । हालांकि इस कानून से वह अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल तो नहीं हुआ परन्तु सरकार का इस ओर ध्यान आकर्षित करने में वह अवश्य सफल हो गया । 1827 से इंग्लैण्ड में समाजवाद दिन पर दिन प्रबल होता चला गया । मध्य वर्ग भी अब प्रभाव में आने लगा था । वह भी औद्योगिक विकास के कारण कई समस्याओं से ग्रसित हो गया था । अत: अब श्रमिक वर्ग ने मध्य-वर्ग के सहयोग से ब्रिटेन की अनुदारवादी (टोरी) सरकार को अपने हित में कानून बनाने को विवश करना आरंभ किया । जब टोरी दल की सरकार इस ओर उन्मुख नहीं हुई तो इंग्लैण्ड में चार्टिस्ट आन्दोलन हुआ । यह आन्दोलन भी श्रमिकों की मूल समस्याओं के समाधान में तो असफल रहा, परन्तु उसने जनता का ध्यान श्रमिकों की दयनीय अवस्था की ओर अवश्य आकर्षित कर दिया टोरी सरकार का हृदय तब भी नहीं पसीजा । परन्तु चार्टिस्ट आन्दोलन ने सरकार को इस बात का स्पष्ट संकेत दे दिया कि श्रमिक वर्ग अब अपनी समस्याओं के प्रति जागरूक है । कारखानों के धनी मालिकों के शोषण को वह सहन नहीं करेगा । अत: ब्रिटेन की सरकार भी उनके हित का प्रयास करने लगी । स्त्री-बच्चों को खानों के खदान कार्यो से रोका गया । श्रमिकों के काम करने के घण्टों में कमी की गई । 1860 के उपरान्त श्रमिकों के वेतन में भी वृद्धि की गई । रानी विक्टोरिया का शासन श्रमिकों के लिए एक सुधार-युग सिद्ध हुआ । अत: 1850 से 1875 के अन्तराल में ब्रिटेन की सरकार ने श्रमिकों की समस्याओं के निवारणार्थ अनेक कानून बनाये । इस प्रकार उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ब्रिटेन की सरकार अनुदारवाद से विमुख हो सुधारवाद की ओर उज़ख होने लगी । यही कारण था कि 1897 में सेलिसबरी ने "वर्कमेन्स कम्पेन्सेसन विधेयक" लार्ड हाटिंगडन तथा लैंस डाउन जैसे मंत्री भी ट्रेड यूनियन्स के समर्थक बन गये । बीसवीं सदी के प्रारंभ में इंग्लैण्ड में जो मजदूर दल (Labour) शक्तिशाली का बना व सस्ता में आया- उसका भी प्रमुख कारण वहां के मजदूरों में बढ़ता हुआ उग्र असन्तोष ही था । उस असन्तोष को शान्त करने हेतु ही 1908-15 के अन्तराल में श्रमिकों के हित में पुन: ब्रिटेन में कई कानून बनाये गये ।

15.3.2 फ्रांस में औद्योगिक विकास तथा वहाँ की सरकार-

फ्रांस इंगलैण्ड का पड़ौसी देश था । अत: उसका इग्लैण्ड के वातावरण से प्रभावित होना स्वाभाविक था । परन्तु कई भोगोलिक परिस्थितियों के कारण वहां औद्योगिक विकास इग्लैण्ड के उपरान्त हुआ । इसका एक कारण यह था कि फ्रांस में पावर-लूम की अपेक्षा श्रमिकों द्वारा

बुना वस्त्र सस्ता उपलब्ध होता था । इसके अलावा भी अन्य कई कारण थे । परन्तु लुई फिलिप के शासन काल में फ्रांस में औद्योगिक विकास तेजी से आरंभ हुआ। पैरिस व लियोन्स नगरों में फैक्टरी व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी । फ्रांस के उत्तर पूर्वी जिलों में खानों का खनन तथा ऊन कीं उद्योग पनप रहे थे । फ्रांस में भी पूंजीपतियों का प्रभाव था । अत: सरकार ने श्रमिकों की बढ़ती समस्या पर ध्यान नहीं दिया । उसने मिल मालिकों पर हल्का सा नियन्त्रण स्थापित करने का प्रयास किया, परन्तु पूंजीपतियों के विरोध के कारण सरकार का वह प्रयत्न भी निष्फल हो गया । परन्तु 1848 की कान्ति के समय श्रमिकों ने नए "आर्थिक सामन्तवाद" की निष्क्रियता का विरोध किया । इस समय लुई ब्लां जैसा सच्चा समाजवादी फ्रांस के, श्रमिकों को नेतृत्व प्रदान करने की उपलब्ध हो गया था । क्रान्ति के उपरान्त अस्थायी सरकार में स्थान मिलने पर उसने प्रत्येक श्रमिक को कार्य करने का अधिकार (Right to Work) दिलवाया और इस अधिकार को क्रियान्वित करने हेतु उसने राष्ट्रीय कार्यशालाएं (National Workshop) की स्थापना की । इस प्रकार समाजवादी और मजदूर वर्ग के दबाव के कारण फ्रांस की "अस्थायी सरकार" को फ्रांस के इतिहास में पहली बार, प्रत्येक व्यक्ति को काम देने और मजदूरों के हित में नियोजित कार्यकम अपनाना पडा ।[1]

इससे श्रमिक वर्ग में उत्साह बढ़ा 'और वे भविष्य में अधिक सुधारों की आशा करने लगे । कुछ सीमा तक उनकी यह आशा फलीभूत भी हुई क्योंकि उनके कार्य करने के घण्टों में डेढ़ घण्टे की कमी कर दी गई । लुई बलां की अध्यक्षता में ही एक 'शासकीय श्रम आयोग' की स्थापना भी कर दी गई । परन्तु राष्ट्रीय कार्यशालाओं की योजना शीघ्र ही असफल हो गई ।

9.3.2.1 द्वितीय साम्राज्य (Second Empire) में भी औद्योगिक विकास काफी हुआ। नेपोलियन तृतीय इंग्लैण्ड के औद्योगिक विकास से काफी प्रभावित था । देश की समृद्धि के लिए भी वह औद्योगिक विकास आवश्यक समझता था । अत: औद्योगिक विकास हेतु उसने यातायात व परिवहन के साधनों को विकसित किया । सारव (Credit) की सुविधाएं जुटाने के उद्देश्य से फ्रांस में कई बैंकों (क्रेडिट मोबीलियर, क्रेडिट फांसियर) की स्थापना की । इसके अलावा बैंक ऑफ फ्रांस के कार्य-क्षेत्र में वृद्धि कर दी और उसे भी ऋण देने का अधिकार दे दिया । इस औद्योगिकरण से श्रमिकों की संख्या में भी वृद्धि हुई । जब फ्रांस यूरोप के उद्योग प्रधान देशों में अग्रणी हो गया तो नेपोलियन तृतीय को श्रमिकों के असन्तोष का भी सामना करना पडा ।

9.3.2.2 उद्योगों के विस्तार के साथ-साथ श्रमिकों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई । नेपोलियन तृतीय श्रमिक वर्ग को सन्तुष्ट रखना चाहता था । अत: उसने अपने को मजदूरों का सम्राट कहना आरंभ किया । उनके हित में उसने कई कानून भी बनाये । सामूहिक रूप से क्रय-विक्रय की सुविधा देने के उद्देश्य से उनके लिए सहकारी समितियां बनाई गई । श्रमिकों को संगठित करने का अधिकतर प्रदान कर दिया । उन्हें हड़ताल करने का अधिकार भी दे दिया । कारखानों में काम करने वालों को चिकित्सा की व्यवस्था की गई । काम करते श्रमिक के दुर्घटनाग्रस्त होने पर उन्हें हर्जाना देने का भी नियम बनाया गया । मजदूरों को कम दामों रोटी

1 जे.बी.टी बरी: फ्रांस (1814-1940) पृ. 74

दिलवाने की व्यवस्था की तथा उनके आवास का भी प्रबन्ध किया गया ।

15.3.2.2 उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशकों में भी फ्रांस का औद्योगिक विकास तीव्र गति से होता रहा और इसके साथ ही मजदूरों की संख्या व उनकी समस्याएं बढ़ती रहीं । इस कारण उनके संघों (Trade Unions) की शक्ति भी बढ़ती रही । 1896 में पेलोतियर (Palloutier) के नेतृत्व में मजदूरों का श्रमिक संघ बन चुका था । इसके उपरान्त "बृहत मजदूर संघ" की स्थापना की गई । 1906 में अमीन्स (Amiens) में मजदूरों का एक सम्मेलन हुआ । 1907 में मजदूर हिंसक भी हो गये । 1909 में क्लीमेन्शू अपनी अनुदार नीति के कारण त्याग-पत्र देना पडा । समाजवादी ब्रियां (Climenceau) भी जब श्रमिकों की समस्याएं दूर नहीं कर सका तो उसके मंत्रिमडल को भी त्याग-पत्र देना पडा । इससे राज्य में अस्थिरता उत्पन्न हो गई और 1911 से 1914 के अन्तराल में 7 मंत्रिमण्डल बने ।

9.3.3. जर्मनी में औद्योगिक विकास और वहाँ की सरकार:

प्रारंभ में तो विभक्त होने के कारण जर्मनी औद्योगिक विकास में अग्रसर नहीं हो सका था । परन्तु 1834 में जालवरीन (Zolloverin) की स्थापना ने जर्मनी के औद्योगिक विकास का मार्ग खोल दिया । 1839 में जर्मनी में इंग्लैण्ड की सहायता से रेलवे लाइन बिछाई गई । 1870 में वहां लोहा और कोयला भी पर्याप्त मात्रा में निकाला जाने लग गया था । सेब्सेनी, साइलेशिया और वेस्टफेलिया में कई सूती मिलें स्थापित हो गई। [1] 1871 में जब जर्मनी में कई प्रकार के उद्योग विकसित हुए । परन्तु 1875 के पश्चात आर्थिक मन्दी आई जिसके कारण देश के औद्योगिक विकास को महान आघात पहुंचा । जर्मनी के अर्थशास्त्री सरकारों से उन्मुख व्यापार (Free Trade) स्थान पर संरक्षण (Protection) की नीति अपनाने का अनुरोध करने लगे । जर्मनी के राष्ट्रवादी अर्थशास्त्री वेनगर (Wegner) एवं उसके सहयोगियों ने अबन्ध नीति (Laissez faire) नीति को अनुपयुक्त बताया और उसके स्थान पर राष्ट्रीय उद्योगों के विकास के लिए संरक्षण की नीति अपनाने पर बल दिया । इसी सन्दर्भ में 1876 में विलहेल्म वॉन कारडाफ (Wilhom Von Kardroff) ने एक पुस्तिका लिखकर संरक्षित व्यापार व उद्योग के समर्थन में कई तर्क प्रस्तुत किए । बिस्मार्क कामरडाफ के विचारों से प्रभावित हुआ । वह इस निष्कर्ष पर पहुँच गया कि देश के औद्योगिक विकास हेतु उसे अपनी आर्थिक नीति में परिवर्तन करना होगा।

9.3.3.1 बिस्मार्क को आभास हो गया कि लोह तथा इस्पात के उद्योग में वह इंग्लैण्ड से तथा कृषि के क्षेत्र में अमेरिका से टक्कर नहीं ले सकता । अत: उसे संरक्षण (Protection) की नीति अपनानी होगी । इसी नीति से प्रेरित हो उसने 1879 में एक कानून पारित करवाया जिसके अन्तर्गत कुछ राज्यों से आयात-शुल्क लगा दिया । 1885 और 1887 में भी बिस्मार्क ने इसी नीति पर आचरण किया और आयात चुंगी में और वृद्धि कर दी । इसके फलस्वरूप

1 हेज: “ए पोलिटिकल एण्ड क्ल्वरल हिस्ट्री ऑफ मोर्डन यूरोप” वॉल. 56-57. समर्थन में कई तर्क प्रस्तुत किये। बिस्मार्क कारडाफ के विचारों से प्रभावित हुआ। वह इस निष्कर्ष पर पहुंच गया कि देश के औद्योगीक विकास हेतु उसे अपनी आर्थिक नीति में परिवर्तन करना होगा।

जर्मनी का उद्योग वहां के व्यापारियों के हाथ में ही बना रहा और इसके साथ-साथ उसका विदेशों में व्यापार भी बढ़ता रहा । उसकी इस नीति के कारण जर्मनी उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में विश्व के प्रमुख औद्योगिक देशें में गिना जाने लगा । प्रो. जे. पी. टेलर ने बिस्मार्क की इस नीति का समर्थन करते लिखा है. "वह एक ऐसा निणार्यक कदम था जिससे जर्मनी अनिवार्यरूप से निरंकुश प्रभुता एवं नवीन पद्धति (New Order) और उसके मक्खन के पहले बन्दूक (Gun Before Butter) के सिद्धान्त की ओर अग्रसर हुआ और जिसके परिणामस्वरूप जर्मनी को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए यूरोप पर विजय प्राप्त करना आवश्यक हो गया ।[1] परन्तु इस नीति का एक परिणाम यह भी रहा कि जर्मनी पश्चिमी राज्यों से अलग हो गया ।

9.3.3.2 बिस्मार्क की इस संरक्षण नीति ( ) का प्रभाव उसका आन्तरिक नीति पर भी पड़ा । इस संरक्षण नीति के आचरण में उसने केन्द्रीय दल का सहयोग लिया था और केन्द्रीय दल के सहयोग से राष्ट्रीय उदारवादी दल (National Liberals) विभक्त हो गये । इसे विस्मार्क की महान विजय मानी गई क्योंकि अब जर्मनी में संसदीय शासन (Parliamentary Government) की कोई संभावना नहीं रही ।[2]

9.3.3.3 विलियम द्वितीय के शासन-काल में जर्मनी का औद्योगिक विकास बहुत तीव्र गति से हुआ । 1890 और 1914 के मध्य जर्मनी का औद्योगिक विकास अपनी चरम-सीमा पर पहुंच गया । जर्मनी के पास कोयले व लोहे के प्रचुर भंडार थे जो औद्योगिक विकास के लिए परम-आवश्यक माने जाते हैं । इस काल में रूर (Ruhr), साइलेशिया और सार (Saar) की कोयले की खदानों का विस्तार किया गया । 1914 में कोयले के उत्पादन में जर्मनी का तीसरा स्थान था । इस्पात के उत्पादन में जर्मनी का दूसरा स्थान था । लोहा और कोयले के साथ ही जर्मनी ने वियुत-उद्योग, रासायनिक उद्योग व मशीन निर्माण में भी अभूतपूर्व प्रगति की । इस भारी औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप जर्मनी यूरोप की एक महान शक्ति बन गया । इसके फलस्वरूप जो जर्मनी 1890 तक साम्राज्यवाद की दौड़ से दूर था । वह अब पश्चिम के अन्य शक्तिशाली देशों के साथ साम्राज्यवाद की दौड़ में संलग्न हो गया और इसका शासक विश्व-राजनीति (Welt politik) का खेल खेलने लगा ।

9.4 नागरीकरण (Urbanization) -

नागरीकरण औद्योगिकरण का ही एक परिणाम था ।'[3] औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व यूरोप में बड़े नगरों की संख्या बहुत कम थी और अधिकतर जनता ग्रामों में ही निवास करती थी । परन्तु मशीनों के प्रयोग व लोहा और कोयले के पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाने से बड़े-बड़े

1 ए.जे.पी टेलर: दि कोस ऑफ जर्मन हिस्ट्री" पृ. 126

2 "न्यू कैम्ब्रिज माडर्न हिस्ट्री" 11.पृ. 291

3 "Urbanization usually went hand in hand with industrialism".
-David Thomson.

नगर आबाद हो गये । कारखानों की स्थापना वहीं होती थी जहाँ लोहा और कोयला भारी मात्रा में मिलता था । इसका परिणाम यह हुआ कि कारखानों में हजारों आदमी काम करने लगे और यह स्वाभाविक ही था कि खदानों के उजड़े स्थान पर बडी बस्तियों में परिणित हो. जावें । इंग्लैण्ड में मेनचेस्टर, ग्लासगों, ब्रेडफोर्ड, लीड्स, व लिवरपूल जैसे महान् ओद्योगिक नगर इसी परिवर्तन के परिणाम थे । और 1815 से 1914 के मध्य की शताब्दी में यूरोप के सभी देशों में औद्योगिक विकास पर्याप्त रूप से हुआ । इन नगरों का विकास आज की तरह सुनियोजित ढंग से तो किया नहीं गया था । अत: इन नगरों में पर्याप्त स्वस्थ मकानों, सडकों, प्रकाश व सफाई की उचित व्यवस्था नहीं थी । मजदूरों को छोटे व गन्दे मकानों में गुजारा करना पड़ता था । कारखानों की धुआं से उन बस्तियों पर सदा काले बादल मंडराते रहते थे । इसीलिरए औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप आबाद नगरों को सस्ते मजदूरों के बैरेक्स बताया गया है नागरिक के निवास नहीं ।'[1] मजदूरों के क्वार्टर जल्दी में तथा सस्ते पदार्थो से निर्मित किये जाते थे । इस प्रकार औद्योगिक नगर जितने विशाल होते थे उतने अधिक ही अधिकांश वहां मजदूरों का रूप धारण करते थे ।'[2] गांवों में वे प्रकृति की गोद में पलते थे पर इन गन्दे व अव्यवस्थित नगरों में वे कुन्द दिमागों से कार्य करते तथा नाना रोगों से ग्रसित रहते थे । प्रारंभ में यातायात के साधनों के विकसित न होने के कारण वे दीन मजदूर समीप के या राज्य के सुन्दर नगरों को भी नहीं देख पाते थे ।

इन्हीं गन्दी बस्तियों में दूसरा दृश्य भी देखने को मिलता था । कारखानों व खानों के स्वामी पूंजीपति बन चुके थे । वे अपने निवास के लिए सुखद एवं भव्य भवन बनवाते थे । उनके उच्च भवनों में सब प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध होती थीं । उन भवनों की चकाचौंध से प्रभावित हो कर ही लार्ड मैकाले (Lord Mecaulay) ने उन नगरों की प्रशंसा करते हुए, उन्हें मानव की प्रकृति पर विजय का प्रतीक बताया है।[3] परन्तु वह नगरों की वैभवता का वर्णन करते समय दीन श्रमिकों की शीर्ण कुटियों पर दृष्टिपात नहीं कर सका जिनमें स्वच्छता के नियम का पालन ही नहीं किया जाता था । विलबरफोर्स (Wilberforece) ने उन औद्योगिक विकास के क्षेत्र में इंग्लैण्ड ही विश्व में सबसे आगे था । इसका एक कारण यह भी था कि 1815 से 1914 के मध्य उसे कोई लम्बा युद्ध नहीं करना पड़ा था । इसी कारण वह उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में उन आक्रमिक रूप से बसे गन्दे नगरों की बुराईयां पर दृष्टिपात भी कर सका था । हालांकि इस काल में कारखानों व औद्योगिक नगरों में सुधार भी हो गया था । यातायात व परिवहन के साधनों के विकसित हो जाने के कारण वे औद्योगिक नगर, अपने राज्यों की "The towns of industrial revolution it has been said were barracks for cheap labour, not homes for Citizens."

E-H-Carter.

1 "The larger the towns, The worse the results"

-E.H. Carter.

2 E.H. Carter : "A History of Britain". p. 674

3 E.H Carter : "A History of Britain". p. 674

स्वच्छ एवं सुनियोजित बस्तियों के भी सम्पर्क में आ गये थे । शिक्षा की व्यवस्था हो जाने पर श्रमिक अब विकसित मस्तिष्क के हो गये थे । विद्धुत का प्रयोग शक्ति के रूप में होने लग गया था । इससे धुआं के बादल अब छितरा गये थे । परन्तु कारखानों व खानों में स्त्री-बच्चों को अब छितरा गये थे । परन्तु कारखानों व खानों में स्त्री-बच्चों को अब भी काम पर लगाया जाता था । उनकी दयनीय अवस्था से पसीज कर, शेपट सबरी (Shaftesbury) ने ब्रिटेन की सरकार से हस्तक्षेप करने का अनुरोध किया ।[4]

दूसरी ओर औद्योगिक क्रान्ति के सुखद फल भी फलीभूत होते जा रहे थे । पूंजीवाद दिनों दिन फल रहा था ।[1] पूंजीपतियों को सत्ता की भूख भी सताने लगी थी । वे संसदीय सरकारों में अपना प्रभाव देखना चाहते थे । संसद में स्थान पा कर वे सरकार को अपना पक्षधर बनाने लगे । निःसन्देह उनका एक मात्र उद्देश्य अधिकाधिक लाभ कमाना तथा श्रमिकों का शोषण करना ही था । परन्तु नगरों को सुनियोजित ढंग से विकसति करने पर वे भी जोर देने लगे थे । उधर मजदूर भी संगठित हो गये थे । अपने ट्रेड यूनियन्स (Trade Unions) के माध्यम से वे भी अपनी सरकार को अपने हित में नाना प्रकार के सुधार करने को बाध्य कर रहे थे ।

9.4.1 इंग्लैण्ड की सरकार द्वारा सुधार- इंग्लैण्ड की सरकार में ज्योंही छिग पार्टी सत्ता में आई तो इस दिशा में सुधार आरंभ हो गये । लार्ड ग्रे, मेलबोर्न व लार्डजॉन रसेल ने इस क्षेत्र में प्रमुख भूमिका निभाई । रोबर्ट पील हालांकि टोरी दल का था तथापि नगरों की अवस्था में सुधार करने हेतु वह भी लार्ड ग्रे की भांति आगे बढ़ा । लार्ड ग्रे ने रायल कमीशन (Royal Commission) नियुक्त किया । इस आयोग को पुअर कानून (Poor Laws) कारखानों व नगर-निगमों के सन्दर्भ में सुधार करने का ही काम सौंपा गया था । इस आयोग ने तीनों क्षेत्रों में सराहनीय कार्य

किया । नगरों के विकास हेतु ब्रिटेन की सरकार को निम्नलिखित कानून बनाने पडे:

1. 1848 में सार्वजनिक स्वास्थ्य (Public Health Act) कानून बनाया । इस कानून के अन्तर्गत लन्दन तथा अन्य कई स्थानों पर सार्वजनिक स्वास्थ्य वोर्डो (Public Health Board) की स्थापना की गई । यह कहना अनुचित नहीं होगा कि चाडविक (Chodhrick) के इस स्वास्थ्य कानून ने इंग्लैण्ड के कई नगरों में स्वच्छता की धारणा उत्पन्न की ।[2]

2. 1835 में म्यूनिसिपल कारपोरेशन अधिनियम (Municipal Corporation Act) लागू किया गया । इस अधिनियम का श्रेय मेलबोर्न (Lord Melbourne) को जाता है । इस अधिनियम के बनने से पूर्व इंग्लैण्ड के नगरों की दयनीय अवस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता । रायल आयोग ने उनकी रूग्ण अवस्था पर कुछ प्रकाश डाला ।

1 Nineteenth Century industry was child of capitalism". -E.H Carter.

2 "....It is not much to day that it introduced the idea sanitation into most English towns".
-E.H. Carter

हालांकि नगर निगमों का गठन पुरातन परिपाटी पर ही किया । उनमें भ्रष्टाचार भी व्याप्त रहा। फिर भी 200 नगरों में जब इनकी स्थापना हो गई तो गन्दे नगरों की अवस्था में कुछ तो सुधार हुआ ही । इनके मेयर व खजाचियों की नियमित रूप से नियुक्तियां 'होने लगीं । उनके हिसाब का लेखा-जोखा भी होने लगा । 1875 के स्वास्थ्य कानून ने नगरों में और भी सुधार किया ।

9.4.2 यही दशा यूरोप के अन्य औद्योगिक देशों की थी । परन्तु वहां औद्योगिक विकास विलंब से होने के कारण. उन्होंने इंग्लैण्ड से बहुत कुछ सीख लिया था । उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में कई देशों के मिल-मालिकों ने ही इसका आभास कर लिया था कि गन्दे वातावरण में रहने वाला श्रमिक अस्वस्थ जीवन व्यतीत करने के कारण कम काम करता है । अत: उन्होंने स्वयं ही अपने श्रमिकों के लिए सरकार के सहयोग से उलम हवादार, क्वार्टर्स बनाना आरंभ कर दिया । जर्मनी व स्केन्डेनेविया में कम्पनियों ने अपने मजदूरों को मकान बनाना आरंभ कर दिया ।

शनै: शनै: ओद्योगिक नगरों में निवास करने वाले श्रमिकों व अन्य मध्य वर्गीय लोगों में यह भावना जागृत होने लगी कि उनके अस्तित्व में गन्दगी संकट उत्पन्न करती है । इसके अलावा बीसवीं सदी के प्रारंभ में तो नगरों के शिक्षित नागरिकों ने अपने देश की सरकार को अपने यहां पार्क व दवाखाने खोलने को भी बाध्य कर दिया । इस प्रकार बहुत से देशों में उनकी राष्ट्रीय, व राज्य सरकारों तथा नगर-निगमों ने नगरों की इन समस्याओं के समाधार की ओर ध्यान देना आरंभ कर दिया ।[1] ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, आस्ट्रिया, स्वीडन तथा नीदरलैण्डस ने इस कार्य में प्रमुख भूमिका निभाई । जिन देशों में राजतन्त्र व्यवस्था प्रचलित थी वहां के शासकों ने भी अपने पुरातन राजवंशीय विचारों का परित्याग कर राज्य और नागरिक के विचारों का प्रतिपादन किया।[2]

1 J.C. Appel : " A History of the world", p. 368. "Gradually national, state and city government took up the problem, and by the early 20th century, an effort was being made in many industrial countries to remedy the situation."

2 David Thomson: "Europe Since Napoleom". p. 118 "The old dynastic conception of a ruler and subjects had to be totally replaced by the conception of state and its citizens."

3 सी.डी. हेजन "आधुनिक यूरोप का इतिहास" पृ. 71 अनुवादित।

4 David Thomson: "Europe since Napolleon". p. 31. "It was first, a declaration- a manifesto and a statement of the general principles on which the national Assembly hoped to reform the French system of government.

9.5 मध्यम वर्ग का शिक्षित व शक्तिशाली होना- उन्नीसवीं सदी की एक यह भी विशेषता रही कि इस काल में यूरोप के देशों में मध्यम वर्ग शिक्षित एवं शक्तिशाली हो गया था। वह अपने अधिकारों की मांग अभिजात वर्ग के विनाश पर करने लगा क्योंकि वे अभिजात वर्ग को अपनी उन्नति में बाधक समझते थे । फ्रांस की राज्य-क्रान्ति इसी उद्देश्य से मध्यम वर्ग द्वारा की गई थी । मानव-अधिकारों (Dedaration of the Rights of man of te citizens) की घोषणा करनी पड़ी । इस घोषणा के सन्दर्भ में कहा गया है कि फ्रांस में लोकतन्त्रीय और गणतन्त्रीय विचारों के विकास के इतिहास में यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है ।[3]

मानव अधिकारों की इस घोषणा ने आधुनिक सिद्धान्तों का निरूपण किया ।[4] यह घोहाणा किसी एक व्यक्ति के मस्तिष्क की उपज होकर फ्रांस के जन साधारण के विचारों की उपज थी । इसकी घोषणा का महत्व चतुर्थ गणतन्त्र (Fourth Republic) की प्रस्तावना (Preamble) तक पर-लक्षित रहा । इसके उपरान्त नेपोलियन के शासन तक फ्रांस में संवैधानिक परिवर्तन होते रहे । 1815 में जब वियना कांग्रेस ने फ्रांस में लुई अठारहवें को शासक बनाकर वहां पुन: पुरानी-व्यवस्था को स्थापित करना चाहा तो 1830 और 1848 में दो और क्रान्तियां हुई। ये दोनों क्रान्तियां नगरों में प्रधानतया हुई और मध्यम वर्ग के लोगों द्वारा ही की गई । इन क्रान्तियों से यूरोप के समस्त जनसाधारण की पुरातन राजनीतिक मान्यता ही बदल गई । क्रान्तिकारियों ने राजाओं की प्रभुसत्ता के स्थान पर लोकप्रिय प्रभुसत्ता, राज्यों के स्थान पर राष्ट्रों और आनुवांशिकता के स्थान पर बौद्धिकता को स्थापित करने का प्रयत्न किया। इसलिए कहा जाता है कि 1848 की क्रान्ति के फलस्वरूप जन-समूह (Masses) के युग का आरंभ हुआ। अब यह स्पष्ट- हो गया कि राजनीतिक आन्दोलनों की कुंजी जनता के हाथ में थी ।[1]

क्रान्ति के अधिकांश ' नेता उन्ही नगरों के ही निवासी थे जो अपने नगरों के विश्व-विद्यालयों में शिक्षित हुए थे । फ्रांस के लेमरटाइन, इटली को निकोलिनी (Nicolini) तथा हंगरी को पटोफी ने जन-साधारण को प्र शासन की कमजोरियों के प्रति जागरूक किया । इसी के फलस्वरूप इटली व जर्मनी में राष्ट्रीय भावना प्रबल होने लगी और वहां का मध्यम वर्ग उदारवादी एवं प्रजातन्त्रात्मक सुधारों की मांग करने लगा । इटली में विदेशी सस्ता (आस्ट्रिया) व प्राचीन राजतन्त्र के विरूद्ध आक्रोश उत्पन्न करने वाले मैजिनी व गैरीबाल्डी मध्यम वर्ग में ही आर्विभूत हुए थे । जर्मनी का एकीकरण करने वाला बिस्मार्क था जो स्वयं एक सामन्त (Juknker) था । इसी कारण वहां का संविधान पूर्णरूपेण प्रजातन्त्रात्मक नहीं बन सका । परन्तु फिर भी बिस्मार्क व उसके सम्राट को जनसाधारण के आगे झुकना पडा । फ्रेडरिक विलियम ने 1850 में एक संविधान प्रदान किया तथा बिस्मार्क को एकीकरण के उपरान्त समाजवादियों से अपनी हार मानते हुए कई सुधार करने पड़े । बिस्मार्क व विलियिम द्वितीय (William II) का प्रतिक्रियावादी शासन पूर्ववत चलता रहा तब भी जर्मनी में मध्यम वर्ग के प्रयासों से राष्ट्रीयता की भावना एवं उदारवाद का विकास होता रहा । जर्मनी में राष्ट्रवाद को प्रबल बनाने में वहां के छात्रों व प्रवक्ताओं ने विशेष भूमिका निभाई थी ।

9.5.1 इंग्लैण्ड का संविधान किसी आकस्मिक घटना का प्रतिफल नहीं वरन् उसका विकास धीरे-धीरे हुआ है । वहां का मध्यम वर्ग जैसे-जैसे भूमिपतियों के विशेषाधिकारों को समाप्त कर अपने अधिकारों की प्राप्ति के प्रयास करने लगा वैसे-वैसे ही वहां संसदीय सुधार होते ही चले गये । आज वहां की संसद में मध्यम-वर्ग का प्रभाव है । शासक व संसद का उपरि सदन (House of Lords) अशक्त बन गये हैं ।

9.5.2 स्पेन में उदार मध्यम वर्ग विशाल संख्या में नहीं था ।[2] नेपोलियन के शासन को उखाड़ फैंकने का उन्होंने प्रयास अवश्य किया; पर उनका प्रयास मौलिक नहीं था । वेलिंगटन के नेतृत्व में अंग्रेजी सैनिकों के स्पेन आ जाने के उपरान्त उन्होंने नेपोलियन के सैनिकों से संघर्ष किया था और वह भी राजतन्त्र के पोषक व धर्माधिकारियों के सहयोग से किया था । इसलिए स्पेन में राजतन्त्र ही कार्यरत रह गया ।

वैसे मध्यम वर्ग का आविर्भाव भी औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप ही हुआ था । औद्योगिक क्रान्ति के फल मध्यम वर्ग को अच्छे ही रहे । वे धनी हो गये तथा सुखी जीवन व्यतीत करने लगे थे । बड़े नगरों में बसने के कारण उन्हें जीवन की सभी आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध हो जाती थीं । इस वर्ग में शिक्षित लोग, धर्माधिकारी व सम्पन्न व्यापारी सम्मिलित होते थे । इस कारण नगरों में उनका प्रभाव होता था । इसी कारण वे नगर-निगमों व नगर परिषदों में निर्वाचित होकर आने लगे । इस प्रकार वे नगरों के स्थानीय शासन में हिस्सा बंटाने लगे और उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में तो वे अपने नगरों के लिए स्वायल शासन (Local Charters of Self-Government) की मांग करने लग गये थे ।

(ब) नवीन राजनीतिक शक्तियां

9.6 यूरोप में तीव्र होता हुआ राष्ट्रवाद -

देश-प्रेम राष्ट्रवाद का एक आवश्यक गुण है । कहा जाता है कि जिस मनुष्य में राष्ट्र-प्रेम नहीं होता वह इन्सान नहीं पशु होता है । यूरोप के कुछ देशों में तो यह उन्नीसवीं सदी से पूर्व भी विद्यमान था परन्तु 19 वीं सदी में यह प्रबल रूप से यूरोप के देशों में व्यापक रूस से लक्षित हुआ और इसका श्रेय फ्रांस की राज्य-क्रान्ति को ही जाता है ।[1] राष्ट्रवाद को फ्रांस में उग्र बनाने में जेकोबिन्स (Jacobins) ने मूल भूमिका निभाई, परन्तु जब रोब्सपियर ने आतंक राज्य (Reign of Terror) के माध्यम से फ्रांसवासियों पर घोर अत्याचार किये तो जैकोबिन्स बदनाम हो गये क्योंकि उन्होंने प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों की अवहेलना करते हुए केवल विदेशियों के आक्रमण से फ्रांस को बचाने पर ही विशेष जोर दिया था । आतंक राज्य के समाप्त होने पर नेपोलियन ने अपनी साम्राज्यवादी उपलब्धियों से यूरोप के देशों में अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रवाद को

1 David Thomson: “Europe Since Napoleon” p. 210-

2 David Thomson: “Europe since Napoleon”. P. 122 “But Spain had no Large or important liberal middle class, which was the characterisxtic basis for 19th century movements of national unity and independence”

प्रबल बना दिया । अत: 1815 से यूरोप में प्रजातन्त्र की अपेक्षा राष्ट्रवाद अधिक सशक्त शक्ति के रूप में उभरा ।[2]

15.6.1 हालांकि नेपोलियन की साम्राज्यवादी सफलताओं से राष्ट्रवाद की भावना समस्त यूरोप में प्रसारित हुई थी, परन्तु वह जर्मनी व इटली में उग्र रूप से प्रस्फुटित हुई । 'वियना-कांग्रेस (Vienna Congress) ने दोनों देशों में पुरातन व्यवस्था स्थापित करने की दृष्टि से उन्हें कई राज्यों में विभक्त कर निर्बल बना दिया था, परन्तु इस राष्ट्रवाद की भावना में उन दोनों देशों को एकीकृत कर यूरोप में उन्हें शक्तिशाली बना दिया । हालांकि राजतन्त्र दोनों देशों में प्रचलित रहा परन्तु प्रजातन्त्रीय व्यवस्था भी दोनों देशों में 'अपना प्रभाव जमाने लग गई थी।

राजतन्त्र के प्रति तो आस्था 1848 की क्रान्ति के उपरान्त ही समाप्त हो गई थी । प्रशा के शासक फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ ने भी उदार संविधान स्वीकार करके घोषणा की भी कि "आज मैने जर्मनी के प्राचीन झण्डे को स्वीकार कर लिया है और मैं अपनी प्रजा को जर्मन साम्राज्य के प्राचीन झण्डे की रक्षा के लिए समर्पित करता हूं । अब से प्रशा और जर्मनी के हित एक ही होंगे ।[1]

सम्राट की इस घोषणा से राष्ट्रवादियों को बड़ा प्रोत्साहन मिला । इसी प्रकार 1870 में रोम पर अधिकार करके विक्टर एमेनुअल ने समस्त इटली को अपने अधिकार में कर उसे आस्ट्रिया के प्रभाव से मुक्त करा दिया । पुराने राजवंशों को समाप्त कर उसने पुरातन राज्य व्यवस्था को समाप्त कर दिया । परन्तु इटली व जर्मनी का यह राष्ट्रवाद मूलत: फ्रांस विरोधी था जिसने परोक्ष रूप से उनमें राष्ट्रीय भावना जागृत की थी । परन्तु इटली व जर्मनी का एकीकरण मूलत: सेना के सहारे हुआ । बिस्मार्क ने राष्ट्र की प्रबल इच्छा, छल, कपट व बल प्रयोग से जर्मनी को यूरोप में एक शक्तिशाली राष्ट्र अवश्य बना दिया परन्तु इसके साथ ही उसने सैनिकवाद को भी जन्म दिया जो आगे चलकर समस्त यूरोप के लिए एक भंयकर समस्या बन गया ।

15.6.2 स्पेन में भी राष्ट्रवाद को जागृत नेपोलियन की विजय ने ही किया था । परन्तु स्पेनवासियों ने नेपोलियन के अत्याचारों के विरूद्ध बगावत की तो उसे दबाने हेतु नेपोलियन ने अपनी ग्राण्ड सेना (Grand Army) वहां भेजी । स्पेनवासियों ने इंग्लैण्ड के सेनापति वैलिगटन का सहयोग पाकर छापामार नीति से ग्राण्ड सेना का मुकाबला किया । परन्तु इस मुकाबले में स्पेनवासी अपने राजा के प्रति व्याप्त आस्था से भी प्रेरित थे । धर्माधिकारी भी उन्हें युद्ध के लिए प्रेरित कर रहे थे । यही कारण था कि फ्रांस की सेना को स्पेन से निकाल करके भी स्पेनवासियों ने अपने यहाँ राजतन्त्र को कायम रखा इसके साथ ही उन्होंने धर्माधिकारियों के प्रभाव को भी समाप्त नहीं किया । परन्तु स्पेन के राजा फर्डिनेण्ड सप्तम

1 David Thomson: “ Europe since Napoleon” p. 119

2 Ibid p. 119

3 “So by 1815 nationalism was a much livelier force in Europe than was democracy”

(Ferdinand VII) ने अपने देशवासियों को 1812 में संविधान अवश्य स्वीकार कर दिया और यह 1812 का संविधान उन्नीसवीं सदी के उदारवादियों तथा स्पेन के अलावा अन्य देशों के लिए एक आदर्श बन गया ।[2]

9.6.3 फ्रांस में तो राष्ट्रीय भावना अठारहवीं सदी के अन्तिम दशक से ही जागृत हो गई थी और उन्नीसवीं सदी में यह उत्तरोतर प्रबल होती गई । इस भावना के प्रबल प्रवाह में ही फ्रांस की सरकार में निरन्तर परिवर्तन होते रहे और एक प्रकार से प्रजातन्त्र की प्रयोगशाला बन गया । तृतीय गणतन्त्र (Third Republic) की स्थापना तक फ्रांस के शासन-तन्त्र में अनेक परिवर्तन होते रहे । इन परिवर्तनों के पीछे फ्रांसवासियों का राष्ट्रवाद ही था ।

इंग्लैण्ड में राष्ट्रवाद ट्यूडर वंश (Tudar Dynasty) से ही पनपने लग गया था । फ्रांस की राज्य-क्रान्ति से यह और प्रबल हो गया था । इसके परिणामस्वरूप इंग्लैण्डवासियों की आस्था उदारवाद व प्रजातन्त्र की ओर उन्मुख हो रही थी । परन्तु 1848 तक इंग्लैण्ड के अनुदारवादी कोई संसदीय सुधार करने को तैयार नहीं थे । लेकिन इंग्लैण्ड का मध्यम वर्ग और मजदूर वर्ग अति जाग्रत हो चुका था । उन्होंने 1832 मैं अनुदारवादी सरकार को सुधार करने को विवश कर ही दिया और इसके उपरान्त इंग्लैण्ड की सरकार में नवीन परिवर्तन होते ही चले गये । इसी प्रकार इस राष्ट्रवाद की भावना ने यूरोप के अन्य देशों-को भी उदारवादी सुधार करने को विवश कर दिया । आयरलैंड करने को विवश किया । ग्लेडस्टन ने होम रूल स्वीकार कर आयरलैण्डवासियों को अनेक राजनीतिक सुविधाएं प्रदान कीं ।

19 वीं सदी में यूरोप के देशों में जो राजनीतिक घटनाएं घटीं उनसे स्पष्ट था कि राष्ट्रीयता की लहर समस्त यूरोप में मैटरनिख की प्रतिक्रियावादी नीति के बावजूद भी तीव्र गति से फैल रही थी । 1829 में यूनान टर्की के प्रभाव से मुक्त हुआ तो 1830 में बेल्जियमवासियों ने अपनी बन्दूकों की सहायता से डचों से मुक्ति पा ली । 1831 और फिर 1863 में पौलैण्ड के लोगों ने रूस के जार के विरूद्ध बगावत कर दी । 1905 में नार्वे के लोगों ने स्वीडन ने अपनी आजादी प्राप्त की । यूरोप में ये सब परिवर्तन वहां राष्ट्रवाद के तीव्र प्रसार से ही संभव हो सके ।

9.7 उदारवाद व समाजवाद का विकास-

1815 से 1848 के युग की मुख्य ऐतिहासिक घटना उदारवादी और राष्ट्रवादी तत्वों का प्रतिक्रियावादी तत्वों से संघर्ष करना है । फ्रांसीसी क्रान्ति के फलस्वरूप यूरोप में राष्ट्रीयता एवं लोक-तन्त्र की भावनाएं जागृत हो चुकी थीं । ये नवीन धाराएं यूरोप के विभिन्न भागों को दिन पर दिन प्रभावित कर रहीं थीं । परन्तु मैटरनिख राष्ट्रीयता व उदारवाद को उसी क्रान्ति की भावना की अभिव्यक्ति समझता था जिसके कारण यूरोप को भयावह युद्ध की यातनाएं सहनी

1 केटल्बी : " एक हिस्ट्री ऑफ माडर्न टाईम्स" पृ. 186.

2 David Thomson : "Europe Since Napoleon", p. 71
This constitution of 1812 was to become the ideal of nineteenth century liberals in many countries beside Spain."

पड़ी थीं । अत: वह वंशानुगत राजतन्त्र की पुरानी परम्पराओं पर आधारित निरंकुशता का शासन ही यूरोप में चलाना चाहता था जबकि उदारवाद समानता व स्वतन्त्रता के आधार पर शासन-व्यवस्था को संचालित होते देखना चाहते थे ।

15.7.1 यह हम स्पष्ट कर चुके हैं कि फ्रांस की क्रान्ति में मध्य-वर्ग की प्रमुख भूमिका रही थी और इस वर्ग के उत्थान के साथ ही उदारवादी सिद्धान्तों ने भी जन्म लिया । सैद्धान्तिक रूप से उदारवाद अठारहवीं शताब्दी के बौद्धिक आन्दोलन से प्रेरित था जिसने असमानता और निरंकुश शासन की कटु आलोचना की थी । उदारवाद संसदीय प्रणाली और कानून के शासन के पक्ष में था । इतिहासकार थोमसन ने भी इसी धारणा का समर्थन करते हुए लिखा है कि यूरोप महाद्वीप में उदारवाद एक प्रकार से राष्ट्रवाद का ही पर्यायवाची था क्योंकि वह प्रचलित वंशानुगत राजतन्त्र को समाप्त कर जनता की सहमति से संचालित शासन देखना चाहता था । इसीलिए उदारवाद ने आतंक राज्य की कटु आलोचना की थी । उदारवादी -राज्य को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का रक्षक समझते थे परन्तु आर्थिक संबंधों और समाज के निर्माण में राज्य का कोई अधिकार नहीं मानते थे । फ्रांसीसी लेखकों बैंजामिन, कॉन्सेंट और फासुआ गीजों ने उदारवाद का बहुत ही स्पष्ट शब्दों में स्पष्टीकरण किया ।

1820 में ही स्पेन, पुर्तगाल तथा बेल्जियम के सुधारवादियों ने मैटरनिख के न्यायता तथा यथा-स्थिति के सिद्धान्त को चुनौती दी, परन्तु मैटरनिख के निर्देशन में निरंकुश रूढ़िवादी शक्तियों ने उस चुनोती को असफल बना दिया । इसके फलस्वरूप 1830 व 1848 में फ्रांस में पुन: क्रान्तिया हुई । 1848 की क्रान्ति का यूरोप पर व्यापक प्रभाव पड़ा । उस वर्ष यूरोप में छोटी-मोटी 17 क्रान्तिया हुई । मैटरनिख को भी आस्ट्रिया छोड कर इंग्लैण्ड भाग जाना पड़ा । इटली व जर्मनी मैं भी सुधारों की मांग जोर पकड़ने लगी । विक्टर इमेनुअल तथा उसका प्रधानमन्त्री काबूर (Cavour) इटली के एकीकरण की भूमिका तैयार करने लगे । इस प्रकार स्पष्ट है कि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अनेक उतार-चढ़ाव के पश्चात् उदारवादी अपने उद्देश्यों में सफलता पाने लगे ।

9.7.2 समाजवाद का विकास-

ओद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप एक तरफ पूंजीवाद विकसित हुआ तो दूसरी ओर श्रमिक वर्ग का विकास हुआ । अनियन्त्रित उद्योगवाद के कारण मिल-मालिकों व मजदूरों के मध्य वर्ग-संघर्ष भी आरंभ हो गया । इस वर्ग-संघर्ष (Class-War) ने एक ओर श्रमिकों को संगठित किया तो दूसरी समाजवाद को शक्तिशाली बताया । पूंजीपति स्वामियों के शोषण से बचने हेतु श्रमिकों ने ट्रेड-यूनियन्स (Trade Unions) का गठन आरंभ किया । परन्तु यूरोपीय देशों की सरकारें पूंजीपतियों के प्रभाव से इतनी प्रभावित थीं कि वे श्रमिक के संगठनों व उनके आन्दोलनकारी कार्यो को अवैध करार कर दिया करती थीं । सरकार की इस प्रकार की कार्यवाहियों का परिणाम यह हो रहा था कि एक ओर समृद्धि बढ़ रही थी तो दूसरी ओर निर्धन श्रमिकों की निर्धनता । इस बढ़ती हुई आर्थिक असमानता को दूर करने में श्रमिकों की सहायतार्थ समाजवाद ही आगे बढ़ा । इसका एक कारण उदारवाद का निर्बल हो जाना भी था।

9.7.2.1 इंग्लैण्ड में समाजवाद-औद्योगिक विकास सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में हुआ और 19 वीं सदी में वही प्रमुख औद्योगिक केन्द्र था । अत: इस आर्थिक विषमता के विरूद्ध सर्वप्रथम आवाज इंग्लैण्ड में ही उठाई गई । विलियम गोडविन ने अपनी पुस्तक "पोलिटिकल जस्टिस" में व्यक्तिगत सम्पत्ति की कटु आलोचना की । शैले जैसे कवियों ने अपनी कविताओं में सरकार की निर्दयता तथा निर्धनों के शोषण की भर्त्सना की । रोब ओव ने मिल मालिक होते हुए श्रमिकों का पक्ष लिया । ओवन के प्रचार के कारण ही ब्रिटेन की सरकार को 1819 में फैक्ट्री कानून पास करने को बाध्य होना पड़ा । इंग्लैण्ड में 19 वीं सदी के तीसरे दशक में जो सहकारी समाजवाद आरंभ हुआ वह रोबर्ट के विचारों पर ही आधारित था । वह अहिंसावादी था तथा संवैधानिक साधनों से आर्थिक विषमता को दूर करने का पक्षधर था 1832 में ब्रिटेन की संसद ने अधिनियम तो पारित किया परन्तु उससे केवल मध्य-वर्ग का हित हुआ। इससे निराश होकर चार्टिस्ट आन्दोलन (Chortist Movement) आरंभ किया गया परन्तु वह भी दबा दिया गया । परन्तु इस आन्दोलन ने जनता का ध्यान निर्धनों श्रमिकों की दयनीय अवस्था की ओर आकर्षित अवश्य कर दिया । परिणामत: डिजरैली (Dissraeli) जैसा अनुदारवादी आगे आया । उसने मध्य-वर्ग को स्वार्थी बताया । उसने श्रमिकों को 'टोरी गणतन्त्र" के नेतृत्व में एकत्रित होने का आह्वान किया । इसके उपरान्त ब्रिटेन में श्रमिकों के हित में फैक्ट्री कानून बनते ही चले गये । 1847 में स्त्री-बच्चों के काम करने की सीमा कम की गई 1850 से 1875 का समय मजदूरों के लिए स्वर्णिम-युग सिद्ध हुआ। राह रानी विक्टोरिया का शासन-काल था । इस अन्तराल में श्रमिकों का पर्याप्त हित हुआ पर समाजवाद निर्बल पड़ गया । उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशकों व बीसवीं सदी के प्रारंभ मे मजदूर-दल (Labour-Party) की स्थापना से इंगलैण्ड में समाजवाद पुन: प्रबल हो गया और आज भी महत्वपूर्ण बना हुआ

9.7.2.2 फ्रांस में समाजवाद-

इंग्लैण्ड के प्रभाव के कारण फ्रांस में भी समाजवाद का विकास हुआ। वह आदर्शवादी समाजवाद कहलाया । सर्वप्रथम सिसमांडी ने अहस्तक्षेप (Laissez faire) के सिद्धान्त पर तत्कालीन पूंजीवादी व्यवस्था की आलोचना की और श्रमिकों को उचित मजदूरी देने की वकालत की । कुलीन वंशीय सेंट साइमन तथा फाउरिये ने रोबर्ट ओवन के विचारों का समर्थन करते समाजवाद का प्रचार क्रिया । 1840 के उपरान्त लुई ब्लां इस क्षेत्र में आया । वह एक प्रभावशाली समाजवादी सिद्ध हुआ। उसेने फ्रांस की सरकार से "काम के अधिकार" (Right to work) और उस अधिकार की प्राप्ति के लिए "राष्ट्रीय कारखानों" की मांग की । इन मांगों के क्रिययान्वयन के लिए उसने लोकतन्त्र को आवश्यक बताया । उसके प्रयासों से राष्ट्रीय कारखाने स्थापित भी किये गये । लाखों लोगों को रोजगार भी मिला चाहे वह योजना असफल हो गई हो। 19 वीं सदी के छठे दशक में फ्रांस का आर्थिक विकास तेजी से हुआ और श्रमिकों की दशा में आशातीत सुधार होने लगा । परन्तु लुई ब्लां की 1879 में मृत्यु हो जाने पर फ्रांस में समाजवाद निर्बल हो गया । इस पर जूल्स गुसदे (Jules Guesde) ने कार्ल मार्क्स के विचारों पर समाजवाद का प्रचार किया । उसने "श्रमिक-दल" (Working Party) की स्थापना की ।

1882 में पाल बोस (Paul Brouse) के नेतृत्व में "श्रमिक संघ" की स्थापना की। इस प्रकार फ्रांस में. समाजवाद पुन: महत्वपूर्ण हो गया ।

9.7.2.3 कार्ल मार्क्स और समाजवाद-

कार्ल मार्क्स को समाजवाद का प्रमुख चिन्तक माना जाता है । उसने इस आन्दोलन को पुनर्गठित किया । उससे पूर्व समाजवादी विचारधारा में कल्पना ही प्रधान मानी जाती थी । उसने समाजवाद को गतिशील एवं क्रान्तिकारी बनाया । उसने उद्योग के पूंजीवादी संगठन के विषय में और मजदूर वर्ग के निर्माण के विषय में गंभीर रूप से विचार किया । मौलिक रूप से वह दार्शनिक व अर्थशास्त्री था । उसका विचार था कि "वर्ग-संघर्ष' का प्रमुख कारण यह है कारखानों के पूंजीपति स्वामी श्रमिकों को उनके श्रम का पूर्ण पुरस्कार नहीं देते ।

कार्ल-मार्क्स के विचारों का यूरोप पर व्यापक प्रभाव पड़ा । 1859-60 में इटली में राष्ट्रवादियों को जो विजय मिली उसका श्रेय मार्क्स को ही जाता है । 1860 में रूस में किसानों को मुक्ति मिली, 1863 में पौलेण्ड में स्वाधीनता के लिए क्रान्ति हुई । उन सबका श्रेय भी मार्क्स को ही मिलता है । इन सफलताओं के परिणामस्वरूप वह 1864 में लन्दन में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ की स्थापना कर सका । रूस-में. 1905 व 1917 की क्रान्तियों के परिणामस्वरूप जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए उनके पीछे मार्क्स के विचार ही प्रमुख रूप से थे ।

9.7.2.4 जर्मनी में समाजवाद- जर्मनी कार्ल मार्क्स की जन्मभूमि थी । अत: वह उसके विचारों से किस प्रकार अप्रभावित रह सकती थी । परन्तु जर्मनी के समाजवादी मार्क्स के भक्त सिद्ध नहीं हुए । लसैल प्रशा के नेतृत्व में जर्मन-राज्य की स्थापना का प्रबल समर्थक था जबकि मार्क्स व उसके अनुयायी जर्मनी के एकीकरण के साथ-साथ एक सुदृढ़ केन्द्रीय सरकार की स्थापना के भी पक्षपाती थे । श्रमिकों की शक्ति का पता लगाने वाला लसैल ही था । अत: वह समाजवादी आन्दोलन श्रमिकों के सहारे ही चलाना चाहता था । इसी से 1864 में एक व्यापक श्रमिक दल की स्थापना का विचार जोर पकड़ने लगा । मार्क्स के अनुयायी भी लसैल के समर्थकों से मिल गये और वे 1875 में सोशल डेमोकेटिक पार्टी के नेतृत्व में काम करने लगे । बिस्मार्क उनका कट्टर विरोधी सिद्ध हुआ, परन्तु विवश हो उसे समाजवाद अपनाना पडा । श्रमिकों के हित में उसने कई कानून बनाये जिनका उल्लेख किया जा चुका है । 1890 में विलियम द्वितीय ने समाजवादी-विरोधी कानूनों की पुनरावृत्ति नहीं की । बीसवीं सदी के आरंभ में आगस्ट बेबल (August Babel) आगे आया । उसने 50 वर्ष तक समाजवाद का नेतृत्व किया ।

9.8 विदग्ध राजनीतिज्ञों का आविर्भाव- विदग्ध राजनीतिज्ञ वही माना जाता है जिसकी अंगुलियां सदैव अपने राष्ट्र की नब्ज पर रहती है ।[1] वह अपने देशवासियों के मनोभावों को भली-भांति समझता है । और उनके मनोनुकूल कार्य करता रहता है । 25 वर्षो के निरंतर संघर्ष काल के उपरान्त 1815 में "वियना कांग्रेस" का आयोजन हुआ । फ्रांसवासियो को पूर्ण आशा थी कि अब इनके यहां समानता, स्वतन्त्रता एवं बन्धुत्व की भावना के आधार पर प्रजातन्त्र की स्थापना होगी । परन्तु कांग्रेस का कर्णधार मैटरनिख जानता था कि यूरोपवासी इस समय

शान्ति प्रमुख रूप से चाहते हैं । अत: उसने क्रांति के सिद्धान्तों को संक्रामक रोग बताते हुए, सारे यूरोप. में पुरानी व्यवस्था ही स्थापित की । उसकी यह प्रतिक्रियावादी नीति 1848 तक चलती रही । परन्तु इसमें संदेह नहीं कि उसने 25 वर्षो के क्रान्ति-काल के उपरान्त यूरोप में शान्ति स्थापित कर यूरोप में पुन: एक राजनीतिक व्यवस्था स्थापित की जो आपसी समझौते पर आधारित थी ।

9.8.1 मैटरानिख-युग-यूरोप के इतिहास में 1815 से 1848 का काल "मैटरनिख युग" (Metternich Age) कहलाता है । इस काल में उसकी प्रतिक्रियावादी नीति ही प्रचलित रही और आस्ट्रिया सहित अन्य देशों में भी उदारवादी सुधार नहीं हो सके । परन्तु फिर भी वह 1789 की क्रान्ति से जनित राष्ट्रवादी भावनाओं का पूर्ण दमन नहीं कर सका । यही कारण था कि फ्रांस में 1830 व 1848 में पुन: क्रान्तियां हुई जिनका यूरोप में व्यापक प्रभाव पडा और यूरोप के विभिन्न देशों में वहां के दूरदर्शी राजनीतिज्ञ राष्ट्रीयता व औद्योगिक विकास से प्रभावित अपने देशवासियों की इच्छानुकूल अपने देशों के शासन-तन्त्र में आवश्यक परिवर्तन करते रहे ।

9.8.2 इंग्लैण्ड के राजनीतिज्ञ और उनके शासन-सुधार-

यूरोप की संयुक्त व्यवस्था (Concert of Europe) के अन्तर्गत आयोजित होने वाले सभी सम्मेलनों में इग्लैण्ड मेटरनिख की प्रतिक्रियावादी नीति का समर्थक नहीं रहा था । परन्तु 1820 को जब अनुदारवादी जार्ज तृतीय ने संसार से आँखे मूंद लीं तो विलियम चतुर्थ के बाद जार्ज चतुर्थ गद्दी पर बैठा । उसके गद्दी पर बैठते ही ब्रिटेन में सुधारों की मांग हुई । परन्तु काटो स्ट्रीट सडयन्त्र (Cato-Street Conspiracy) की ओर में उस मांग को दबा दिया गया । फिर भी उदारवादियों की सुधारों की मांग उत्तरोतर इंग्लैण्ड में प्रबल होती ही चली गई ।

9.8.2.1 इंग्लैण्ड के विभिन्न राजनीतिज्ञों द्वारा सुधार-

1822 में लिवरपूल के नेतृत्व में मंत्रिमण्डल का गठन हुआ और केसलरे के स्थान पर सर रोबर्ट पील (Peel) विदेश मंत्री बना । वह सुधारवादी विचारधारा का था । उसने 1822 से 1830 के अन्तराल में कई सुधार किये । उदाहरणार्थ उसने इंग्लैण्ड के तत्कालीन दण्ड-विधान में सुधार करके 100 अपराधों के लिए मृत्यु-दण्ड अवैध घोषित करा दिया । 1829 में उसने "कैथोलिक इमेंशियेशन" (Catholic Emancipation) विधेयक पारित करा कर नागरिकों पर लगी धार्मिक योग्यताओं को समाप्त करा दिया । 1830 में जब जार्ज चतुर्थ की मृत्यु हो गई तो संसदीय सुधारों की मांग पुन: जोर पकड़ने लगी । अर्ल ग्रे (Earl Grey) के नेतृत्व में संगठित मंत्रिमण्डल में जान रसेल (John Russell) ने 1832 का क्रान्तिकारी विधेयक पारित कराया । इस अधिनियम के चुनाव के क्षेत्र में का क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिए । यह जान रसेल का ओजस्वी एवं प्रभावशाली भाषण ही था जिसने अनुदारवादी टोरी दल के सदस्यों को

1 "A true politician is he who always keeps his fingeures on the puls of his nation"

इस विधेयक के पक्ष में मत देने को विवश कर दिया । इस विहग (Whig Party) दल की सरकार ने "दास प्रथा" (Slave System) को समाप्त कर दिया । 1833 में रोबर्ट ओवन, थामस सैडलर तथा लार्ड एश्ले के प्रयत्नों से दूसरा फैक्ट्री अधिनियम बना जिसके अन्तर्गत 9 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों को कारखानों में लगाना अवैध ठहरा दिया गया । विलियम चतुर्थ (William IV, 1830-37) के शासन-काल में ही नगरपालिका सम्बन्धी अनेक सुधार किए गये।

9.8.2.2 महारानी विक्टोरिया के शासन-काल के राजनीतिज्ञ-

रानी विक्टोरिया पुरातन विचारों की अवश्य थी- परन्तु वह सुधार विरोधी सिद्ध नहीं हुई। ग्लेडस्टन (Gladstone) और डिजरैली उसके शासन के दो प्रमुख राजनीतिज्ञ थे । हालांकि जन्म से दोनों राजनीतिज्ञ अनुदारवादी थे; परन्तु समय के बदलाव से प्रभावित हो उन्होंने 1867 और 1889 के सुधार विधेयक पारित कराकर रानी विक्टोरिया के शासन को प्रजातन्त्रीय सिद्ध करा दिया ।[1] ग्लेडस्टन ही एक ऐसा राजनीतिज्ञ था जो ब्रिटेन का चार बार प्रधानमंत्री बना। हाउस ऑफ लार्ड्स के भारी विरोध के होते हुए भी वह कार्न ला (Corn Law) को रद्द करा सका तथा आयरलैण्ड को होमरूल दिलाने में सफल हुआ। 1901 से मजदूर दल सत्ता में आने लग गया था । इसी कारण लायड जार्ज (Lioyd George) 1911 में तीसरा संसदीय सुधार विधेयक पारित कराकर संसद के उपरी सदन (House Of Lords) को सदा के लिए कामन्स सभा (House of Commons) की तुलना में निर्बल बना सका ।

9.8.3 फ्रांस के राजनीतिज्ञ तथा उनके सुधार-

वियेना-सम्मेलन में फ्रांस के प्रतिनिधि के रूप में तैलेरां (Talleyrand) ने भाग लिया। वह अपने समय का माना हुआ राजनीतिज्ञ था । वह अपने को प्रतिष्ठित कर लेने वाला तथा दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था । उसका इस कांग्रेस में भाग लेने. का एक मात्र उद्देश्य फ्रांस के हितों की रक्षा करना था ।[1] वह नेपोलियन के काल (1798-1807) में फ्रांस में पुन: राजतन्त्र को स्थापित कराया । फ्रांस के प्रजातन्त्रवादियों को समझा कर राजतन्त्र के लिए उसने राजी किया तथा फ्रांस की प्रतिष्ठा को पुनर्जीवित किया । 70 करोड़ की युद्ध-क्षति की शीघ्र पूर्ति कर मित्र-राष्ट्रों की सेना को फ्रांस की सीमा से हटा दिया तथा यूरोप की संयुक्त-व्यवस्था का कान्स को पांचवां सदस्य बना दिया । इस प्रकार डा. ए. सी. वार्ड के अनुसार उसने अपने राष्ट्र एवं शासक, जिसका वह प्रतिनिधि था, की गौरवपूर्ण सेवा की ।

चार्ल्स दशम के प्रतिकियावादी शासन के विरूद्ध जनता को कांति करने को थियर्स ने ही उत्तेजित किया था । चार्ल्स के भाग जाने पर लुई फिलिप (Louise Phillippe) को फ्रांस का शासक बनाने में थियर्स Thiers तथा लफायते (Laffayette) का ही प्रमुख हाथ था । लुई

1 Hayes and Moon: “World History’ p. 626
“At least twice in her reign, in 1867 and in 1884, democracy made notable gains.”

फिलिप उदार विचारों का था । इस कारण गणतन्त्रवादियों ने पुन: राजतन्त्र की स्थापना का विरोध किया । परन्तु कूट राजनीतिज्ञ लफायते अन्त में अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से गणतन्त्र के समर्थकों को लुई फिलिप का समर्थक बनाने में सफल रहा और फिलिप ने अपने को फ्रांस का राजा घोषित न करके फ्रांसीसी जनता का राजा घोषित किया । यह वंशानुगत राजतन्त्र में एक' महान परिवर्तन था और इसका श्रेय विदग्ध राजनीतिज्ञ लफायते को ही जाता है ।

लुई फिलिप भी अपने शासन (1830-48) काल में फ्रांसवासियों को तुष्ट नहीं कर सका। अत: 1848 में पुन: क्रान्ति हो गई। फिलिप तो अपनी रानी सहित इंग्लैण्ड भाग गया उसकी अनुपस्थिति में आर्लियन्स की डेचस (Dutches of Ordeans) ने अपने पुत्र (Court of paris) को राजा बनाना चाहा परन्तु लुई ब्लां व अल्वर्ट (Alburt) जैसे

समाजवादी नेता गणतन्त्र की स्थापना के लिए कृत संकल्प थे । परिणामत: फ्रांस में द्वितीय गणतन्त्र (II Republic) की स्थापना हो गई । परन्तु यह गणतन्त्र 2 दिसम्बर 1852 तक ही चला । इन वर्षो में ही नैपोलियन तृतीय ने अपनी कूटनीति से फ्रांसवासियों को अपना बना लिया और स्वयं सम्राट बन बैठा । नेपोलियन का यह दूसरा साम्राज्य (II Empire)1870 में समाप्त हो गया । और उसके स्थान पर 4 सितंबर 1870 को फ्रांस में तीसरे गणतन्त्र (III Republic) की घोषणा कर दी गई । इसका श्रेय थियर्स (Thiers) को जाता है । 17 फरवरी को राष्ट्रीय सभा ने बोरडेवस (Bordeause) की सभा में थियर्स को गणतन्त्र की कार्यपालिका का अध्यक्ष मनोनीत किया । थियर्स ने अपने दो वर्ष के काल में फ्रांस का पुनर्निर्माण किया.। जर्मनी को युद्ध की भारी क्षति (5 करोड़ फ्रेंक) देकर उसकी सेना को फ्रांस की भूमि से विदा किया । उसके इस कार्य से प्रसन्न हो राष्ट्रीय सभा ने उसको बहुत सा समर्थन किया । देशवासियों ने उसे फ्रांस का मुक्तिदाता (Liberator) कहा । यह तीसरा गणतन्त्र दूसरे विश्व-युद्ध तक चलता रहा ।

9.8.4 जर्मनी के एकीकरण में बिस्मार्क: स्पष्ट है कि 1870 में उदारवादी दृष्टिकोण यूरोप में ऐतिहासिक चरण-सीमा पर पहुंच चुका था । जर्मनी का भी एकीकरण हो चुका था।. उदारवादी दृष्टिकोण के प्रबल होने से यूरोप के अधिकांश देशों में संसदीय सरकारों का गठन होने लगा था1 परन्तु बिस्मार्क (Bismarck)लोकतन्त्रीय प्रणाली में विश्वास नहीं करता था । इसीलिए उसे उत्तरदायित्व पूर्ण शासन की मांग को कभी स्वीकार नहीं किया । 1869 में ही उत्तरी जर्मन राज्य-संघ की राइरवस्टेग (Rdeichstage) में भाषण देते उसने कहा था : "आरंभ से मेरे जीवन का एक मात्र लक्ष्य जर्मनी को एकता के सूत्र में बांधना और एकीकरण के पश्चात् उसे शक्तिशाली तथा समृद्ध बनाना तथा एकीकरण को ऐसा रूप देना रहा है कि उससे सम्बन्धित सभी लोगों की सदभावना के साथ वह चिरस्थायी हो सके ।[1] इसीलिए उसने जर्मन-संघ का संविधान संयुक्त राज्य (यू.एस.ए.) के समान संघीय न बना कर उसको राजतन्त्रीय

1 David Thomson: “Europe since Napoleon” p.93
“Talleyrand was the insinsuating and clear sighted, having the simple objective of promoting and safe guardiangs french interests.”

स्वरूप प्रदान किया । समस्त संघ राज्यों में केवल जर्मनी का संघ राजतन्त्रात्मक रहा जिसका आधार सैनिक शक्ति रही । प्रशा की भक्ति उसके जीवन का आदर्श था । इसलिए उसने नौ वर्षो में ही जर्मनी का कायाकल्प करके उसे यूरोप का शक्तिशाली देश बना दिया । देश को उसने संगठित एवं सुदृढ़ भी बनाया । उसकी इस उपलब्धि के कारण ही वह 19 वीं सदी का न केवल जर्मनी वरन संपूर्ण यूरोप का सबसे महान् एवं प्रभावशाली राजनीतिज्ञ माना गया । परन्तु समस्त यूरोप को सैनिकवाद से ग्रसित करना भी उसी का एक कार्य था ।

9.9 अन्य शक्तियां- दबाव-समूह (Pressure groups) हालांकि 19 वीं सदी में आज की भांति विकसित नहीं थे तथापि वे सरकार पर दबाव डालकर अपने अनुकूल कानून बनाने में सक्षम अवश्य थे । कारखानों के स्वामी व व्यापारी वर्ग इसी श्रेणी में आते थे । भूमिपति भी अपना दबाव डालकर इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी व रूस में अपने हित में कानून बनवाते रहते थे । युद्धों के परिणामस्वरूप तो राजनीतिक परिवर्तन होते ही रहते थे । परन्तु 1866 में लड़ा गया सेडावा (Sedawa) तथा 1870 में लड़ा गया सेडान (Sedan) के युद्ध भी इस दिशा में अधिक उल्लेखनीय हैं । इन युद्धों के परिणामस्वरूप ही इटली व जर्मनी का एकीकरण संभव हो सका और वे दोनों देश पुरातन व्यवस्था से बाहर निकल नवीन सरकार की स्थापना कर सके । यूरोपीय देशों में समय-समय पर मजदूरों के संगठित होने पर विभिन्न मजदूर संगठन गठित करते रहे । इन दोनों वर्गो के विभिन्न संगठनों ने भी यूरोपीय देशों की सरकारों के कायाकल्प में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । उदाहरणार्थ हम इंग्लैण्ड के मजदूर दल (Labour Party) को ले सकते हैं जिसने बीसवीं सदी के प्रारंभ से ही ब्रिटेन की सरकार को पूर्ण लोकतन्त्रात्मक रूप धारण करने में सक्षम बना दिया ।

9.10 बोध-प्रश्न

1. नागरीकरण से आप क्या समझते हैं? इसने उन्नीसवीं सदी के यूरोप के शासन-तन्त्र में क्या परिवर्तन किये?
2. समाजवाद उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में निर्बल किन कारणों से हो गया ।
3. सुधारों में इंग्लैण्ड यूरोप के अन्य देशों से अग्रिम कारणों से हुआ ।
4. उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जब यूरोप के अधिकांश देशों में? प्रजातन्त्रात्मक
5. सरकारों का गठन हो रहा था- जर्मनी में ऐसा क्यों नहीं हो सका ?

संदर्भ ग्रंथ-

1. David Thomson: Europe since Napolean'
2. P.T. Moon: Imperialism and World Politics ?
3. J.H Hayes: 'Modern Europe.
4. J.W. Swain: 'Beginning of the Twentieth Century.
5. Cambridge Modern History rol. X to XII
6. A.L. Guerard: 'Napolean III'

Holland Rose: "The development of Europeon Nations". P. 153

7. E.M. Sait. “government and polities of France.”
8. W.H. Dawson: ‘The German Empire
9. W.H. Lunt ‘History of England’
10. G.M. Treuelyan: ‘British History in the 19th century.
11. G.H. Perris: “Industrial History of Modern England

हिन्दी

1. प्रो. देवेन्द्र सिंह चौहान : (यूरोप का इतिहास, 1815- 1919)
2. ब्र. न. मेहता: 'आधुनिक यूरोप, 1871-1956.
3. डा. मथुरा लाल शर्मा : ' यूरोप का इतिहास, 1815-1945'
4. डा. दीनानाथ वर्मा: 'आधुनिक विश्व का इतिहास, 1871-1945

Notes

Notes

Notes